

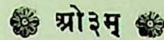
अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका

भूमिका तथा सूचियों सहित



सम्पादक—

पण्डित रामगोपाल शास्त्री



अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका

भूमिका तथा सूचियों सहित

सम्पादक—
पण्डित रामगोपाल शास्त्री

प्रकाशक—

रामलाल कपूर ट्रस्ट,
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

सम्पादक—

श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री
करोलबाग दिल्ली

द्वितीय वार ५००
माघ वि० सं० २०५६
फरवरी सन् २०००
मूल्य— ६०-००

मुद्रक—

नरेन्द्रकुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस,
बहालगढ़, सोनीपत (हरयाणा)

ओ३म्

भूमिका

'ज्ञान के विना मनुष्य पशु के समान है' यह लोकोक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। वह ज्ञान मनुष्य के अन्दर दो प्रकार का है, एक स्वाभाविक और दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान गत अनेक विध जन्मों के संस्कारों का फल है, जो कि अव्यक्तरूप में सदा मनुष्य के अन्दर बना रहता है। उस प्राकृतिक ज्ञान का विकाश निमित्त से होता है। किसी निमित्त से होनेवाले ज्ञान का नाम नैमित्तक ज्ञान है। सर्गारम्भ में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुए मनुष्यों में यद्यपि गत जन्मों के उच्चतम संस्कार थे, ता भी बाह्य निमित्त के विना तथा भाषा के विना उनका प्रादुर्भाव होना असम्भव था। अतः आवश्यक था कि जिस जगत्स्रष्टा ब्रह्म ने संसार में मनुष्यादि प्राणियों के जीवनाधार के लिये अनेक पदार्थ रचे हैं, जिसने अपनी पूर्ण शक्ति से इस सृष्टि को पूर्ण बनाया है, वह मनुष्यों को अपने भाव प्रकट करने के लिये, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का परिचय कराने के लिये, सांसारिक पदार्थों से उपयोग लेने के लिये मनुष्यों को भाषा और ज्ञान देता है। जो ज्ञान उस ज्ञान स्वरूप प्रभु नें आदिम आत्माओं में प्रकट किया उसी ज्ञान का नाम वेद है, यह वेद भक्त आर्य्यों का निश्चित तथा दृढ़ सिद्धान्त है। यह विचार आर्यों का निर्मूल नहीं, प्रत्युत इसके आधार के लिये ऋग्वेद की श्रुति विद्यमान् है "यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्" ऋ० १०।७१।३ यज्ञ (ईश्वर) से (धीर लोगों ने) वाणी का मार्ग प्राप्त किया, उस (वाक्) को उन्होंने पाया जो कि ऋषियों में प्रविष्ट हुई-हुई थी। ऋग्वेद का यह सारा का सारा ही सूक्त आरम्भिक ज्ञानोत्पत्ति के सम्बन्ध में है, विशेष पर्य्यालोचक इस सूक्त को वहां देखें।

वह ज्ञान जो कि अपौरुषेय माना जाता है, लोक में वेद के नाम से प्रसिद्ध हुआ यह विश्वास भारत में ब्रह्मा से लेकर दयानन्दपर्यन्त ऋषियों का है। संस्कृत के आर्ष साहित्य में वेद से लेकर सूत्र-ग्रन्थ, रामायण तथा महाभारतादि किसी ग्रन्थ को भी उठाकर देखें तो उसमें इसी पूर्वोक्त मत का समर्थन किया हुआ है।

यह वेद आर्य साहित्य में श्रुति, निगम, आगम, त्रयी, छन्दः, स्वाध्याय, मन्त्र, वाक्, विद्या, संहिता आदि नामों से प्रसिद्ध है। वास्तव में वेद एक हो है तो भी विशेष नियम से यह चार भागों में विभक्त किया गया है, जो कि ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये चारों वेद पुराकाल से ही आर्यों के श्रद्धा-भाजन हैं। इसके चार विभागों का वर्णन स्वयमेव भगवती श्रुति में ही आता है "चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः" ऋ० ४।५८।३ "चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एते उक्ताः" निरुक्त परिशिष्ट १।७ ऋग्वेद के इस मन्त्र में चत्वारि पद से चार वेद अभिप्रेत हैं। यास्क ने भी यही स्वीकार किया है। वेद चार होने पर भी इसका नाम त्रयी क्यों पड़ा इसका विवेचन हम आगे जाकर करेंगे।

उन्हीं वेदों की आगे जाकर प्रवचन-भेद से अनेकविध शाखायें बनीं (आख्याः प्रवचनात्-जै० सू० १।१।३०)। ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१ सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ९ शाखायें बनीं, देखो— महाभाष्य पस्पशाह्निक, शौनकोक्त चरणव्यूह परिशिष्ट सूत्र, विष्णु, स्कन्द, भागवत, मार्कण्डेय, देवी भागवत आदि पुराण तथा मुक्तिकोपनिषद् इनमें भी शाखाओं का वर्णन किया गया है और इन सब में स्वल्प भेद भी है। मुख्य प्रमाण महाभाष्य का ही इस समय सर्व विद्वन्मण्डली को स्वीकृत है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न शाखाओं के भिन्न-भिन्न ब्राह्मण तथा सूत्रादि निर्मित हुए, जिस से आर्ष वाङ्मय इतना बढ़ा कि स्यात् ही किसी जाति का साहित्य इतना बढ़ा हो। इसी प्रकार पुस्तकों पर पुस्तकों के बनने से सैंकड़ों ग्रन्थ आर्य जाति के बने, परन्तु काल-चक्र से सैकड़ों ग्रन्थ लुप्त भी हो गये, कुछ अवशिष्ट रहे जो कि भिन्न-भिन्न शाखीय ब्राह्मणों ने स्मरण कर रखे थे, वा अपने-अपने घरों में अत्यन्त सुरक्षित रखे थे, परञ्च यह अवशिष्ट साहित्य समुद्र में बिन्दु के बराबर बचा है। यही एकमात्र कारण है कि वेद के अनेक मन्त्रों का रहस्य खुलता नहीं, क्योंकि वे ऋषि जिन्हें इसका साक्षात् वा परम्परा सम्बन्ध से यथार्थ ज्ञान था उन्होंने विशेष-विशेष रहस्यों को स्व-स्व शाखा तथा कल्प, गाथा, नाराशंसी, इतिहास, पुराण, स्मृति, उपनिषद् तथा सूत्रादि ग्रन्थों में खोला था और ठीक-ठीक अर्थ लिखे थे, अब उनके अभाव से कई-कई स्थल वेद में ऐसे आते हैं जो कि अब समझने कठिन हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत अभी तक जैसा कैसा समझ भी आता है, वह भी उपलब्ध शाखा, ब्राह्मण तथा अङ्गादि ग्रन्थों की सहायता से। यदि ये ग्रन्थ भी न होते तो

समग्र प्रयास करने पर भी हम वेद के विषय में कुछ न समझ पाते। ज्यों-ज्यों भारत का प्राचीन साहित्य उपलब्ध होगा, त्यों-त्यों वेदादि ग्रन्थों के भाव को हम अधिक समझेंगे यह हमारा दृढ़ विश्वास है।

यह 'बृहत्सर्वानुक्रमणी' नामक ग्रन्थ भी वैदिक साहित्य का एक छिपा हुआ मोती था, जिसके मिलने से वेद के बहुत से स्थल अधिक स्पष्ट हुए हैं। हमारी इच्छा है कि पाठकों को इस नवीन ग्रन्थ के विषय में पूर्ण परिचय दिया जावे कि (१) यह ग्रन्थ क्या है? (२) इसका किस वेद से सम्बन्ध है? और (३) इसका क्या लाभ है? जिससे कि इस ग्रन्थ सम्बन्धी समग्र कौतूहल समाप्त हो।

इस ग्रन्थ का सम्बन्ध तो अथर्ववेद से है। प्रथम तो वेद-विषय में ही संसार में बहुत मतभेद हैं, अतः आवश्यक है कि इसके लिये वेद तथा विशेषरूप से अथर्वबेद के कालादि का निर्णय प्रथम हो जाना चाहिये। तदनु अथर्व-सम्बन्धी समग्र साहित्य का कुछ न कुछ परिचय पाठकों को हम करायेंगे।

वेद तथा इसका काल

जब से यूरोपियन जातियों का भारत से सम्बन्ध हुआ है तब से संस्कृत साहित्य में दिन-प्रतिदिन यूरोपस्थ विद्वानों की रुचि इस ओर बढ़ती गयी है। पढ़ते-पढ़ते वे लोग भारतीय साहित्य की पराकाष्ठा वेद तक पहुंचे और वेद को पढ़ते ही उन्होंने अपनी रीति के अनुकूल इसका भी तिथि आदि निर्णय का परिशीलन आरम्भ किया। यद्यपि इस साहित्य का विशेषाध्ययन १६५१ ई० में आब्रहम रोगन (Abraham Rogen) से आरम्भ होता है, जिसने कि पहले भर्तृहरि-शतक का अनुवाद प्रकाशित किया था। इसके अनन्तर १७७५ ई० में फ्रांसीसी विद्वान् Anquetil Die Perron ने उपनिषदों का अनुवाद लेटिन Latin में किया था, परन्तु वेद विषय में उसने भी कुछ न लिखा। सबसे प्रथम वेद पर लिखने वाला H. T. Colebrook 1765–1857 में हुआ, जिसने कुछ वेद पर लिखा, परञ्च वेद निर्माण को तिथि का निर्णयादि वह भी न कर सका। १८:८ ई० में F. Rosen ने ऋग्वेद की पुस्तक प्रकाशित की और Rudolf Roth राथ ने १८४६ ई० में वेद के इतिहास और साहित्य

यह वेद आर्य साहित्य में श्रुति, निगम, आगम, त्रयी, छन्दः, स्वाध्याय, मन्त्र, वाक्, विद्या, संहिता आदि नामों से प्रसिद्ध है। वास्तव में वेद एक ही है तो भी विशेष नियम से यह चार भागों में विभक्त किया गया है, जो कि ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये चारों वेद पुराकाल से ही आर्यों के श्रद्धा-भाजन हैं। इसके चार विभागों का वर्णन स्वयमेव भगवती श्रुति में ही आता है "चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः" ऋ० ४।५८।३ "चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एते उक्ताः" निरुक्त परिशिष्ट १।७ ऋग्वेद के इस मन्त्र में चत्वारि पद से चार वेद अभिप्रेत हैं। यास्क ने भी यही स्वीकार किया है। वेद चार होने पर भी इसका नाम त्रयी क्यों पड़ा इसका विवेचन हम आगे जाकर करेंगे।

उन्हीं वेदों की आगे जाकर प्रवचन-भेद से अनेकविध शाखायें बनीं (आख्याः प्रवचनात्-जै० सू० १।१।३०)। ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१ सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ९ शाखायें बनीं, देखो—महाभाष्य पस्पशाह्निक, शौनकोक्त चरणव्यूह परिशिष्ट सूत्र, विष्णु, स्कन्द, भागवत, मार्कण्डेय, देवी भागवत आदि पुराण तथा मुक्तिकोपनिषद् इनमें भी शाखाओं का वर्णन किया गया है और इन सब में स्वल्प भेद भी है। मुख्य प्रमाण महाभाष्य का ही इस समय सर्व विद्वन्मण्डली को स्वीकृत है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न शाखाओं के भिन्न-भिन्न ब्राह्मण तथा सूत्रादि निर्मित हुए, जिस से आर्ष वाङ्मय इतना बढ़ा कि स्यात् ही किसी जाति का साहित्य इतना बढ़ा हो। इसी प्रकार पुस्तकों पर पुस्तकों के बनने से सैंकड़ों ग्रन्थ आर्य जाति के बने, परन्तु काल-चक्र से सैकड़ों ग्रन्थ लुप्त भी हो गये, कुछ अवशिष्ट रहे जो कि भिन्न-भिन्न शाखीय ब्राह्मणों ने स्मरण कर रखे थे, वा अपने-अपने घरों में अत्यन्त सुरक्षित रखे थे, परन्च यह अवशिष्ट साहित्य समुद्र में बिन्दु के बराबर बचा है। यही एकमात्र कारण है कि वेद के अनेक मन्त्रों का रहस्य खुलता नहीं, क्योंकि वे ऋषि जिन्हें इसका साक्षात् वा परम्परा सम्बन्ध से यथार्थ ज्ञान था उन्होंने विशेष-विशेष रहस्यों को स्व-स्व शाखा तथा कल्प, गाथा, नाराशंसी, इतिहास, पुराण, स्मृति, उपनिषद् तथा सूत्रादि ग्रन्थों में खोला था और ठीक-ठीक अर्थ लिखे थे, अब उनके अभाव से कई-कई स्थल वेद में ऐसे आते हैं जो कि अब समझने कठिन हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत अभी तक जैसा कैसा समझ भी आता है, वह भी उपलब्ध शाखा, ब्राह्मण तथा अङ्गादि ग्रन्थों की सहायता से। यदि ये ग्रन्थ भी न होते तो

समग्र प्रयास करने पर भी हम वेद के विषय में कुछ न समझ पाते। ज्यों-ज्यों भारत का प्राचीन साहित्य उपलब्ध होगा, त्यों-त्यों वेदादि ग्रन्थों के भाव को हम अधिक समझेंगे यह हमारा दृढ़ विश्वास है।

यह 'बृहत्सर्वानुक्रमणी' नामक ग्रन्थ भी वैदिक साहित्य का एक छिपा हुआ मोती था, जिसके मिलने से वेद के बहुत से स्थल अधिक स्पष्ट हुए हैं। हमारी इच्छा है कि पाठकों को इस नवीन ग्रन्थ के विषय में पूर्ण परिचय दिया जावे कि (१) यह ग्रन्थ क्या है? (२) इसका किस वेद से सम्बन्ध है? और (३) इसका क्या लाभ है? जिससे कि इस ग्रन्थ सम्बन्धी समग्र कौतूहल समाप्त हो।

इस ग्रन्थ का सम्बन्ध तो अथर्ववेद से है। प्रथम तो वेद-विषय में ही संसार में बहुत मतभेद हैं, अतः आवश्यक है कि इसके लिये वेद तथा विशेषरूप से अथर्ववेद के कालादि का निर्णय प्रथम हो जाना चाहिये। तदनु अथर्व-सम्बन्धी समग्र साहित्य का कुछ न कुछ परिचय पाठकों को हम करायेंगे।

वेद तथा इसका काल

जब से यूरोपियन जातियों का भारत से सम्बन्ध हुआ है तब से संस्कृत साहित्य में दिन-प्रतिदिन यूरोपस्थ विद्वानों की रुचि इस ओर बढ़ती गयी है। पढ़ते-पढ़ते वे लोग भारतीय साहित्य की पराकाष्ठा वेद तक पहुंचे और वेद को पढ़ते ही उन्होंने अपनी रीति के अनुकूल इसका भी तिथि आदि निर्णय का परिशीलन आरम्भ किया। यद्यपि इस साहित्य का विशेषाध्ययन १६५१ ई० में आब्रहम रोगन (Abraham Rogen) से आरम्भ होता है, जिसने कि पहले भर्तृहरि-शतक का अनुवाद प्रकाशित किया था। इसके अनन्तर १७७५ ई० में फ्रांसीसी विद्वान् Anquetil Die Perron ने उपनिषदों का अनुवाद लेटिन Latin में किया था, परन्तु वेद विषय में उसने भी कुछ न लिखा। सबसे प्रथम वेद पर लिखने वाला H. T. Colebrook 1765–1857 में हुआ, जिसने कुछ वेद पर लिखा, परन्तु वेद निर्माण को तिथि का निर्णयादि वह भी न कर सका। १८३८ ई० में F. Rosen ने ऋग्वेद की पुस्तक प्रकाशित की और Rudolf Roth राथ ने १८४६ ई० में वेद के इतिहास और साहित्य

पर पुस्तक लिखकर अपने विचार वेद-विषय पर प्रकट किये, ऐसे ही Wilson ने भी विचार प्रकट किये, परंच वेदकाल पर निश्चित मत उन्होंने कोई भी प्रकट न किया। अन्त में १८५९ ई० में प्राचीन संस्कृत का इतिहास नामक ग्रन्थ लिखकर पं० मैक्समुलर ने जो परिष्कृत विचार तत्कालीन विद्वानों के सामने रखे, वही सिद्धान्त उनकी दृष्टि में सर्वमान्य तथा श्रद्धास्पद हुआ। मैक्समुल्लर ने बड़ा उदारता से वेद की तिथि १२०० ई० पू० रखी और शेष साहित्य को इसके अर्वाक्कालीन रखा। यद्यपि इसके पीछे जैकोबी तथा तिलक ने ज्योतिष के आधार से वेद का समय चार और पांच सहस्र ई० पू० से भी ऊपर का सिद्ध किया, परं तो भी आज तक जैसा तिथि का सिक्का साम्प्रतिक लोगों में मैक्समुल्लर का माना जाता है अन्य किसी का नहीं। हमने मैक्समुल्लर के इतिहास में उसके वेद-काल-निर्णय पर सब विचार पढ़े हैं, परन्तु हमें उसका कोई भी हेतु ऐसा नहीं मिला जो उसने किसी दृढ़ आधार पर लिखा हो, प्रत्युत सब कुछ अनुमान और कल्पना से उस ने लिखा है। अलग्जैण्डर का काल निर्णय करके फिर तत्कालीन साहित्य से दो-दो सौ वर्षों का अन्तर डालकर वह छन्द-काल तक १२०० ई० पू० तक पहुंचा है। आज हम कुछ नवीन विचारों से मै० मु० के विचारों की परीक्षा करेंगे—

प्रथम तो जो दो-दो सौ वर्ष का अन्तर उसने स्वीकार किया है, वह नितरां हास्यजनक और अग्राह्य है, अतः यह कल्पना ठीक नहीं। वास्तव में तो वेदकाल निर्णय एक साहसमात्र ही है, तो भी हम भिन्न-देशीय दो एक प्रमाणों से सिद्ध करेंगे कि जब ब्राह्मणकाल ही मैक्समूलर के वेदकाल से ऊपर चला जाता है, तो वेदकाल की क्या कथा। प्रथम हम पाठकों के अभिमुख मिस्रीधर्म के प्राचीन विचार उपस्थित करते हैं, जो कि ब्राह्मणकालीन हैं जिससे ब्राह्मणकाल की अत्यन्त प्राचीनता सिद्ध होती है।

हम एक बात अत्यन्त आश्चर्य की देखते हैं, वह यह कि जिस प्रकार सृष्टि उत्पत्ति का क्रम शतपथ ब्राह्मण में आता है, ठीक वैसे ही अक्षरक्षः वर्णन सृष्टि उत्पत्ति का Egypt मिस्री धर्म की प्राचीन पुस्तकों में मिलता है। इस तुलना को हम संक्षिप्तरूप से पाठकों को दृष्टिगोचर कराते हैं—

(1) There was a time when neither heaven nor earth existed, and when nothing had being except the boundless primeval water, which was, however, shrouded with thick darkness. ‡Page 22	१—एक समय था जब कि न आकाश था श्रौर न ही पृथिवी। तब अथाह उत्पत्ति जनक घनान्धकार से आच्छादित जल के बिना और कुछ भी विद्यमान् न था।		
(2) At length the spirit of the primeval water felt the desire for creative activity. ‡Page 23	१—अन्ततः जलों की स्पिरट उत्पादक शक्ति ने उत्पत्ति की इच्छा की।	२—आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकायन्त। कथं नु प्रजायेमहीति। ता अश्राम्यँस्तास्तपोऽतप्यन्त। शतपथ ब्रा० ११।१।६।१॥	द्रवीभूत आप ही (सृष्टि) के पूर्व थे उन्होंने इच्छा की कि हम किस प्रकार उत्पन्न हों उन्होंने श्रम किया और तप तपा।

‡See Books on Egypt and chaldaea by E. A. Walles Budge 1908.

(3) The next act of creation was the formation of a germ, or egg, from which sprang Ra., the sun God within whose shining form was embodied the almighty power of the divine spirit. Page 23	उत्पत्ति की दूसरी अवस्था जर्म्मो का अर्थात् एक अंडे का बनना था जिससे 'रा' जो कि सूर्य का देवता है उत्पन्न हुआ, जिस की चमकीली आकृति में सर्व दिव्यशक्ति वा बल छिपा था।	तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं सम्बभूवाजातोह तर्हि सवत्सरं आस तदिदं हिरण्यमाण्डं यावत् संवत्सरस्य वेला पर्यप्लवत। ततः संवत्सरे पुरुषः समभवत्। स प्रजापतिः। श० ब्रा० ११।१।६।१,२॥	उन जलों के (तप) तपने पर एक चमकीला अण्डा उत्पन्न हुआ वह एक संवत्सर पर्यन्त उस जल पर तैरता रहा। इसके अनन्तर संवत्सर के पीछे अण्डे से पुरुष उत्पन्न हुआ। वह प्रजापति था।

पाठकों के अभिमुख हम ने दोनों प्राचीन पुस्तकों के विचार रख दिये हैं। वालिस वज का कथन है कि मिस्री धर्म के ये विचार Pre-historic age के हैं, तथापि वह इस उत्पत्ति-वर्ग के लिये उनकी प्राचीनता का प्रमाण उद्धृत करता है कि यह लेख सेटी Seti की समाधि की भित्तियों पर खुदा हुआ था जिस का सन् १३७० ई० पू० दिया है (देखो Books on Egypt P. 18) इन दोनों लेखों में एक विशेषता है। जिस प्रकार उत्पत्ति क्रम शतपथ ब्राह्मण में हैं, ठीक उसी क्रम से उत्पत्ति का बर्णन मिस्री धर्म में आया है। मिस्री धर्म में लिखा है कि आरम्भ में जल ही था जो कि अन्धकार से ढका हुआ था, ब्राह्मण ग्रन्थ में भी यही आता है मिस्री धर्म में जलों ने एक चमकीला अण्डा बनाया और उससे सूर्य का देवता उत्पन्न हुआ माना है। शतपथ ब्राह्मण में भी यही आता है कि जलों ने चमकीला अण्डा उत्पन्न किया और उस अण्डे से प्रजापति उत्पन्न हुआ।

आप पढ़ कर आश्चर्य इस बात का करेंगे कि ब्राह्मण ग्रन्थों में अण्डे से प्रजापति की उत्पत्ति मानी है। प्रजापति को ब्राह्मग ग्रन्थों में बहुधा सूर्य ही कहा है। 'प्रजापतिर्वै सविता' ताण्डय ब्रा० १६।५।१७, तंत्तिरीय ब्रा० १।६।४।१, गोपथ ब्रा० पू० ५।२२ इत्यादि स्थलों में प्रजापति को सूर्य कहा है। उधर Ra को सूर्य का देवता माना है और इधर प्रजापति को सूर्य माना है। एक बात और अचम्भे में डालतो है, वह यह कि जहां मिस्री धर्म में रा Ra कहा है उसे वहां Ka (क) भी कहा है "That wich sent by thy Ka" P; 8। यह पाठ उस समय के धर्म पुस्तक का है, जब कि Unas ३३०० ई० पू० में राज्य करता था। इस स्थल में रा को 'क' माना गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी प्रजापति का दूसरा नाम 'क' आता है। प्रजापतिर्वैकः तं० ब्रा० २।३८, ६।२, कौषीतकि ५।४, २४।४, ५, ७, ६। इन तुलनात्मक नामों को तथा एक ही प्रकारवाले दोनों विचारों को पढ़ कर कौन नहीं मानेगा कि यह दोनों विचार लगभग समकाल के ही हैं। इस बात को हम निश्चितरूप से सिद्ध कर सकते हैं कि यह विचार शतपथ ब्राह्मण आदियों में वेद से गये हैं। ऋग्वेद १०।१२६ सूक्त में भी यही लिखा है कि आरम्भ में और कुछ नहीं था केवल अन्धकार था वा सलिल आप ही था। इसी विचारधार से ब्राह्मणों में अधिक विस्तार किया गया है। वालिस वज्ज तो मिस्री धर्मकी पुस्तक पृ० २ पर यही लिखते हैं कि ये विचार मिस्रोयों ने कहीं बाहर से नहीं लिये, प्रत्युत ये उनके अपने आविष्कार हैं। मि० बज्ज से हम इस बात में सहमत नहीं, क्योंकि दोनों ग्रन्थों को तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ने में पता लगता है कि दोनों विचार अत्यन्त मिलते हैं अतः एक दूसरे के सम्बन्ध से यह विचार आये सिद्ध हैं। कुछ भी हो यदि दोनों विचारों को समकालोन माना जावे तो भी शतपथ ब्राह्मण का काल न्यून से न्यून १३७० ई० पू० तक पहुंच जाता है। मिस्री धर्म का एक ही विचार नहीं, अन्य अनेक भाव भी वेद प्रभाव से प्रभावित दिखाई देते हैं। मिस्री धर्म में लिखा है कि आकाश उस (प्रभु) के सिर पर आश्रित है और पृथिवी पाद पर' (देखो पृ० २२)। यही विचार आपको अथर्ववेद १०।७।३२ में मिलेगा। 'यस्य भूमिः प्रमा', 'दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्'। इस प्रकार के अनेक विचारों से विदित होता है कि अथर्ववेद का उस ओर प्रचार अधिक था। फारस, मिस्र, मध्य एशिया तथा बाबल आदि प्राचीन देशों में अन्य वेदों की अपेक्षा अथर्व का प्रभाव अधिक था। पारसीयों की धर्म पुस्तक

जन्द सौ में से अस्सी प्रतिशत वेद प्रभाव से प्रभावित है। मि० हॉग ने तो अथर्व मन्त्र का एक टुकड़ा 'शंनो देवी' जन्द में पाया जाता है, ऐसा स्वीकार किया है। वायु तथा भविष्य पुराणाधार से Wilson ने सिद्ध किया है कि पारस देश में अथर्ववेद का प्रभाव अधिक था। पूर्वोक्त मिस्री धर्म सम्मिलान से हम ने सिद्ध किया है कि मैक्समूलर का वेदकाल निश्चय नितरां निर्मूल और निराधार है।

एक अन्य अत्यन्त प्राचीन कथा समग्र संसार के धार्मिक साहित्य में आती है। वह है मनु तथा मत्स्य (मछली) की कथा। यह कथा वेद के विना अन्य सब धर्मों के प्राचीन साहित्य में मिलती है और इधर भारत में इसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में पाया जाता है। इससे भी स्पष्ट है कि शतपथ ब्राह्मण इस धार्मिक कथा के सम तथा उत्तर काल का है। परंच वेद इस कथा के प्रचार के पूर्वकाल का है। पाठकों के निश्चयार्थ हम इस कथा को समग्र प्राप्त प्राचीन धर्मों में जिस-जिस रूप में यह आई है वैसे ही संक्षेप से उपस्थित करते हैं फिर अन्त में आप स्वयं निर्णय कर लेंगे कि वेद कितना प्राचीन है।

ज़न्द अवस्थ में यह कथा इस प्रकार से आई है—देवताओं ने एक सभा की, जिस में अहुरमज़दा ने कहा कि हिम के पिघले हुए जल से एक भारी प्रलय होगी, जिसके पीछे एक भयंकर शीत ऋतु होगी अहुरमज़दा ने यीमा को चतुष्कोणयुक्त दुर्ग बनाने का आदेश दिया और साथ ही उस दुर्ग में मनुष्य और प्रत्येक प्रकार के जन्तुओं तथा वनस्पति आदि रखने की भी अनुमति दी। Therefore make thee vara, long as a siding-ground on every side of the square, and tither bring the seeds of sheep and oxen, of men, of dogs. of birds and of red blazing of ires,

(A vesta Vendidad Fargar II, 25)

बाईबल की कथा

'ईश्वर ने नूह को कहा कि तू एक नौका बना (क्योंकि बड़ी भारी प्रलय आने वाली है)। जिस में तू अपने परिवार के साथ अन्य पशु-पक्षी आदि प्राणियों का एक-एक युगल (अर्थात् पुमान्, स्त्री) नौका में रख। अन्त में वह नाव प्रलय में अराराट पर्वत पर पहुंची। तौरेत पर्व ६।

युनान धर्म की कथा

ईश्वर ज्यूस (Zeus) ने वृद्ध डच् केलियन (Deucalion) और उस की स्त्री पाइराह (Pyrrha) को एक नाव बनाने को कहा, जब नौका बनाकर और भोजन सामग्री लेकर वे नौका में बैठे तो ज्यूस ने सब स्रोत (चश्मे) खोल दिये, जिन से सर्वत्र भूमि पर जल ही जल हो गया और वह नौका पर्नासस (Parnasus) पवत पर जाकर ठहरी। (देखो Mythe of Babylonia and Assyria by D. P. Mackenzi पृ० १६५।

मिस्री धर्म कथा

When Ra the Sun-God, grew old as earthly king, men began to mutter words against him. He called the gods to-gather and said : "I will not slay them (his subjects) until I have heard what yea say concerning them." Nu his father, who was the God of Primeval waters, advised the wholesale destruction of mankind. (Mackenzi book पृ० १६७)।

जब रा, सूर्य देवता पृथिवी का अधिपति बन वृद्ध हुआ तो मनुष्य उसके विरुद्ध कहने लगे। उसने देवों को इकट्ठा किया और कहा कि मैं तब तक उन्हें नहीं मारूंगा, जब तक मैं सुन लूं कि तुमने उनके सम्बन्ध में कुछ न कहा। नू, उसका पिता जो कि आरम्भिक जलों का देवता था, उसने सब पुरुषों के नाश की सम्मति दी।

आईरश कथा

आईरशों (Irish) में कथा है, कि जब जलप्लावन हुआ तो सोजर Cessair को जो कि Noah नूह की पौत्री थो उसे उस नौका में कमरा नहीं दिया गया आदि-आदि (देखो Makenzi पृ० १६६)।

बैबिलोनिया की कथा

"Therefore Ea made known the purpose of the devine rulers in hut of reeds, saying o hut of reeds,

hear, o wall, understand......O man of shurippak, son Umbara Turu, tear down thy house and build a ship; leave all thow dost posses and save thy life, and preserve in the ship the living seed of every kind.

Mackenzi P. 19.

Ea (ईया) ने दिव्य शासक शक्तियों के भाव को बेंत की बनी झोपड़ियों में प्रकट किया–ओ बेंत की झोपड़ियों !, सुनो ओह भित्तियो ! जानो। ओ उम्बतुरु के पुत्र शुरिपक के मनुष्य ! अपने घर को तोड़ दे और एक नौका बना। सब कुछ छोड़ कर अपनी जीवनी बचा। प्रति-प्राणी के (युगल) को नौका में रख। Mackenzi पृ० १६१।

शतपथ ब्राह्मण की कथा

प्रातः स्नान करते हुए मनु के हाथ में मछली आ गई, उस ने कहा तू मेरी रक्षा कर मैं तेरी रक्षा करूंगी, मनु ने कहा तू मेरी रक्षा किस प्रकार करेगी, मत्स्य बोला कि इसी वर्ष एक जलप्रलय होने वाली है, उसमें तू नौका को बनाकर मेरे पास आना, मैं तेरी रक्षा करूंगी। यह सुन मनु ने उसको एक कुम्भ में डाल दिया, वह और वढ़ी, उसे फिर एक गढ़े में रखा, वह और बढ़ी, अन्त में उसे समुद्र में फेंका, वह बड़ा मत्स्य हो गया। प्लावनकाल में मनु ने नौका की रस्सी उस मत्स्यशृंगों में बांधी और वह झट उसे उत्तर गिरि की ओर ले गयी और उसने मनु से कहा कि अब वृक्ष के साथ नौका बांध दो (देखो शतपथ ब्राह्मण कां० १ अध्या० ८ ब्रा० १)।

ऊपर प्रति धर्म की कथा सक्षेप से दे दी है। यह कथा कितनी पुरानी है, यह निश्चय करना अत्यन्त कठिन है, तो भी इन्साईक्लोपीडिया आफ रिलीजियन एण्ड एथिक्स के डिल्यूज पद (Encyclopaedia of religion and Ethic – the word Deluge.) में बेबेलोनिया की जो यह कथा दी है उसका आधार वहां ऐसे माना है—

The belief that, through the date of the inscription upon the akkedian tablets is probably about 660 B. C., it is a copy of a poem dating from at least 2000 B. C. इन्साईक्लोपीडिया में यह सिद्ध किया है, कि यह लेख एकेडियन

शिलालेख लगभग ६०० ई० पूर्व का है और यह ६०० ई० पू० का लेख दो सहस्र ईसवी पूर्व से नकल किया गया है।

सब लेखों में आदेश है कि नौका को बनाओ और उस नौका को पर्वत पर बांधने का वर्णन भी आता है। पारसीयों के ग्रन्थ में नौका-निर्माण के स्थान पर एक (वारा) किला बनाने का वर्णन है। कुछ भी हो तुलना फिर भी बहुत है। Egyptian (मिश्री) कथा में जल-प्लावन के साथ Nu नू का सम्बन्ध है, Irish आईरश कथा में Cessair सीजर को Noah नूह की पौत्री लिखकर जल-प्लावन का वर्णन किया है, बाईबल में ईश्वर का आदेश ही हजरत नूह Noh को है और शतपथ ब्राह्मण में जलप्लावन का सम्बन्ध "मनु:" से है। इसमें एक विशेष विचारणीय पद है, जो कि सब में मिलता है वह नूह है। हमारी सम्मति में तो नू, नूह आदि ये सब शतपथ ब्राह्मण के मनु: के समान हैं, मनु: का यदि आदि मकार उड़ा दें तो शेष विसर्गान्त नु: Nuh ऐसा ही बोला जाता है, जो कि नू है, इस आधार से यह कथा दो सहस्र ईसवी पूर्व की तो सिद्ध होती है और अभी यह पता नहीं कि इस से पूर्व यह कथा कब प्रचलित हुई।

यह तो हमें अब अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि यह कथा ब्राह्मण-काल में प्रचलित थी। यदि पूर्वपक्षी के विचार से वेद को एक भारत का प्राचीन इतिहास ग्रन्थ मान लिया जावे, तो आवश्यक था कि वेद भी दो सहस्र ई० पू० की कथा को अपने अन्दर देता, पर आश्चर्य तो यह है, कि इस कथा का गन्ध भी वेद में नहीं, अत: पूर्वपक्षी के विचार से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि वेद दो सहस्र वर्ष पूर्व का ग्रन्थ है।

मैकडौनल को इस कथा से बहुत दूर की सूझी है, उसने भी यही समझ कर कि यदि इतनी प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा वेद में न निकली तो हमारी कल्पना कि वेद १२०० ई० पू० के हैं सिद्ध न होगी। इसी बात को ध्यान में रखकर महाशय मैकडौनल ने एक नवीन चाल चलाया है, उसने अथर्ववेद के एक मन्त्र से इस मनु की नौका का मूल निकालने का यत्न किया है—

That the story of the flood was known ar early as the tune of Atharva veda is implied in a passage of that Samhita (19.39.8). The myth of the deluge ocures in

the Avesta also, and may be Indo-Europeon. It is generally regarded as borrowed from a semitic source, but this seems to be an unnecessary hypothesis. (Vedic mythology of macodonell.) P. 139.

मंकडौनल ने अपने इस लेख में इस कथा का मूल अथर्व १९।३९।८ मन्त्र से निकाला है। हम पाठकों के अभिमुख उस मन्त्र को रखते हैं और यह भी बताते हैं, कि मैकडौनल ने किस चतुराई से यहां काम लिया है—"यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवत: शिर:। तत्रामृतस्य चक्षणं तत: कुष्ठो अजायत। १९।३९।८ अथर्व के इस मन्त्र में मैकडौनल ने 'यत्र, नाव, प्रभ्रंशनम्' पद भिन्न-भिन्न कर यह अर्थ निकाला है, कि जहां नाव का प्रभ्रंशन अर्थात् टूटना हुआ था और जहां 'हिमवत: शिर:, हिमालय का सिर है। इस मन्त्र में हिमालय से 'नाव प्रभ्रंशनम्' पद को साथ पड़ा देख उसने अपनी अर्थ-सिद्धि की है, परंच हमें मैकडौनल का इस खेंचा-तानी से बहुत क्लेश हुआ है। यदि उसका अर्थ निकलता तो हमें भी उस अर्थ करने में कोई आपत्ति नहीं थी, परन्तु शोक तो यह है, कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये उसने उन तमाम पारम्पर्यागत क्रम को कुचल कर काम लिया है। यहां पर 'यत्र नाव प्रभ्रंशनम्' पदपाठ तथा स्वर-चिह्नों के अध्ययन से तो भिन्न-भिन्न पाठ सिद्ध है। 'यत्र न अव प्रभ्रंशनम्' यहां न अव्यय पद को मैकडानल ने प्रभ्रंशन के अव उपसर्ग से मिलाकर 'नाव' पद बनाया है, वास्तव में यहां 'न, अव' दो पद हैं—यदि न, अव दो पद माने जावें तो नाव प्रभ्रशन का कोई मूल ही नहीं दिखाई देता। इस मन्त्र का अर्थ यह है—

जहां नाश नहीं, जहाँ हिमवान् का सिर है, वहां अमृत का दर्शन है और वहां से कुष्ठ (कुष्ठ) औषध उत्पन्न होती है। अथर्व के इस मन्त्र में कुष्ठ औषध की उत्पत्ति के स्थान का वर्णन है। वहां यह चिह्न बताये हैं, जहां कुष्ठ उत्पन्न होती हैं। वहां अव प्रभ्रंशन नाश किसी प्रकार का नहीं। अर्थ तो यह था परन्तु मैकडानल साहिब ने यह अर्थ कर दिया कि जहां पर नाव टूटी थी। शोक है कि प्राचीन पदपाठ और स्वर-नियम को तोड़ कर केवल अपने निराधार मत की पुष्टि के लिये ऐसी-ऐसी झूठी तथा निर्मूल कल्पनाओं का करना। यदि वह यह कहे, कि प्राचीन पद-पाठ और स्वर-नियम अशुद्ध हो सकते हैं, तो इसके उत्तर में हम यह कह देना चाहते हैं, कि समग्र अथर्ववेद में अन्यत्र बहुत स्थलों में कुष्ठ की

उत्पत्ति का वर्णन आया है। सब जगह हमारे ही भाव हैं, नौका के टूटने का संकेत कहीं नहीं। इस मन्त्र में आप देखेंगे ऊपर लिखा है कि जहां नाश नहीं, उत्तर पद में लिखा है जहां अमृत का दर्शन होता है। ये दोनों वाक्य भी एक भाव के पोषक हैं। अतः मैकडानल की कल्पना अशुद्ध है। दूसरी बात हमें यह नहीं समझ में आती कि यदि नौका का टूटना भी मानें तो इस मनु-मत्स्य-कथा से क्या सम्बन्ध होगा, क्योंकि समग्र सांसारिक प्रलय कथाओं में किश्ती के निर्माण का वर्णन तो आता है, परन्तु प्रभ्रंशन का वर्णन कहीं नहीं आता और न ही नौका टूटने से कुछ तात्पर्य है, अतः इन न, अव, दो भिन्न पदों को मिलाकर 'नाव' पद बना नौका अथर्ववेद मन्त्र के प्रकरण, पद-पाठ, स्वर-नियम और बुद्धि के विरुद्ध है, अतः मेकडानल की कल्पना माननीय नहीं। इस दीर्घ लेख से हम इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि यह इतनी जगत् प्रसिद्ध कथा ब्राह्मण-काल अथवा इससे पूर्व काल में तो प्रसिद्ध थी परंच वेद के काल में इस कथा को कोई नहीं जानता था। अतः ऐतिहासिक विचार से भी वेद आज से ४००० वर्ष पूर्व ही ठहरता है, अतः मेक्समूलर तथा मैकडानल आदि लेखकों का वेद-काल-परिमाण नितराम् अशुद्ध भ्रममूलक और निर्मूल है।

तिलक ने अपने 'Arctic home in the Vedas' नामक ग्रन्थ में 'मृगा' orion नामक नक्षत्राधार से वेदकाल ४००० ई०पू० से ६००० ई० पू० तक पहुंचाया है। "ऐसे ही जैकोबी भी चार सहस्र वर्ष ही वेद-काल का निर्णय करता है। मरहट्टा ब्राह्मण दीक्षित शतपथ ब्राह्मण २।१। २।३ में "एता ह वै कृत्याः प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते"। इस आधार से २५०० ई० पू० ब्राह्मण-काल निश्चित कर वेद को इससे बहुत ही ऊपर ले गया है। ऐसे ही पं० केतकर ने माना है। अपनी पुस्तक The Vedic Fathers of Geology में पावगी ने अपने मतानुकूल भूगर्भ विद्या के प्रमाण देकर वेद को अनेक सहस्र वर्ष ईसा से पूर्व सिद्ध किया है। The age of Shankar में मद्रासी नारायण शास्त्री, महाभारत-काल को कई सहस्र ई० पू० वर्ष सिद्ध करता है। सब काल-निर्णायक कल्पना से काम लेते हैं। 'निश्चित रूप से कोई नहीं कह सका। हमारी सम्मति में तो यही आता है, कि जब से मनुष्य चले आ रहे हैं तब से ही ज्ञान उनके साथ आ रहा है और यही एक ज्ञान है जो पुराकाल से आज तक चला आता है। ऐसा भारत के समग्र प्राचीन ऋषियों का मत है।

अथर्ववेद

पूर्व हमने इस बात को विशद कर दिया है कि वेद निर्माण-काल का निर्णय करना केवल साहसमात्र ही है। इसमें यद्यपि भारतीय तथा भिन्नदेशीय सामयिक विद्वानों ने बहुत छानबीन की है, पर तो भी वे वास्तविक रहस्य से वञ्चित ही रहे हैं।

इस बृहत्सर्वानुक्रमणी ग्रन्थ का अथर्ववेद से ही सम्बन्ध है, अतः हम अन्य संहिताओं को छोड़ इस समय इसी पर ही विशेषालोचना करेंगे। बहुत से लेखकों का यह मत है कि 'अथर्ववेद' वेद नहीं। वह ऋग्वेदादि वेदों की अपेक्षा बहुत अवर काल का है। वैदिक काल में 'अथर्व' का ज्ञान किसी को भी न था। अपने इस पक्ष की पुष्टि के लिये वे ये प्रमाण देते हैं, कि ग्रन्थों में जहां वेदों का नाम आता है, वहां ऋग्, यजुः, साम आता है अथर्व का नहीं। जैसे (१) तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दांꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत। यजुः ३१।७।। (२) यमृषयस्त्रैविदा विदुः। ऋचः सामानि, यजूंषि। तै० ब्रा० १।२।२६।। 'अग्नेर्ऋग्वेदः वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः। शतपथ ब्रा०। 'अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात्' छान्दोग्य ब्राह्मण ६।१७।। अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रय ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्। मनुः १।२३।। इसी प्रकार शतपथादि ब्राह्मण-ग्रन्थों मे अनेक वार 'त्रयी' पद आता है, जिससे ऋग् यजुः साम का ही ग्रहण होता है. अथर्व का नहीं। पूर्वपक्षी का यह आधार सन्मूल नहीं, क्योंकि शास्त्रों में त्रयीपद के के आ जाने से वहां तीन संहिता 'ऋग्यजुः साम से तात्पर्य नहीं, प्रत्युत वहां तो वेद-मन्त्रों की त्रिविध रचना से तात्पर्य है। ऋग्यजुःसामाथर्व संहिताओं में जितने भी मन्त्र हैं उनकी रचना तीन प्रकार से हुई-हुई है। १ ऋचः, २ यजूंषि, ३ सामानि। जो मन्त्र पद्यात्मक हैं वे ऋचः कहलाते हैं, जो गद्यात्मक हैं वे यजुः और जो गानात्मक हैं वे सामानि। भगवान् जैमिनि ने पूर्व मीमांसा में भी यही लिखा है 'तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था (३५) गीतिषु सामाख्या (३६) शेषे यजुः शब्दः (३७) मी० द० अ० २। पा० १। मीमांसा के इन सूत्रों से स्पष्ट है कि जहां भी वेद में त्रयी पद आता है उससे तीन संहिता नहीं समझनी चाहिये, प्रत्युत चार संहितान्तर्गत जो मन्त्र हैं उनकी त्रिविध रचना विशेष को जानना चाहिये। इसी मीमांसा-लक्षण आधार से यास्क ने शतपथ ब्राह्मण के

१४।६।४।२६ वाक्य को भी 'ऋक्' लिखा है क्योंकि वह भी पद्यात्मक है। 'तदेतदृक्श्लोकाभ्यामुक्तम्' निरु० ३।४॥ अतः सर्वत्र त्रयी पद से वेदमात्र का ग्रहण है। षड्गुरु-शिष्य, सायणाचार्य तथा दयानन्द को भी यही पक्ष अभिप्रेत है। अन्त में यह त्रयी पद वेद-विद्या के अपर पर्यायों में भी प्रयुक्त हुआ है, जैसे त्रयी वै विद्या। 'ऋचो यजूंषि सामानि' श० ब्रा० ४।६।७।१ यदि त्रयी से अभी भी पूर्वपक्षी यही माने कि नहीं त्रयी पद वेदों के लिये उस समय प्रयुक्त किया गया था जब कि अथर्ववेद नहीं बना था तो इस के उत्तर में हम पू० प० को इतना बताना चाहते हैं, कि स्वयम् अथर्ववेद में ही अनेक स्थलों में ऋक्० यजुः साम का वर्णन आता है, जैसे "यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही। एकर्षि यस्मिन्नर्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः। अथ० १०।७।१४॥ विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम्। शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः। अथ० ११।१०।२३॥ क्या इससे यह सिद्ध हो सकता है कि ये मन्त्र तब बने जब कि अथर्ववेद नहीं बना था। अतः पूर्वपक्षी का यह पक्ष कि त्रयी अथर्व-निर्माण काल के पूर्व वेद का नाम था ठीक नहीं।

अथर्व संहिता का वर्णन प्रायः सर्वत्र प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होता है ऋग्वेद में 'चत्वारि शृङ्गा' ४।५८।३ पद से हम पूर्व सूचित कर चुके हैं कि चार सींग से चार वेदों का ही संकेत है। निरुक्त परि १।७॥ में भी यहां वेद ही माने हैं। यहां चार शृङ्गों से चार वेदों का ग्रहण नहीं करना चाहिये। इसके लिये पूर्वपक्षी के पास क्या प्रमाण है? ऋग्वेद १०।७१।११ में 'ऋचां त्वा पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु। ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः' इस मन्त्र में ऋत्विजों के कर्मों का विनियोग बताया है। होता, उद्गाता, ब्रह्मा तथा अध्वर्यु के कर्मों का इसमें वर्णन है। होता का ऋक् से उद्गाता का साम से, ब्रह्मा का अथर्व से और अध्वर्यु का यजुर्वेद से सम्बन्ध है इस मन्त्र का विशेष वर्णन निरुक्त १।८ में है। ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति। सर्वविद्य होने से अथर्वाङ्गिरसो श्रुतियों का जानना उसके लिये अत्यन्त आवश्यक है। अथर्ववेद जाने विना वह ब्रह्मा नहीं हो सकता। पूर्वोक्त मन्त्र में कथित चार ऋत्विजों में कौन किस-किस वेद का पण्डित हो इसे गोपथ ब्राह्मण ने बहुत ही स्पष्ट किया है। 'ऋग्विदमेव होतारं वृणीष्व यजुर्विदमध्वर्युम्, सामविदमुद्गातारम्, अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणं तथा हास्य यज्ञः चतुष्पात् प्रतितिष्ठति। गो० ब्रा० पू०

२।२४।। इसमें स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्मा अथर्ववेदवित् ही है। संस्कृत साहित्य में ब्रह्मा को चतुर्मुख भी कहते हैं। ब्रह्मा के इस विशेषण का यही अर्थ है, कि 'चत्वारो वेदा मुखे यस्य सोऽयं चतुर्मुखो ब्रह्मा' अर्थात् चार वेद हैं मुख में जिसके वह चतुर्मुख ब्रह्मा होता है। ऋग्वेद के इन दो मन्त्रों से सिद्ध है, कि ऋग्वेद में भी चतुर्थ वेद की सत्ता का स्वीकार किया गया है। यजुर्वेद में 'तस्माद्यज्ञात' वाले पूर्वोक्त मन्त्र में छन्दांसि पद से वेद का ग्रहण है। वेद से ऋक्, यजुः, साम तो स्वयं गिने ही हैं अतः चतुर्थ केवल छन्दांसि से अवशिष्ट अनुक्त वेद का ग्रहण करना चाहिये। 'छन्दांसि' से गायत्री आदि छन्दों का ग्रहण नहीं, क्योंकि इस मन्त्र में इन छन्दों का प्रकरण तो कहीं है भी नहीं। दूसरा यदि इन छन्दों से तात्पर्य होता तो वह 'ऋचः' पद के कहने मात्र से ही गृहीत था, क्योंकि छन्दोबद्ध पद्यमयी रचना को तो ऋक् कहते हैं। जब ऋक्मात्र कहने से ही छन्दांसि पद का भाव आ जाता है तो फिर निरर्थक 'छन्दांसि' पद ग्रहण क्यों किया। अतः छन्दांसि से चतुर्थ अनुक्त अथर्ववेद के मन्त्रों का ग्रहण है। 'छन्द' पद से वेद मन्त्रों का ग्रहण होता है इसके लिये ये प्रमाण साक्षी हैं—छन्दोभिर्यज्ञैः सुकृतां कृतेन। अथ ६।१२४।१ देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्याँ प्राविशंस्ते छन्दोभिरच्छादयन्, यदेभिरच्छादयँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्। छान्दोग्योपनि० १।४।२।। छन्दोभ्यः समाहृत्य निरु० १।१।। पाणिनि स्थान-स्थान पर अष्टाध्यायी में वेद के लिये बहुलं छन्दसि प्रयुक्त करते हैं। छन्दांसि यस्य पर्णानि। गीता १५।१ इन समग्र प्रमाणों से 'छन्दांसि' पद से मन्त्रार्थ होना सिद्ध है। जब ऋक् यजुः, साम के साथ यह छन्दांसि पद आवे तो वहां उस अनुक्त अथर्ववेद के मन्त्र-समूह से ही तात्पर्य होता है। अतः तस्मद्यज्ञात् में छन्दांसि पद से अथर्ववेद को जानना चाहिये। इस ऋचा में छन्दाँसि से अथर्व का ग्रहण करना स्पष्ट है—'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः। अथ ११।९।२४।। बृहदारण्यक उपनिषद् में भी यही बात स्पष्ट की है - यदिदं किञ्चर्चो यजूँषि सामानि छन्दाँसि १।२।५ इन प्रमाणों से छन्दांसि से चतुर्थ अथर्वाङ्गिरसी श्रुति का ग्रहण स्पष्ट है।



अथर्ववेद का वर्णन अन्य संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में

'ऋग्भ्यः स्वाहा, यजुर्भ्यः स्वाहा, सामभ्यः स्वाहांगिरोभ्यः स्वाहा वेदेभ्यः स्वाहा'। तैत्तिरीय संहिता ७।५।११।२।। इसमें 'अंगिरोभ्यः' से अथर्व का ग्रहण है। मेद आहुतयो ह वा एता देवाजां यदथर्वाङ्गिरसः। स य एवं विद्वानथर्वाङ्गिरसोऽहरहः स्वाध्यायमधीते मेद आहुतिभिरेव तद्देवाँस्तर्पयति शतपथ ११।५।६।७।। 'युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति, तानुपदिशत्यथर्वागो वेदः'।।७।। युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति, ता उपदिशत्यङ्गिरसो वेदः'।।८।। शतपथ ब्रा० १३।४।३।। भेषजं वा आथर्वणानि। पंचविंश ब्रा० १६।१०।२।। स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमाविनिश्चरन्त्येवं वाऽअरेऽस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। श० ब्रा० १४।४।३।११।। ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसः। तैत्तिरीय ब्रा० ३।१२।८।२।। ऋचः यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसः। तैति० आ० ११।६,१०।। श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्। वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीद्विजः। मनु० ११।३३।। ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः। मुण्ड० उप० १।१।५।। 'अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा' तैत्ति० उप० २।३।१ 'अथर्वाङ्गिरस एव मधुकृतः' 'एते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपन्' छान्दो० ३।३।१,२ 'अथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्' बृह० उप० २।४।१० इन ऊपर के ऋग्वेद से लेकर उपनिषद् पर्यन्त प्रमाणों से सिद्ध है कि अथर्ववेद भी उसी प्रकार प्राचीन है जैसी अन्य तीन संहितायें। ऐसे ही इस वेद का वर्णन शांखायन श्रौतसूत्र १६।२।२ आश्वलायन श्रौ० सू० १०।७।१ आश्व० गृह्य० सू० ३।३।१-३। शांखा० गृ० सू० १।१६।३, हिरण्यकेशी गृ० सू० २।३।६, २।१८।३,२०।६। पारस्कर गृ० सू० २।१०।७, २।१०।२१ में भी आता है। इसी प्रकार रामायण, महाभारत तथा अन्य अनेक प्रामाणिक आर्ष साहित्य में इस वेद का वर्णन आता है। अतः इस वेद को अर्वाक्कालीन कहना और यह कहना कि इसका संग्रथन ब्राह्मण काल में था पूर्व नहीं केवल अपनी शास्त्रानभिज्ञता ही प्रकट करना है और कुछ नहीं। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से साफ है, कि जैसे ऋगादि तीन वेदों का निर्देश हम प्राचीन वैदिक साहित्य में पाते हैं वैसे ही इस अथर्ववेद का भी वर्णन स्पष्ट हमें मिलता है अतः सिद्ध है कि यह वेद भी उतना ही प्राचीन है जितने कि अन्य वेद।

चार विभाग का कारण—वेदों का चार विभाग होने का कारण यही है कि एक-एक वेद में एक-एक विषय का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया है। यह हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि वास्तव में वेद एक ही है, परंच वह एक ही विषयभेद से चारों में विभक्त किया गया है। ज्ञान, कर्म, उपासना, विज्ञान ये चार विषय मुख्य हैं, सो इनका अधिकांश रूप से ऋग्यजुःसामाथर्ववेदों में वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद के नाम—अन्य वेदों की तरह इस वेद के भी अनेक नाम आते हैं—अथर्वांगिरस—अथ० १०।७।२० अथर्ववेद गो० ब्रा० १।२९ भृग्वंगिरस गो० ब्रा० १।१।३ अङ्गिरोवेद श० प० १३।४।३।८ ब्रह्म वेद अथ० १५।६।८ गो० ब्रा० १।२।१६ क्षत्र वेद श० प० १४।८।१४।२ भेषजा अथ० ११।८।१४ 'यातु' श० प० ११।५।२।२०।। इस प्रकार के नामों से यह वेद प्रसिद्ध है भिन्न-भिन्न स्थलों में भिन्न-भिन्न उद्देश को लक्ष्य में रख कर इसे भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। इन पूर्वोक्त सब नामों में अथर्वाङ्गिरस और ब्रह्मवेद प्राचीनतम नाम हैं अन्य सब पीछे के हैं। अथर्वाङ्गिरस नाम पर बहुत विवाद है कईयों का कथन है कि अथर्वा और अंगिरा दोनों ऋषियों ने मिलकर इस वेद का संग्रथन किया था इससे इसका यह नाम पड़ा। दूसरा पक्ष है कि 'अथर्वाङ्नेमेतास्वेवाप्स्वन्विच्छ' गो० ब्रा० १।४।। इसके अनन्तर नीचे इसे इन्ही जलों में ढूंढ' भृगु ने जलों में उसे देखा तो वह अथर्वा हो गया आदि-आदि इससे इसका नाम अथर्ववेद है। तीसरा पक्ष है कि अथर्वा तथा अंगिरा से उत्पन्न हुए २० ऋषियों के मन्त्रों का नाम अथर्वांगिरो वेद है। चौथा पक्ष है कि अथर्ववेद में अनेक मन्त्र द्रष्टा ऋषियों में सब से अधिक सूक्तों का द्रष्टा अथर्वा है, इस से इसका नाम अथर्ववेद। उससे न्यून सूक्तों का द्रष्टा अंगिरा है, इससे इसे अंगिरो वेद कहते हैं। दोनों ऋषियों के नाम से यह अथर्वांगिरो वेद है, उससे न्यून सूक्तों के द्रष्टा ब्रह्मा ऋषि हैं जिससे इस वेद को ब्रह्मवेद कहते हैं। पांचवां पक्ष है कि थर्व हिंसार्थक धातु के होने से न थर्वा अथर्वा अर्थात् जिसमें हिंसा नहीं इससे इसे अथर्वा कहते हैं। छठा पक्ष है कि 'थर्वतिश्चरतिकर्मा' 'चर संशये'। अर्थात् तीनों वेदों में जो क्लिष्ट भाग आने से संशय उत्पन्न होता है उसके निवारण से इसे अथर्ववेद कहते हैं।

अथर्वपाठ निर्णय—अथर्ववेद के पाठ में जितनी गड़बड़ी है उतनी अन्य किसी वेद में भी नहीं। अन्य वेद तो यज्ञादियों में कहीं विशेष-विशेष स्थानों में उपयोग में लाये जाते थे, अतः उनके पाठादियों में इतनी

गड़बड़ी नहीं हुई जितनी इसमें है। राथह्विटने ने जो प्रथम अथर्ववेद १८५६ में Leipzig में छपवाया था उस में और पाण्डुरंग द्वारा सम्पादित सायण भाष्य संहिता अथर्व मन्त्रों में कई स्थलों पर बहुत पाठभेद है। साधारण पाठ भेदों को छोड़ इस बात पर बहुत मत भेद है कि यह कितने काण्डों का वेद है। एक पक्ष है कि इसके १० दश काण्ड हैं, शेष पिछले दश प्रक्षिप्त हैं। दूसरा पक्ष है कि इसके अठारह काण्ड हैं क्योंकि अठारह काण्ड तक ही प्रपाठक क्रम है और कौशिक सूत्र में भी १८ कांड तक ही मन्त्रोद्धरण आता है। तृतीय पक्ष है कि इसके काण्ड १९ हैं क्योंकि अनुक्रमणी में १९ काण्ड तक ऋषि आदि देवता छन्द हैं और बीसवां काण्ड केवल ऋग्वेद का ही है अतएव आश्वलायनानुक्रमणी से छन्द आदि दिये हैं और साथ ही निरुक्त में १९ काण्ड के मन्त्र तक प्रमाण आते हैं। पाणिनि ने भी फाल्गुनी और प्रोष्ठपदा नामक नक्षत्रों का वर्णन १।२।६० में किया है, ये दोनों नक्षत्र अथर्व १९।७।३,५ के भिन्न अन्य किसी वेद में आते ही नहीं, अतः १९ काण्ड तक अथर्वसंहिता ही प्रामाणिक है। चतुर्थ-पक्ष है कि सम्प्रति २० काण्डात्मक संहिता मिलती है और यही पूर्वकाल से चली आती है। गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि ब्रह्मा ने २० अथर्ववेदी ऋषियों को उत्पन्न किया जिस से इस वेद के बीस काण्ड बने इसलिये यह बीस काण्ड का ही ग्रन्थ है। इस प्रकार के अनेक मत इस संहिता प्रमाण में हैं। पहला पक्ष तो केवल बालकपने का है। अन्य तीन विचारणीय अवश्य हैं। तृतीय पक्ष बहुत प्रमाण और युक्ति से सिद्ध है। परं तो भी पूर्ण ग्रन्थ प्रमाण निर्णय हम तभी कर सकेंगे जब हमारे पास बहुत सी सामग्री अथर्व के सम्बन्ध की मिल जावेगी तो। अतः आर्य लोगों को यत्न करना चाहिये कि अन्य सब कामों से पूर्व इसमें अपना समय लगावें, यही बात आर्य धर्म की मूल है।

अथर्ववेद का साहित्य

यह पूर्व लिख दिया है कि इस वेद की नौ शाखायें हैं। अब हम क्रमशः उन सब का उल्लेख करते हैं‡—

---

‡ शाखाओं का विशेष वर्णन जानने के लिये निम्नलिखित ग्रन्थों को अवश्य देखना चाहिये —

(१) कौशिक सूत्र, गोपथ ब्राह्मण तथा वैतान सूत्र में बहुत स्थलों पर

१. पेप्पला: देखो सा० भू० २५ पृ० तथा अथर्वपरिशिष्ट सं० ८
२. तौदा: ,, ,, ,, ,, ,, सं० २।३
३. मौदा: ,, ,, ,, ,, ,, सं० २।४।१०
४. शौनकीया: । कौशिक ८५।५
५, जाजला: अ० परि० सं० २३।२
६. जलदा: अ० परि० सं० २।४
७. ब्रह्मवदा:
८. देवदर्शा: । कौशिक ८५।७
९. चारण वैद्या: । केशव-कौशि० सू० ६।७

अथर्ववेदीय शाखाकारों के नाम आते हैं। (२) पाणिनि मुनिकृत अष्टाध्यायी तथा गणपाठ में अनेक नाम मिलते हैं। (३) शौनकोक्त चरणव्यूह परिशिष्ट सूत्र। (४) अथर्ववेदीय परिशिष्टान्तर्गत ४९वां परिशिष्ट 'चरण व्यूह'। (५) महाभाष्य (६) विष्णु पुराण ३,४। (७) वायु पुराण। (८) अग्नि पुराण अ० २७०। (९) मार्कण्डेयपुराण अ० ४२, २०-२२। (१०) कूर्म्म पुराण। (११) स्कन्द पुराण। (१२) भागवत पुराण। (१३) देवी पुराण। (१४) सूत संहिता। (१५) कुमारिल भट्ट कृत तन्त्र वार्तिक। रामकृष्ण कृत संस्कार गणपति। (१६) महाभारत शान्ति पर्व। (१७) सायणाथर्ववेद भाष्यभूमिका पृ० २५। (१८) मुक्तिकोपनिषद्। (१९) भट्ट यज्ञेश्वर शर्मा कृत आर्य विद्यासुधाकर। (२०) राधाकान्तदेव कृत शब्द-कल्पद्रुम। Indische studien i. 152, 296, iii. 277-278, XIII. 434-435 भाग में Weber वेबर के लेखों को। मैक्समुल्लर कृत Ancient Sanskrit literature का इतिहास पृ० ३७१। राजेन्द्रलाल मित्र की गोपथ ब्राह्मण पर भूमिका पृ० ६। रॉथ का लेख Der Atharva Vedair Kashmir P. 247-9। स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश पृ० ७० तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ० २९१। Bloomfield की कौशिक सूत्र पर भूमिका पृ० XXXI. Dr. Richard Simon कृत Vedischen schulen की समग्र भूमिका तथा उसी में देव नागर अक्षरों में रामकृष्ण की पुस्तक। ब्लूमफील्ड कृत The Atharvaveda पृ० ११। स्वामी हरप्रसाद कृत वेदसर्वस्व। सामश्रमी सत्यव्रत कृत त्रयी परिचय। बालकृष्ण कृत ईश्वरीय ज्ञान वेद।

शाखा नामभेद के लिये देखो निम्नलिखित कोष्ठ

चरणव्यूह	सायण	गोपथ ब्रा०	चरणव्यूह महीधर	रामकृष्ण	चरणव्यूह वेबर
१. पैप्पला:	पैप्पलादा:	पिप्पला	,,	,,	पिप्पला:
२. दान्ता:	तौदा:	दाता:	,,	,,	शौनका:
३. प्रदान्ता:	मौदा:	प्रदापल:	,,	,,	दामोदा:
४. स्नाता:	शौनकीया:	नैता:	स्ता:	तौता:	तौत्तायना:
५. सौत्ना:	जाजला:	ब्रह्म दापला:	औता:	औन्ता:	जायाला:
६. ब्रह्म दाबला:	जलदा:	जावाला:	ब्रह्मदायश	,,	ब्रह्म पलाश:
७. शौनकी	ब्रह्मवदा:	सौनकी	,,	,,	कुनखी
८. देवदर्शी	देवदर्शा:	देवदर्शी	वेदार्शी	,,	,,
९. चरणविद्या:	चारण वैद्या:	,,‡	,,	,,	,,

‡ जहां पर (,,) चिह्न दिया है वहां सब प्रथम पंक्ति में आये हुओं की तरह जानना। विशेष नाम Dr. Richard कृत् Vedischen Sedulen से लेकर दिये हैं।

कई-कई इस वेद को १५ शाखा भी लिखते हैं।

इन उपर्युक्त शाखाओं में इस समय केवल दो शाखायें मिलती हैं। शौनकीय तथा पैप्पलाद। प्रथम शाखा सायण भाष्य सहित तथा मूल सर्वत्र उपलब्ध है। दूसरी ब्लूमफील्ड तथा गार्बे ने बाल्टीमोर में सन् १९०१ में लिथ्थो कराके छापी थी। वह शारदा अक्षर में प्रकाशित हुई हुई मिलती है। शेष ७ लुप्त हैं, आर्यों को इनके खोजने में यत्न करना चाहिये। जिस से कि ये भी शीघ्र जगत् में आ जावें। अथर्व के सम्बन्ध में पांच (अन्य) वेद भी लिखे हैं।

सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहास वेद, पुराणवेद।

ब्राह्मण—इस वेद का एक ही ब्राह्मण गोपथ नाम से प्रसिद्ध है, जो राजेन्द्रलाल मित्र तथा D. Gaastra द्वारा सम्पादित मिलता है।

सूत्र—कौशिक, (यह ब्लूम फील्ड सम्पादित मिलता है) वैतान सूत्र (यह गार्बे Garbe सम्पादित मिलता है)। नक्षत्र कल्प, आङ्गिरस कल्प, शान्ति कल्प (अभिचार कल्प, विधान कल्प) यह ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला। नक्षत्र कल्प जो प्रथम परिशिष्ट है वह मिलता है। इन पांचों कल्पों में क्या-क्या विषय है, यह सायण ने निज भूमिका में दिया है।

पांच अथर्ववेद के लक्षण ग्रन्थ हैं—

१. चतुरध्यायी, २. प्रातिशाख्यम्, ३. पञ्चपटलिका, ४. दन्त्योष्ठविधिः, ५. बृहत्सर्वानुक्रमणिका।

१. प्रथम लक्षण ग्रन्थ लेखरूप में लाहौर के दयानन्द कालेज के लालचन्द्र स्मारक पुस्तकालय में पड़ा है। २. दूसरा लक्षण ग्रन्थ पं० विश्वबन्धु जी शास्त्री एम० ए० ने सम्पादित कर दिया है छप रहा है। ३. तृतीय लक्षण ग्रन्थ पं० भगवद्दत्त जी ने दयानन्द कालेज रिसर्च विभाग से १९२० सन् में प्रकाशित किया था। ४. चतुर्थ लक्षण ग्रन्थ भी इसी रिसर्च विभाग से मैंने १९२१ सन् में प्रकाशित किया था। ५. पञ्चम लक्षण ग्रन्थ यह आप को भेंट किया जा रहा है, जिस की यह भूमिका लिखी गयी है।

परिशिष्ट—अथर्ववेदीय ७२ परिशिष्ट ग्रन्थ हैं, जो Bolling और Negelein ने मिलकर Leipzig में १९०९ में प्रकाशित किये थे। ये उन्होंने रोमन लिपि में छपवाये हैं उनके नाम ये हैं—

अथर्व—परिशिष्ट नामानि

१. नक्षत्र कल्पः। २. राष्ट्र संवर्गः। ३. राज प्रथमाभिषेकः। ४. पुरोहित कर्माणि। ५. पुष्याभिषेकः। ६. पिष्ट रात्र्या कल्पः। ७. आरात्रिकम्। ८. घृतावेक्षणम्। ९. तिल धेनुविधिः। १०. भूमिदानम्। ११. तुला पुरुषविधिः। १२. आदित्य मण्डकः। १३. हिरण्यगर्भ विधिः। १४. हस्ति रथदान विधिः। १५. अश्व रथदानविधिः। १६. गो सहस्रविधिः। १७. राजकर्म सांवत्सरीयम्। १८. वृषोत्सर्गः। १९. (क) इन्द्र महोत्सवः। (ख) ब्रह्मयागः। २०. स्कन्दयागः अथवा धूर्त्त कल्पः। २१. सम्भार लक्षणम्। २२. अरणि लक्षणम्। २३. यज्ञपाल लक्षणम्। २४. वेदि लक्षणम्। २५. कुण्ड लक्षणम्। २६. समो लक्षणम्। २७. स्रव लक्षणम्। २८. हस्त लक्षणम्। २९. ज्वाला लक्षणम्। ३०. (क) लघु लक्ष होमः। (ख) बृहल्लक्ष होमः। ३१. कोटि होमः। ३२. गण माला। ३३. घृत कम्बलम्। ३४. अनुलोम कल्पः। ३५. आसुरी कल्पः। ३६. उच्छुष्म कल्पः। ३७. समुच्चय प्रायश्चित्तानि। ३८. ब्रह्म कूर्चविधिः। ३९. तदागद्विधिः। ४०. पाशुपतव्रतम्। ४१. संध्योपासना विधिः। ४२. स्नानविधिः। ४३. तर्पणविधिः। ४४. श्राद्धविधिः। ४५ अग्निहोत्र होम विधिः। ४६. उत्तम पटलम्। ४७. वर्ण पटलम्। ४८. कौत्सव्यनिरुक्त निघण्टुः। ४९. चरण व्यूहः। ५०. चन्द्र प्रातिपदिकम्। ५१. ग्रह युद्धम्। ५२. ग्रह संग्रहः। ५३. राहु चारः। ५४. केतु चारः। ५५. ऋतु केतु लक्षणम्। ५६. कर्म विभागः। ५७. मण्डलानि। ५८. (क) दिग्दाह लक्षणम्। (ख) उल्का लक्षणम्। ५९. विद्युल्लक्षणम्। ६०. निर्घाट लक्षणम्। ६१. परिवेष लक्षणम्। ६२. भूमि कम्प लक्षणम्। ६३. नक्षत्रग्रहोत्पात लक्षणम्। ६४. उत्पात लक्षणम्। ६५. सद्यो वृष्टि लक्षणम्। ६६. गो शान्तिः। ६७. अद्भुत शान्तिः। ६८. स्वप्नाध्यायः। ६९. अथर्व हृदयम्। ७०. (क) भार्गवोयाणि। (ख) गार्ग्याणि। (ग) बार्हस्पत्यानि। ७१. औशनसाद्भुतानि। ७२. महाद्भुतानि।

उपनिषद्—प्रसिद्ध उपनिषदों में अथर्ववेदीय पांच ये हैं—१ प्रश्न, २ मुण्डक, ३ माण्डूक्य, ४ श्वेताश्वतर, और ५ कैवल्य शेष अथर्ववेदीय उपनिषदों के नाम ये हैं—

गर्भ। ब्रह्म। क्षुरिका। शूलिका। आरुणेय। प्राणाग्नि होत्र। वंतथ्य अलात शान्तिः। नीलरुद्र। नाद विन्दु। ब्रह्म विन्दु। अमृत विन्दु।

ध्यान। तेजो विन्दु। योग शिक्षा। योग तत्त्व। संन्यास। कण्ठ श्रुति। आत्म। महा। कठवल्ली। नारायण। बृहन्नारयण। महा नारायण। सर्व। हस। परम हंस। कालाग्नि रुद्र। राम तापनी। जाबाल। आश्रम। पिण्ड। शिरम्। शिक्षा। नृसिंहतापनी। गरुड़।

ये जितनी उपनिषदें ऊपर दी गयी हैं, सब माननीय तो नहीं; परञ्च तो भी पाठकों के ज्ञानवृध्यर्थं आवश्यक जान उन के नाम हमने दिये हैं। समग्र १०८ उपनिषदों का गुटका बम्बई में प्रकाशित मिलता है उसमें ये सब प्राय: मिलती हैं।

शिक्षा—अथर्ववेद को शिक्षा माण्डूकी शिक्षा बहुत प्रसिद्ध है। यह यत्र तत्र अनेक प्रेसों में छपी मिलती है, परञ्च जो दयानन्द कालिज रिसर्च विभाग में पं० भगवद्दत्त ने सम्पादन को है, वह बहुत सुन्दर शुद्ध और पठनीय है।

स्मृति—(पंठीनसी) पैठीनसी आचार्य के नाम से अथर्ववेदीय का एक धर्मशास्त्र प्रसिद्ध है। एक मत है कि उसका एक धर्मशास्त्र गद्य-पद्यात्मक है, दूसरा मत है कि वह सूत्रों में है। पैठीनसी अनेक हुए हैं। अथर्व परिशिष्ट में एक पैठीनसी को मौसली पुत्र कहा गया है। (देखो The atharva veda P. 18)।

लेख सामग्री

मैंने ग्रन्थ सम्पादन में जिन हस्त लिखित पुस्तकों की तथा ह्विटने के भाष्य में आये हुए दो आदर्शों की सहायता ली है। वे कहां से मिले किस प्रकार के हैं और किस आयु के हैं, इसका वर्णन क्रमशः किया जाता है—

(१) क जिस आदर्श पुस्तक का हमने (क) नाम दिया है, वह हमें भण्डारकर इन्स्टीट्यूट (Bhandarkar Institute) पूना से मिली है। 'उसकी लम्बाई १३ अङ्गुल और चौड़ाई ६ अं० है। पत्र संख्या ८७ है' प्रति पत्र में प्रायः दश पंक्तियें हैं और प्रति पंक्ति में प्राय: २५ अक्षर हैं। यह पुस्तक देवनागरी अक्षरों में है। देशी पत्र पर लिखी हुई है। अक्षर स्पष्ट और पठनीय हैं। कहीं-कहीं लेख इतना मिलाकर लिखा है कि पढ़ा नहीं जाता। पत्रों के दोनों ओर पार्श्व में दो-दो काली रेखायें हैं और बीच में लाल रेखा दी हुई है। यह ग्रन्थ पूर्ण नहीं, इसकी समाप्ति दशम



अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणिका



★ ओ३म् ★

अथ बृहत्सर्वानुक्रमणिका

[ॐ ब्रह्मवेदं नमस्कृत्य दुर्गां विघ्नेश्वरं गुरुम् ।
नृसिंहदक्षिणामूर्त्तिमथर्वाणमभेदतः ॥
आविष्कुर्वे ब्रह्मवेदं मन्त्रानुक्रमणीं यथा ।
ऋषिदैवतछन्दोभिर्युक्तां पाठफलाप्तये ॥][1]

ॐ अथाथर्वण गणमन्त्राणामृषिदैवतछन्दांसि । 'यत्काम ऋषिर्मन्त्रद्रष्टा वा[2] भवति यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छता स्तुतिः प्रयुज्यते सा देवता तस्य मन्त्रस्य भवति'। छन्दोऽक्षर-संख्यावाच्छेदकमुच्यते । तावत्तत्रछन्दोऽनुक्रमणम्, गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यतिजगतीशक्वर्यतिशक्वर्यष्टयत्यष्टि-धृत्यतिधृतिकृतिप्रकृत्याकृतिविकृतिसंकृत्यभिकृत्युत्कृत्येकविंशति छन्दांसीति । यत्र सर्वाणि छन्दांसीति वक्ष्यामस्तत्र गायत्र्यादि जगत्यन्तं सप्तछन्दांसि प्रकृतानि विजानीयात् । शंतातीयगणस्य शंतातिश्चन्द्रमाः सर्वाणि छन्दांसि । भैषज्यगणस्याथर्वा भैषज्या-

---

१. बी० में श्री गणेशाय नमः के आगे "अथर्वणनमः" है औरों में नहीं। ख. में इस स्थान पर "ओं नमो अथर्ववेदाय" है। ङ. में इस जगह पर "नमो ब्रह्मवेदाय" है। क. में "नमो ब्रह्मवेदाय", ब्रह्मवेदे भृगुरंगिरोक्तंबृहत्सर्वानुक्रमणिका लिख्यते । श्री गोपालरामचन्द्राभ्यांनमः ।

२. बी. मन्त्रदृष्ट्वा. क. ख. ग. घ. ङ च. मन्त्रदृष्टा वा। तुलना करो निरुक्त ७।१। "यत्कामऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति" । तथा तुलना करो कात्यायन ऋक्सर्वानुक्रमणी । ३।२ । तथा देखो बृहद्देवता 'अर्थमिच्छन्नृषिर्देवं यं यमाहायमस्त्विति प्राधान्येन स्तुवन्भक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः । १।६॥

युरतिजगत्यतिशक्वर्यौ सर्वाणिछन्दांसि च । रुद्रगणरौद्रगणयो-रथर्वा रुद्रोऽतिशक्वरीविराट्शक्वर्यष्टयः सर्वाणि छन्दांसि च । अथ दश गणाः । शान्तिगणस्य ब्रह्मा सोमोऽष्टिः संकृतिः सर्वा-णिछन्दांसि च । कृत्याप्रतिहरणगणस्य शुक्रः कृत्यादूषणोऽति-जगतोशक्वर्यौ सर्वाणिछन्दांसि ॥१॥

चातनगणस्य चातनऋषिरग्निर्देवता सर्वाणिछन्दांसि । मातृनामागणस्य मातृनामा ऋषिर्मातृनामा देवता, त्रिष्टुब्बृहत्य-नुष्टुब्जगत्युष्णिक्शक्वरी छन्दांसि । वास्तोष्पतिगणस्य ब्रह्मा ऋषिर्वास्तोष्पतिर्देवता शक्वर्यतिशक्वर्यौ सर्वाणि छन्दांसि च । पाप्महागणस्य ब्रह्माऋषिः पाप्महादेवता गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्पं-क्तिर्जगती छन्दांसि । तक्मनाशनगणस्य भृग्वंगिराऋषिर्यक्ष्मना-शनोदेवता शक्वर्यष्टचत्यष्टिधृतयः सर्वाणि छन्दांसि च । दुःस्व-प्ननाशनगणस्य यमऋषिर्दुःस्वप्ननाशनोदेवता सर्वाणि छन्दांसि । आयुष्यगणस्य ब्रह्माऋषिरायुर्देवतातिजगतीशक्वर्यष्टचत्यष्टि-धृत्यतिधृति प्रकृतयश्चगायत्र्यादि सप्तछन्दांसि । वर्चस्यगणस्या-थर्वाऋषिर्बृहस्पतिर्देवता सर्वाणिछन्दांसि ॥२॥

अथ सप्तगणानां स्वस्त्ययनाभयापराजितशर्मवर्मादेवपुरी-यचित्रागणपात्नीवतानामथर्वाऋषिश्चन्द्रमादेवता, शक्वर्यतिश-क्वर्यौ सर्वाणिछन्दांसि च । आदित्यगणस्यब्रह्माऋषिरादित्यो देवतातिजगतीशक्वर्यष्टचतिछन्दांस्यायुष्यगणवत् । पांचपत्यग-णस्याथर्वाऋषिरग्निर्वायुःसूर्यश्चन्द्रापोदेवता, गायत्र्युष्णिगनुष्टु-ब्बृहतीपंक्तयश्चछन्दांसि । सलिलगणस्यब्रह्माऋषिरादित्यो देवतातिजगतीशक्वर्यष्टचत्यष्टिधृत्यतिधृतिकृतिप्रकृतयश्चगाय-त्र्यादि सप्तछन्दांसि । विश्वकर्मागणस्याथर्वा ऋषिर्वाचस्पति-र्देवतानुष्टुबुष्णिग्बृहतीपंक्तयश्चछन्दांसि । अर्थमुत्थापनगणस्या-

थर्वाऋषिरग्निर्देवतानुष्टुप्त्रिष्टुबुष्णिग्जगतीपंक्तिर्बृहत्यतिछन्दांसि । राज्याभिषेकगणस्य ब्रह्माऋषिर्मृत्युदेवताथर्वांगिरा, आपश्चंद्रमाउष्णिग्जगतीपंक्तिस्त्रिष्टुबनुष्टुब्बृहत्यश्च्छन्दांसि । अंहोलिंगगणस्याथर्वाऋषिरिन्द्राग्नी चन्द्रवरुणविश्वेदेवा देवताः सर्वाणि छन्दांसि ॥३॥

अथ सूक्तमन्त्राणां ऋषिदैवतछन्दांसि ।

कां० १ । सू० १ तत्र प्रथमं १ 'ये त्रिषप्ता' इति त्रीणि सूक्तान्यानुष्टुभान्येवाथर्वाऽपश्यत्पूर्वं वाचस्पत्यं, द्वितीयं चान्द्रमसं पार्जन्यम्, तृतीयं पर्जन्यमित्रादिबहुदेवत्यम् । पूर्वेण चतुर्ऋचेन वाचस्पतिमेवास्तौत्[1] वाचाभिवृद्धयै, द्वितीयेन चतुर्ऋचेनामृतमयं पर्जन्यं स्वदेवं चन्द्रमसं च । तृतीयेन नवर्चेन मन्त्रोक्तान्सर्वान्देवानिति । ४'उपहूतो वाचस्पतिरिति' चतुष्पदा विराडुरोबृहती ।

१।२।३ 'वृक्षंयदिति' त्रिपदाविराण्नामगायत्री ।

१।३।१ 'विद्माशरस्येति' तृतीयस्य नवर्चस्याद्याः पथ्यापंक्तयः । [2]'तत्रैकोनानिचृद्द्वय्रूनाविराडेकाधिकाभुरिक् द्वयधिका स्वराडिति । संदिग्धे देवतादित' इति सर्वत्र परिभाष्यते । पराश्चतस्रः [3]प्रथमः प्रतीकत्वेनानुष्टुभइत्येवं सर्वत्र वक्ष्यमाणेषु मन्त्रेषु प्रथम [4]प्रतीकिका प्रकृतिरिति ॥४॥

---

१. ख. वाचाविवृद्धयै ।

२. तु० क० पिङ्गलछन्दः सूत्रम् अध्या० ३ । ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ ॥५९॥ द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ ॥६०॥ आदितः संदिग्धे ॥६१॥ देवतादितश्च ॥६२॥

३. गु० प्रातीकल्पेन ।

४. ग० च० प्रतीका ।

[1]१।४।–१ 'अम्बयोयन्तीति' त्रीणि सूक्तान्यपोनप्त्रीयाणि गायत्राणि सोमाद्बैवतानि सिन्धुद्वीपोऽपश्यदंत्यमथर्वा, कृतिः स्वस्थानत्वेनैतैः सूक्तैरप एवास्तौत् । ४'तत्राप्स्वन्तरिति' पुरस्ताद्बृहती ॥

१।६।४ 'शं न आप' इति पथ्यापंक्तिः ॥

१।७।१। 'स्तुवानम्' इति ।

१।८।१ 'इदंहविरिति' चैतत्सूक्तद्वचमानुष्टुभं चातनोऽपश्यत् । प्रथमेन सप्तर्चेन स्तुवानं यातुधानमग्निमाह्वयत्ततोग्निः सर्वाभि ऋग्भिरस्तौत् । 'इदंहविरिति' द्वाभ्यामृग्भ्यां बृहस्पतिमिग्नीषोमौ चाप्रार्थयत् । पराभ्यामग्नि ७।५ 'पश्यामते' इति त्रिष्टुप् । ७।३ 'अथेदमग्ने' इत्यग्निमिन्द्रप्रार्थना च । ८।४ । 'यत्रैषामग्ने' इति बार्हतगर्भात्रिष्टुबिति ॥५॥

१।९।१ 'अस्मिन् वस्विति' सूक्तं त्रिष्टुभं वस्वादिनाना मन्त्रोक्त देवत्यमथर्वापश्यत्तत्र प्रथमा द्वितीये बहुदेवत्ये । परे द्वे आग्नेय्यौतत आभिर्मन्त्रोक्तान्देवानग्निपुरोगमान्सर्वानप्रार्थयच्चतसृभिर्वस्वादिसर्वमिष्टं च ॥

१।१०।१ ततो 'अयंदेवानामिति' सूक्तमासुरं वारुणं त्रैष्टुभं । पूर्वयासुरमस्तौत्पराभिर्वरुणमानुष्टुभावंत्ये द्वे । ३'यंदुवंक्थेति' ककुम्मती ॥

१।११।१ 'वषट् ते पूषन्निति' सूक्तं पौष्णं षडर्चं पांक्तमनेन मन्त्रोक्तानर्यमादि देवान्नारीसुखप्रसवायाभिष्टूयेष्टञ्च सर्वाभि-

---

१. इस १।४। सूक्त के १–३ मन्त्रों का ऋ० वे० में १।२३।१६–१९ में मेधातिथि: काण्व ऋषि है ।

अथर्व० १।५। सूक्त तथा १।६। के २, ३ मन्त्र ऋ० वे० १०।९। सूक्त में आये हैं वहां इन मन्त्रों का द्रष्टा त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः वा सिन्धुद्वीप वा आम्बरीष ऋषि हैं ।

रप्रार्थयत् । २'चतस्रो दिवः' इत्यनुष्टुप्परा चतुष्पदोष्णिग्गर्भा ककुम्मत्यनुष्टुप् । ४'नेव मांसे' इति तिस्रः पथ्यापंक्तय इत्यनयोः प्रागुक्तर्षिरिति ॥६॥

१।१२॥१ 'जरायुजः' इति सूक्तं यक्ष्मनाशन देवताकं जागतं भृग्वंगिरा । द्वितीयान्त्यनुष्टुप् ॥

१।१३।१ 'नमस्ते अस्तु' ॥

१।१४।१ 'भगमस्या' इति सूक्ते वैद्युते द्वे आनुष्टुभे । प्रथमं वैद्युतं परं वारुणं वोत याम्यं वा । प्रथमेन विद्युतमस्तौत्, द्वितीयेन तदर्थं यममिति । १४।१ 'भगमस्या' इति ककुम्मती । १३।३ 'प्रवतो नपादिति' चतुष्पाद्विराड्जगती । १३।४ 'यां त्वा देवा' इति त्रिष्टुप्पराबृहती गर्भा पंक्तिः । १४।३ 'एषा ते कुलपा' इति चातुष्पाद्विराड् ॥

१।१५।१ 'सं सं स्रवन्त्विति' सूक्तमानुष्टुभंसैंधवमथर्वापश्यत्ततोऽनेन मन्त्रोक्तान्देवानप्रार्थयदाद्या, द्वितीया भुरिक् पथ्यापंक्तिरिति ॥७॥

१।१६॥१ 'येऽमावास्यामिति' सूक्तमग्नीन्द्रं वारुणं दधत्यमानुष्टुभं चातनोऽद्राक्षीदनेन मन्त्रोक्तान्देवान् सीसमभिष्टूयाप्रार्थयत् । ४'यदि नोगामिति' ककुम्मती शेषं प्राकृतम् ॥

१।१७॥१ 'अमूर्या' इति सूक्तं योषिद्देवत्यमानुष्टुभं । ब्रह्मा लोहितवाससो मन्त्रोक्तदेवता अस्तौत् । आद्या भुरिक् । ४'परि वः सिकतावतीति' त्रिपदार्षीगायत्री ॥

१।१८॥१ 'निर्लक्ष्म्यमिति' सूक्तं वैनायकमानुष्टुभं द्रविणोदाः । प्रथमोपरिष्टाद्विराड्बृहती । २'निररणिमिति' निचृज्जगती । ३'यत्त आत्मनीति' विराडास्तारपंक्तिस्त्रैष्टुभमिति ॥८॥

१।११९।१ 'मानो विदन्निति' सूक्तमैश्वर्यमानुष्टुभम् । ब्रह्मा प्रथमैन्द्री, द्वितीया [1]'मानुष्येष्ठवीदैवीस्तृतीयारौद्रीया । 'यद्देवत्या तया तामेवास्तौदिति' वैश्वदेवत्या । २'विष्वञ्चो अस्मच्छरवः' इति पुरस्ताद्बृहती । ३'यो नः स्वो' इति पथ्यापंक्तिः ॥

१।१२०[2] ।१ 'अदारसृदिति' सूक्तं सौम्यमानुष्टुभमथर्वा, प्रथमात्रिष्टुप् सौम्या । द्वितीया मारुतः । तृतोया मैत्रावारुणी । परा वारुणी । परैन्द्री ॥

१।१२१[3] ।१ 'स्वस्तिदा विशामिति' सूक्तमैन्द्रमानुष्टुभमनेनेन्द्रप्रार्थनां प्रागुक्तर्षिरकरोत् ॥

१।१२२[4] ।१ 'अनुसूर्यमिति' सूक्तं सौर्यमुत मन्त्रोक्तं । हरिमादेवत्यमानुष्टुभं । ब्रह्मा ततोऽनेन सूर्य्यं, हरिमाणं, हृद्रोगं चास्तौदनाशयम् ॥

१।१२३।१ 'नक्तं जातेति' सूक्तं वानस्पत्यमानुष्टभमथर्वा श्वेतलक्ष्मविनाशनायानेनासिक्नीमोषधिमस्तौदिति ॥६॥

१।१२४।१ 'सुपर्णो जात' इति सूक्तमासुरी वनस्पतिदेवत्यमानुष्टुभं । ब्रह्मासुरीमनेनास्तौदिति । २'आसुरी चक्र' इति निचृत्पथ्यापंक्तिः ॥

---

१. सब मूल पुस्तकों में इस पाठ पढ़ने में शंका बनी रही है। मूल अ० वेद १।११९।२ में "दैवीर्मनुष्येषवः" पाठ है। हमने जो शुद्ध पाठ (ङ) मूल पुस्तकाधार से जाना है, वह दिया है।

२. इस १।२०। सूक्त का चतुर्थ मन्त्र ऋ० वे० १०।१५२।१ में आता है, वहां इसका ऋषि शासोभारद्वाजः, देवता इन्द्र और छन्द निचृदनुष्टुप् है।

३. १।२१। इस सूक्त के चारों मन्त्र ऋ० वे० १०।१५२ सूक्त में आते हैं। स्वस्तिदा मन्त्र का ऋ० वे० में थोड़ा सा भेद है। ऋ० वे०।। में इस सूक्त का द्रष्टा शासो भारद्वाजः ऋषि है।

४. २२॥४ मन्त्र का ऋ० १।५०।१२ में बहुत थोड़े भेद से आता है, वहां इस का ऋषि प्रस्कण्वः काण्वः है।

१।२५।१ 'यदग्निरिति' सूक्तं यक्ष्मनाशनाग्निदैवतं त्रैष्टुभं भृग्वंगिरामन्त्रोक्तदेवानस्तौत्। द्वितीया तृतीये विराड्गर्भे। ४'नमः शीतायेति' पुरोऽनुष्टुबिति ॥

१।२६।१ 'आरे साविति' सूक्तमिन्द्रादि बहुदेवत्यं गायत्रं। ब्रह्मा मन्त्रोक्तान्देवानभिष्टूयाप्रार्थयत्। २'सखासाविति' त्रिपदा साम्नीत्रिष्टप्। ४'सुषूदतेति' पादनिचृदुभे एकावसाने ॥

१।२७।१ 'अमूः पार' इति सूक्तं चान्द्रमसमुतेन्द्राणी दैवतमानुष्टभं। स्वस्त्ययनकामोऽथर्वा। प्रथमा पथ्यापंक्तिः ॥

१।२८।१ 'उप प्रागाद्देव' इति सूक्तमाग्नेयमानुष्टुभम्। चातनः सार्द्धाद्ययाग्निमस्तौत्। [1]साधर्भ्यांपरामृग्भ्यां यातुधानीश्चेति। ३ 'या शशापेति' विराट्पथ्याबृहती। ४'पुत्रमत्त्विति' पथ्यापंक्तिरिति ॥१०॥

१।२९।१ [2]'अभीवर्तेनेत्य' भीवर्तमणि सूक्तं षडर्चं ब्राह्मणस्पत्यमानुष्टुभं। वसिष्ठोऽनेन सूक्तेनेमं मणि सपत्नक्षयणाय, चन्द्रमसो ब्राह्मणस्पत्यमभिष्टूयाप्रार्थयत् ॥

१।३०।१ 'विश्वेदेवाः' इति सूक्तं वैश्वदेवं त्रैष्टुभमायुष्कामोऽथर्वा सर्वान् वस्वादिदेवान् सर्वाभिर्ऋग्भिरस्तौत्। ३'ये देवाः' इति शाक्वरगर्भाविराड्जगती ॥

१।३१।१ 'आशानामाशापालेभ्यः' इति सूक्तमाशा [3]पालीयं, वास्तोष्पत्यमानुष्टुभम्। ब्रह्मानेनाशापालान्वास्तोष्पतीन् सूक्ते-

---

१. यह पाठ किसी भी हस्तलेख में भली प्रकार से नहीं पढ़ा जाता तथापि ह० ले० के आधार से ही उपर्युक्त पाठ की कल्पना की गई है।

२. इस सूक्त के आदि के तीन मन्त्र अत्यन्त थोड़े भेद से ऋ० १०।१७४ में आते हैं वहां ऋषि अभीवर्त्तः और देवता राज्ञः स्तुतिः है।

३. ख. ग. ङ. च. लीये ॥

नास्तौत् ३'अस्रामस्त्वा' इति विराट्त्रिष्टुप् । ४'स्वस्ति मात्रे' इति परानुष्टुप्त्रिष्टुबिति ॥११॥

१।३२।१ 'इदंजनासः' इति ब्रह्मसूक्तं द्यावापृथिवीयमानुष्टुभमनेन तदेवास्तौदिति । [1]सर्वत्रानुक्तर्षिसूक्तेषु प्रागुक्तर्षिरिति विजानीयादनुक्त [2]क्रियेष्वपश्यात्तन इति च सर्वत्र परिभाष्यते । या [3]यद्देवत्या तया तामेवास्तौदिति पारिभाषिकं सूक्तमिति च [4]सर्वत्रावगच्छेदिति शास्त्रप्रकृतिराग्रन्थपरिसमाप्तेः । २ 'अन्तरिक्ष आसाम्' इति ककुम्मतीति ॥

१।३३।१ 'हिरण्य वर्णाः' इति सूक्तं चान्द्रमसमाप्यमुत त्रैष्टुभं । शंतातिः सर्वेण सूक्तेन सर्वकारणं आप एवेति विज्ञाय ता [5]अस्तौदिति ॥

१।३४।१ 'इयं वीरुत्' इति [6]मधुकमणिसूक्तं पञ्चर्चं वानस्पत्यमानुष्टुभमथर्वा मधुवनस्पतिमस्तौत् ॥

१।३५।१ 'यदाबध्नन्' इति हैरण्यमैन्द्राग्नमुत वैश्वदेवं जागतं ततोऽनेन सूक्तेन हिरण्यमेवास्तौत् । यच्छतानीकाय राज्ञे

---

१. अनुक्त ऋषि ।

२. ख. क्रियेष्वपश्यत्तत, च. क्रियेष्वपस्थातन ।

३. बी. या यद्दचावत्या ।

४ बी. सर्वत्र नहीं ।

५. समग्र, ह० लेखों में 'विज्ञातास्तौत्' पाठ है परन्तु हमारी सम्मति में यह पाठ अशुद्ध लिखे हुए हैं, शुद्ध करके व्याकरण के नियम से पाठ हमने मूल में दिया है ।

६. बी. क. ग. गु. मदुघ, ख. ङ. च. मधुघ. हमने दोनों ही पाठ नहीं दिये, कौशि. १।३४ में इसी सूक्त पर सूत्र लिखते हुए 'मधुक मणिमीक्षेऽपनीय इयं वीरुत्' पाठ में 'मधुकमणिं' आया है, यही ठीक जान मूल में दिया है ।

दक्षर्षेः पुत्रा अबध्नँस्तत्र आत्मनि बध्नाम्यायुष्कामः । ४ 'विश्वे-देवाः' इति ४ 'समानां मासाम्' इत्यनुष्टुब्गर्भा चतुष्पदात्रिष्टुप् 'तत्ते' बध्नाम्यायुषे १वर्चसेबलाय' इति शाक्वरस्तथा ३[3] 'अस्मि-न्तद्दक्षमाणः' इति ॥१२॥



२. यह प्रतीक इस सूक्त में किसी मन्त्रारम्भ की नहीं, हां चतुर्थ मन्त्र के उत्तरार्ध में यह पद आया है।

३. यह प्रतीक भी प्रथम मन्त्र के उत्तरार्ध के आरम्भ की है।

४. यह भी प्रतीक नहीं, परन्तु तृतीय मन्त्र के उत्तरार्ध में यह पाठ आया है। मूल में इस सूक्त में 'समानामासामिति' इस प्रतीक के विना अन्य सब प्रतीक आरम्भ की नहीं हैं, यह भी बात यहां चिन्तनीय ही है।

[†]अथ द्वितीयं काण्डम्

२।१।१ 'वेनस्तत्' इति प्रभृतिराकाण्डपरिसमाप्तेः पूर्वकाण्डस्य चतुरृचप्रकृतिरित्येवमुत्तरोत्तरकाण्डेषु षष्ठं यावदेकैका तावत्सूक्तेष्वृगिति विजानीयात्। १ 'वेनस्तत्' इति त्रैष्टुभं ब्रह्मात्मदैवतं वेनोऽपश्यत्। ततोऽनेन सूक्तेन तदेवास्तौदिति। [१]३ 'स नः पिता' इति जगती ॥

२।२।१ 'दिव्यो गन्धर्वः' इति त्रैष्टुभं। मातृनामा गन्धर्वाप्सरो देवत्यं मातृनामानेन सूक्तेन मन्त्रोक्तान् गन्धर्वाप्सरसो देवता अस्तौत्। ४'अभ्रिये दिद्युत्' इति त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री। १'दिव्यो गन्धर्वः' इति विराड्जगती। ५'याः क्लन्दाः' इति भुरिगनुष्टुबिति ॥१३॥

२।३।१ 'अदो यत्' इति भैषज्यायुर्धन्वंतरिदैवतं षडर्चमानुष्टुभमंगिरा अपश्यदनेन मन्त्रोक्तान् देवानस्तौत्। ६ 'शं नो भवन्तु' इति त्रिपात्स्वराडुपरिष्टान्महाबृहतीति ॥

२।४।१ 'दीर्घायुत्वाय' इति चान्द्रमसमुतजंगिडदेवताकमानुष्टुभं षडर्चमथर्वानेन सूक्तेन जंगिडमणिमस्तौदिति। प्रथमा विराट्प्रस्तारपंक्तिरिति ॥

२।५।१ [२]'इन्द्र जुषस्व' इति सप्तर्चं त्रैष्टुभमैन्द्रं भृगुरथर्वाण इन्द्रमनेन सूक्तेनाह्वयदाद्यया पराभिश्च सर्वाभिस्तमस्तौदिति।

---

†. यह पाठ हमारा है।

१. थोड़े भेद से यह मन्त्र ऋ० वे० १०।८२।३ में आया है वहां ऋषि विश्वकर्मा भौवनः है।

२. इस २।५ सूक्त के ५–७ मन्त्र ऋ० वे० १।३२।१-३ में आते हैं वहां इन का ऋषि हिरण्यस्तूप आङ्गिरस है।

[1]य उपरिष्टाद्बृहत्यौ तत्र प्रथमा निचृदुत्तरा विराडिति । ३ 'इन्द्रस्तुराषाट्' इति विराट्पथ्याबृहती । ४ 'आ त्वा विशन्तु सुतासः' इति जगती पुरोविराडिति ॥१४॥

२।६।१ 'समास्त्वाग्ने' इत्याग्नेयं त्रैष्टुभंसम्पत्कामः शौनकोऽनेन सूक्तेनाग्निमस्तौदिति । ४ 'क्षत्रेणाग्ने स्वेन' इति चतुष्पदार्षीपंक्तिः परा, विराट्प्रस्तारपंक्तिरिति ॥

२।७।१ 'अघ द्विष्टा' इति भैषज्यायुर्वनस्पतिदेवत्यमानुष्टुभमथर्वा प्रथममनेन सूक्तेन दूर्वामस्तौदिति । प्रथमा भुरिक् । ४'परि मां परि मे' इति विराडुपरिष्टाद्बृहती ॥

२।८।१ 'उदगातां' ॥

२।९।१ 'दशवृक्ष' इति च द्वे इमे सूक्ते वानस्पत्ये यक्ष्मनाशन देवते चानुष्टुभे भृग्वंगिरा आभ्यां मन्त्रोक्तदेवते अस्तौत् । २।८।३ 'बभ्रोरर्जुन काण्डस्य' इति पथ्यापंक्तिः, परा विराट्, परा निचृत्पथ्यापंक्तिः । १ 'दशवृक्ष मुञ्च' इति विराट्प्रस्तारपंक्तिरिति ॥१५॥

२।१०।१ 'क्षेत्रियात् त्वा' इति सूक्तं प्रागुक्तर्षिगणं निर्ऋतिद्यावापृथिव्यादिनाना देवत्यमष्टर्चं । प्रथमा त्रिष्टुप् तया निर्ऋतिमस्तौद्ब्रह्मणा सह सर्वाभिर्द्यावापृथिवी । द्वितीययाग्निमद्भिः सह पूर्वपादेनोत्तरेण सहौषधीभिः सोमम् । तृतीयया पूर्वपादेन वातमुत्तरेण चतस्रो दिशः । पराभिर्वातपत्नीः, सूर्ययक्ष्मम्, निर्ऋतिप्रभृतीनिचेति । २ 'शं ते अग्निः' इति सप्तपादष्टिः । ३'शं ते वातः', ४ 'इमा या देवीः', ५ 'तासु त्वा', ८ 'सूर्यमृतं', ७ 'अहा अरातिम्' इति, प्रत्यृचं सप्तपादो धृतयः । ६ 'अमुक्था

१. ठीक पाठ पढ़ा नहीं जाता क: गु. में 'त्यं त्ये' पाठ है ।

यक्ष्मात्' इति सप्तपादत्यष्टिः । [1]८ 'एवाहं त्वाम्' इति द्वावौष्णिहौ पादाविति ॥१६॥

२।११।१ 'दूष्या दूषिरसि' इति कृत्यापरिहरण सूक्तं कृत्यादूषण देवत्यं । शुक्रोऽनेन स्राक्त्यमणिमेव सर्वरूपमित्यस्तौत् । प्रथमा चतुष्पदा विराड् गायत्री । २ 'स्राक्त्योऽसि' इति चतस्रस्त्रिपदाः परोष्णिहः । ४ 'सूरिरसि' इति पिपीलिकमध्या निचृदिति ॥१७॥

२।१२।१ [2]'द्यावापृथिवी उरू' इति सूक्तमष्टर्चं नाना देवत्यं । त्रैष्टुभ भरद्वाजः प्रथमया द्यावापृथिवी अन्तरिक्षमुरूगायमस्तौत् । द्वितीयया देवान्, परयेन्द्रं, परयादित्यवस्वंगिरः पितृन् सौम्यान्, परया ब्रह्मविराट्तपोऽघ्न्यो मरुतः, परया यमसदनात्, परया ब्रह्मा, परयाग्निमिति । तत्र २'इदं देवाः' इति जगती । ७ 'सप्त प्राणान्' इति द्वे अनुष्टुभौ । शेषः प्रतीक इति ॥१८॥

२।१३।१ 'आयुर्दा' इति बहुदेवत्यमुताग्नेयम् । त्रैष्टुभमथर्वाद्ययाग्निमस्तौत् । पराभ्यांबृहस्पतिं [3]चन्द्रमसे वासः प्रार्थयत् । पराभ्यामायुर्विश्वान्देवान् । ४ 'एह्यश्मानम्' इत्यनुष्टुप् । ५ 'यस्य ते वासः' इति विराड्जगती ॥

२।१४।१ 'निस्सालाम्' इति षडर्चमानुष्टुभम् । शालाग्निदेवत्यमुत मन्त्रोक्तदेवताकं चातनः सर्वाभिर्ऋग्भिर्मन्त्रोक्तान् देवान् अग्निभूतपतीन्द्रानस्तौत् । २ 'निर्वः' इति भुरिक् । ४ 'भूतपतिः' इत्युपरिष्टाद्विराड्बृहतीति ॥१६॥

---

१. गु. में यहां यह अधिक पाठ है जो कि अन्यों में २।१२ के आरम्भ में है। 'स द्यावा पृथिवी उर्वीतिस्तत्कमष्टर्चं नाना देवत्यं त्रैष्टुभं भरद्वाजः प्रथमया सर्पदित्यष्टिः' ।

२. इस सूक्त का छठा मन्त्र थोड़े से भेद से ऋ० वे० ६।५२।२ में है।

३. बी चन्द्रसो. क. चन्द्रमासा।

२।१५।१ 'यथाद्यौः' ॥

२।१६।१ 'प्राणापानौ' ॥

२।१७।१ 'ओजोसि' इति त्रीणि प्राणापानायुर्देवत्यानि नानाछन्दांसि । ब्रह्मा प्रथमं षडर्चं त्रिपाद्गायत्रं तेन प्राणमप्रार्थयत् । परे द्वे एकावसाने । तत्र द्वितीयं सप्तर्चं तस्याद्याः षडेकपदा आसुरी त्रिष्टुभोऽन्त्यासुर्युष्णिक् पृथक् प्रथमेन प्रत्यृचं मन्त्रोक्तान्देवान् स्वायुरेवाप्रार्थयत् । परेणौजः प्रभृतीनि प्राणायुश्च । १६।१ 'प्राणापानौ' इत्येकपदासुरी त्रिष्टुप्[1] । द्वितीयैकपदासुर्युष्णिक् । पराचैकपदासुरी त्रिष्टुप् । ४'अग्ने वैश्वानर' इति[2] [द्वे] द्विपदे आसुरी गायत्र्यावाद्याद्य [3]ऋतुवर्णः पराद्यो वसुवर्ण इति ॥

२।१८। 'भ्रातृव्यक्षयणम्' इत्याग्नेयं द्वैपदं साम्नाबार्हतम् चातनः सपत्नक्षयकामोऽनेन सूक्तेन सपत्नक्षयणीः समिध आधायाग्नि प्रार्थनीयमप्रार्थयच्चेति ॥२०॥

२।१९।१ 'अग्नेयत्' इति पंचसूक्तानि त्रिपाद्गायत्राणि । प्रतिसूक्तं पंच पंचर्चान्येकावसानानि [4]पांचपत्यान्यथर्वा । प्रथममाग्नेयं, द्वितीयंवायव्यं, तृतीयंसौर्यं च, तुरीयंचान्द्रं, पञ्चममाप्यमिति । प्रथमेनाग्निमस्तौत् द्वितीयेन वायुं, तृतीयेनसूर्यं, चतुर्थेन चान्द्रमसं, पञ्चमेनाप इति । तत्राद्यानां चतुर्णामाद्याश्चतस्रो निचृद्विषमा गायत्र्योऽन्त्या भुरिग्विषमा । पञ्चमस्याद्याश्चतस्रः समविषमा अन्त्यास्वराड्विषमा । सर्वा एव संगताः पंच विंशतिस्त्रिपाद इति ॥

---

१. मूल ग्रन्थ 'भः'।

२. मूल ग्रन्थों में (द्वे) नहीं बन्धनी में स्वयं दिया है।

३. यह पाठ ठीक नहीं पढ़ा जाता ऋ और क. में संशय था हमने ऋ पाठ दिया है।

४. ह्विं० कौशिक सूत्र ४७।८ के आधार से 'पंचापत्यानि' पाठ मानता है।

२।२४।१ 'शेरभक' अष्टर्चमायुष्यं पांक्तम् । ब्रह्मा सर्वाभिः प्रत्यृचं मन्त्रोक्तदेवतामृग्भिरस्तौदिति । प्रथमे द्वे पुरउष्णिहे, परे द्वे पुरो देवत्ये पांक्ते, सर्वा एताश्चतस्रो वैराजः । पराः पंचपदाः पथ्यापंक्तयोऽत्राद्ये भुरिजावुत्तरे निचृदाविति । ५'जूर्णि' इति चतुष्पदा बृहत्यः प्रथमा वर्जं तिस्रो भुरिज इति ॥२१॥

२।२५।१ 'शं नः' इति वानस्पत्यमानुष्टुभम् चातनोऽनेन पृश्निपर्णीमोषधीमस्तौत् । ४'गिरिमेनां' इति भुरिक् ॥

२।२६।१ 'एह यन्तु' इति पशव्यं त्रैष्टुभं सवितानेन पशून्भ्यस्तौदिति । ३'सं सं स्रवन्तु' इति उपरिष्टाद्विराड्बृहती । ४'सं सिञ्चामि' इति द्वे अनुष्टुभौ । पूर्वा तत्र भुरिक् ॥

२।२७।१ 'नेच्छत्रुः' इति सप्तर्चं वानस्पत्यमानुष्टुभम् कपिञ्जलः प्रथमयारिनिरोजस्त्वमप्रार्थयन्मन्त्रोक्तमौषधिं, पराभिश्चतसृभिश्चौषधिमस्तौत् । परया रौद्रचा रुद्रं, परयैन्द्रमिति ॥

२।२८।१ 'तुभ्यमेव' इति त्रैष्टुभम् । जरिमायुर्दैवतं । शंभू प्रथमया जरिमाणमभिष्टूयाप्रार्थयदायुश्च । द्वितीयया मित्रावरुणौ, परया पुनर्जरिमाणं । पराभिर्द्यावापृथिव्यादिदेवानायुश्च । प्रथमा जगत्यंत्याभुरिगिति ॥२२॥

२।२९।१ 'पार्थिवस्य' इति सप्तर्चं त्रैष्टुभं बहुदेवत्यम् अथर्वा प्रथमा वैश्वदेवी, तया देवानायुष्यमात्मनेऽप्रार्थयत् द्वितीयायाः प्रथमेनायुर्जातवेदसं, परेण पादेन प्रजां त्वष्टारं, तृतीयेन सवितारं धनं शतायुश्च, परयेन्द्रं सौप्रजास्त्वादि, पराभ्यां द्यावापृथिव्यौ विश्वान्देवान् मरुतश्चापश्च, परयाश्विनौ, परयेन्द्रमस्तौदिति च शिष्यते । प्रथमानुष्टुप् । ४ 'इन्द्रेण दत्तः' इति पराबृहतीनिचृत्प्रस्तारपंक्तिः ॥

२।३०।१ 'यथेदम्' इति प्रजापतिराश्विनमानुष्टुभं कामिनी मनोऽभिमुखीकरणकामः प्रथमया भूतृणं दृष्टान्तेन मनोमंथनमादध्यात् । परयाश्विनौ, पराभिस्तदर्थमोषधिमस्तौदंतयया दम्पती परस्परंमनोग्रहणमाकुरुताम् ॥

२।३१।१ 'इन्द्रस्य या' इति महीदेवत्यमुत चान्द्रमसमानुष्टुभं काण्वः । प्रथमया महीमस्तुवत्, पराभिः सर्वाभिश्च कृमिजम्भनमादध्यादिति । २'दृष्टमदृष्टम्' इत्युपरिष्टाद्विराड्बृहती । परार्षी त्रिष्टुप् । ४ 'अन्वान्त्र्यम्' इति प्रागुक्ता बृहती । ५ 'ये क्रिमयः' इति प्रागुक्ता त्रिष्टुप् ।

२।३२।१ 'उद्यन्नादित्यः' इत्यादित्यदेवत्यं षड्चमानुष्टुभमनेनोक्तऋषिरुक्तक्रियामकरोदिति । प्रथमा त्रिपाद्भुरिग्गायत्री । ६ 'प्र ते शृणामि शृंगे' इति चतुष्पान्निचृदुष्णिगिति ॥२४॥

२।३३।१' [1]'अक्षीभ्याम् ते' इति यक्ष्मविबर्हणं सप्तर्चं चान्द्रमसमायुष्यमानुष्टुभम् । ब्रह्मानेन सर्वेण सूक्तेन सर्वांगतो यक्ष्मनिर्गमनमादध्यात् । ५ 'ऊरुभ्यां ते' इत्युपरिष्टाद्विराड्बृहती । ३ 'हृदयात्ते' इति ककुम्मती । ४ 'आन्त्रेभ्यः' इति चतुष्पाद्भुरिगुष्णिक् । ६ 'अस्थिभ्यः' इत्युष्णिग्गर्भा निचृदनुष्टुप् । ७ 'अङ्गे अङ्गे' इति पथ्यापंक्तिः ॥

२।३४।१ 'य ईशे' इति पाशुपत्यं पशुभागकरणं त्रैष्टुभमथर्वा । प्रथमया पशुपतिमभिष्टूय परा [2]पश्वाप्रार्थयदंततो द्विती-

---

१. इस २।३३ सूक्त के १,२,४,५,७ मन्त्र ऋ० वे० १०।१६३ सूक्त में आते हैं। १, २, ५, मन्त्र तो वैसे के वैसे ही हैं, अन्य ४, ७ मन्त्र कुछ भेद से आये हैं। वहां इन मन्त्रों का ऋषि 'विवृहा काश्यपः' है।

२. यह पाठ सब मूल लेखों में पढ़ना कठिन है। घ. ङ. में "परायश्च" पढ़ा जाता है। अन्यों में जो पाठ ऊपर दिया है वैसा ही पढ़ा जाता है।

यया देवान्, परयाग्निं विश्वकर्म्माणम्, परया वायुं प्रजापतिमं-त्यया यज्ञियं पशुमाशिषा प्राणुदत् ॥

२।३५।१ 'ये भक्षयन्तः' इति वैश्वकर्माणं त्रैष्टुभमंगिरा सर्वेणानेन सूक्तेन तं विश्वकर्माणमेवास्तौत् । प्रथमा बृहतीगर्भा । ४'घोरा ऋषयः', ५'यज्ञस्य चक्षुः' इति भुरिजौ ॥

२।३६।१ 'आ नो अग्ने' इत्यष्टर्चमग्नीषोमीयं त्रैष्टुभं पतिवेदनः प्रथमयाग्निमस्तौत् द्वितीयया सोमादीन् देवान्, परयाग्नीषोमौ, परया त्विन्द्रम्, परया सूर्यम्, परया धनपतिम्, परया हिरण्यादिभगं चांत्ययौषधिमप्रार्थयदिति । प्रथमा भुरिक् । २'सोमजुष्टं' ५ 'भगस्य नावम्' इति तिस्रोऽनुष्टुभोऽन्त्या निचृत्पुरउष्णिगिति ॥२५॥

[1]इति ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां प्रथमः पटलः समाप्तः ॥



१. गु. इत्यथर्ववेदे अनुक्रमणिकायां प्रथमः पटलः समाप्तः सम्वत् १९२२ ना कार्त्तिक वदि १३ । ङ. इति ब्रह्मवेदोक्त अनुक्रमणीकायां प्रथमः पटलः ।

‡अथ तृतीयं काण्डम्

३।१।१ 'अग्निर्नः' इति द्वे सेनामोहने बहुदेवत्ये त्रैष्टुभेऽथर्वात्र [1]षड्ढचं प्रकृतिरन्याविकृतिरिति विजानीयात् । प्रथमयाग्निमस्तौत् । द्वितीयया [2]मरुतः, पराभिरिन्द्रम्, परस्य प्रथमाभ्यामग्निम्, पराभ्यामिन्द्रम्, परया द्याम्, परया मरुत इति पूर्वस्य तृतीयान्त्ये ॥

३।२।२ 'अयमग्निरमूमुहत्' इति तिस्रोऽनुष्टुभः । ३।१।५ 'इन्द्र सेनाम्' इति विराट्पुरउष्णिक् । ३।१।२ 'यूयमुग्रा' इति विराड्गर्भा भुरिक् ॥

३।३।१ 'अचिक्रदत्' इति नाना देवत्यमुताग्नेयं त्रैष्टुभमनेन मन्त्रोक्तान्देवानस्तौत् । ३'अद्भ्यस्त्वा राजा' इति चतुष्पदा भुरिक्पंक्तिः । ५ 'ह्वयन्तु' इति द्वे आनुष्टुभे ॥

३।४।१ 'आ त्वा गन्', ५।१ 'आयमगन्' इति द्वे सूक्ते, आद्यं सप्तकं द्वितीयमष्टकम् । पूर्वमैन्द्रमुत्तरं सौम्यम् । पूर्वेणेन्द्रमुत्तरेण पर्णमणिमुक्तर्षिरस्तौदिति । ४।४ 'अश्विना त्वा', ४।५ 'आ प्र द्रव' इति द्वे भुरिजौ । ४।१ 'आ त्वा गन्' इति जगती ॥

३।५।२ 'मयि क्षत्रम्' इति द्वे । ५ 'आ मारुक्षत्' इति तिस्रोऽनुष्टुभः । १ 'आयमगन्' इति पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप् । ८ 'पर्णोसि' इति विराडुरोबृहतीति ॥१॥

३।६।१ 'पुमान् पुंसः परिजातः' इत्यष्टर्चं वानस्पत्याश्वत्थदेवत्यमानुष्टुभं जगद्बीजं पुरुषोऽनेन सूक्तेनारिक्षयायामुं मन्त्रोक्तं देवमश्वत्थमेवास्तौदिति ॥

---

‡ यह लेख हमारा है ।

१, मू० ले० षडर्चम् । २. मूल लेखों में विसर्ग नहीं हैं ।

३।७।१ 'हरिणस्य' इति सप्तर्चं यक्ष्मनाशनदैवतमुत बहुदेवत्यमानुष्टुभम्, भृग्वंगिरा आद्याभिस्तिसृभिर्हरिणमस्तौत् । परया तारके, परयापः, पराभ्यां यक्ष्मनाशनम् । ६ 'यदासुतेः' इति भुरिक् ॥

३।८।१ 'आयातु मित्रः' इति मैत्रमुत वैश्वदेवं त्रैष्टुभम् । अथर्वा चतसृभिर्मित्रादीन् विश्वान्देवानस्तौत् । पराभ्यां सांमनस्यमिति । २ 'धाता रातिः', ६ 'अहं गृभ्णामि' इति जगत्यौ । ५ 'सं वो मनांसि' इत्यनुष्टुप् । ४ 'इहेदसाथ' इति विराड्बृहतीगर्भाचतुष्पादिति ॥२॥

३।९।१ 'कर्शफस्य' इति द्यावापृथिवीयमुत वैश्वदेवमानुष्टुभं वामदेवः । ४ 'येना श्रवस्यवः' इति चतुष्पान्निचृद्बृहती । अन्त्या भुरिक् ॥

३।१०।१[1] 'प्रथमा ह' इति त्रयोदशर्चमाष्टक्यमानुष्टुभमथर्वा सर्वाभिरेकामेवाष्टकामस्तौत् । ४ 'इयमेव सा या' इति तिस्रः । १२ 'एकाष्टका' इति त्रिष्टुभः । ७ 'आ मा पुष्टे च' इति त्र्यवसाना षट्पदा विराड्गर्भाति जगती ॥

३।११।[2] १ 'मुञ्चामि त्वा' इत्यष्टर्चमैन्द्राग्नायुष्यं त्रैष्टुभं ब्रह्मा यक्ष्मनाशनदेवत्यमुत भृग्वंगिराश्चोभौ मन्त्रोक्तदेवाननेनास्तुतामिति । ४ 'शतं जीव', ८ 'अभित्वा' इति जगत्यौ । पूर्वा शक्वरीगर्भा, परा त्र्यवसाना षट्पदाबृहतीगर्भा । ५ 'प्र विशतम्' इति द्वे आनुष्टुभौ । ७ 'जरायै त्वा' इति उष्णिग्बृहतीगर्भापथ्यापंक्तिरिति ॥३॥

---

१ ३।१०।१ मन्त्र का उत्तरार्ध ऋ० वे० ४।५७।७ में देखो ।

२. ३।११।१ सूक्त के आरम्भ के २ मन्त्र अक्षरशः और ३, ४ थोड़े भेद से ऋ० वे० १०।१६१।१-४ में मिलते हैं । वहां इन का ऋषि यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः है । ३।११ के यही आरम्भ के ४ मन्त्र अक्षरशः इसी अथर्ववेद के २०।९६।६-९ में भी मिलते हैं, वहां भी इनका ऋषि ब्रह्मा ही है ।

३।१२।१ 'इहैव ध्रुवाम्' इति नवर्चं शालासूक्तं वास्तोष्पतिशालादैवतं त्रैष्टुभं ब्रह्मा सर्वेणानेन शालामस्तौत् । ३ 'धरुण्यसि शाले' इति बृहती । ६ 'ऋतेन' इति शक्वरीगर्भाजगती । ७ 'एमाम्' आर्ष्यनुष्टुप् । द्वितीया विराड्जगती । ८ 'पूर्णं नारि' इति भुरिक् । ९ 'इमा आपः' इत्यनुष्टुप् ॥

३।१३।१ 'यददः' इति सप्तर्चं वारुणमुत सिन्धुदैवतमानुष्टुभं भृगुस्ता अनेनास्तौदिति । प्रथमा निचृत् । ५ 'आपो भद्रा' इति विराड्जगती । परा निचृदनुष्टुबिति ॥४॥

३।१४।१ 'सं वः' इति नाना देवत्यमुत गोष्ठदेवताकमानुष्टुभं ब्रह्मा मन्त्रोक्तान्देवानस्तौत् । अन्त्यार्षीत्रिष्टुप् ।

३।१५।१ 'इन्द्रमहम्' इत्यष्टर्चं त्रैष्टुभं वैश्वदेवमुतैन्द्राग्नं पण्यकामोऽथर्वा प्रथमया प्रागिन्द्रमस्तौत्परयापथः, [१]परयाग्निम्, [२]परया प्रपणमग्निविक्रयं च, परया देवानग्निं च धनं प्रार्थयन्, उत्तरया देवानिन्द्रं प्रजापतिं सवितारं सोमाग्निं धनरुचिं चेति, ८ परया विश्वानरं जातवेदसमिति । प्रथमा भुरिक् । ४ 'इमामग्ने' इति त्र्यवसाना बृहतीगर्भा षट्पदाविराडत्यष्टिः । ५ 'येन धनेन' इति प्रथमा विराड्जगती । ७ 'उप त्वा नमसा' इत्यनुष्टुप्[३] ८ 'विश्वाहा ते' इति निचृदिति ॥५॥

३।१६।१ [४]'प्रातरग्निम्' इति प्रातःसूक्तं बार्हस्पत्यमुत बहुदेवत्यं त्रैष्टुभमथर्वा प्रथमा बहुदेवत्यार्षी जगती तयाग्नी-

---

१. ३।१५।३ ऋ०वे० ३।२८।३ में है, वहां इसका ऋषि 'कतो वैश्वामित्रः' है।

२. ३।१५।४ का पूर्वार्ध बहुत थोड़े भेद से ऋ० वे० १।३१।१६ में है ।

३ मूल लेखों में 'ष्टुभ' है ।

४. ३।१६ सूक्त ऋ० वे० ७।४१ में यह सूक्त अत्यन्त स्वल्प भेद से आया है। सप्तम मन्त्र वहां विना किसी परिवर्तन से है। ऋ० वे० में इस सूक्त का ऋषि 'वसिष्ठ' है और प्रथम मन्त्र का छन्द निचृज्जगती है ।

न्द्रादीन्मन्त्रोक्तान् देवानाह्वयत्। २ 'प्रार्जितम्' इति पंचभग-देवत्यास्तत्र, ४ 'उतेदानीम्' इति भुरिक्पंक्तिरेताभिरथर्वा भग-मेवास्तौत्। तथान्त्ययोषोदेवत्ययोषसश्च ॥

३।१७।१ [1]'सीरायुञ्जन्ति' इति नवर्चं सीतादेवत्यमानुष्टुभं विश्वामित्रः, सर्वाभिः सीतामेवास्तौत्। प्रथमार्षीगायत्री। २ 'युनक्त सीरा', ५ शुनं सुफालाः', ९ 'घृतेन सीता' इति त्रिष्टुभः। ३ 'लाङ्गलं पवीरवत्' इति पथ्यापंक्तिः। ७ 'शुनासीरे-ह' इति विराट्पुरउष्णिक्। ८ 'सीते वन्दामहे' इति निचृदिति।६।।

३।१८। [2]१ 'इमां खनामि' इति वानस्पत्यमानुष्टुभमथर्वा-नेन सूक्तेन सपत्नीं [3]पराणुदत्। बाणपर्णीमोषधिमस्तौत्। ४ 'उत्तराहम्' इत्यनुष्टुब्गर्भाचतुष्पादुष्णिक्। ६ 'अभि तेऽधाम्' इत्युष्णिग्गर्भापथ्यापंक्तिः ॥

३।१९।१ 'संशितं मे' इत्यष्टर्चं वैश्वदेवमुत चान्द्रमसमुतै-न्द्रमानुष्टुभं वसिष्ठोऽनेन मन्त्रोक्तान्देवानभिष्टूयामित्रान् परा-णुददिति। प्रथमा पथ्याबृहती। ३ 'नीचैः पद्यन्ताम्' इति भुरिग्बृहती। [4]'७ प्रेता जयता' इति विराडास्तारपंक्तिः।

---

१. इस ३।१७ सूक्त का १ मन्त्र ऋ० १०।१०१।४ में है। द्वितीय मन्त्र ऋ० १०।१०१।३ में है, देवता विश्वेदेवाः वा ऋत्विज है। दोनों का ऋषि वहां बुधः सौम्यः है। चतुर्थ मन्त्र थोड़े भेद से ऋ० ४।५७।७ में और वहां ऋषि वामदेव हैं। और इसका उत्तरार्ध अथर्व ३।१०।१ में भी आया है। पंचम मन्त्र कुछ भेद से ऋ० ४।५७।८ में आया है। षष्ठ मन्त्र विना भेद से ४।५७।४ में मिलता है, ऋषि वामदेव है। सप्तम कुछ भेद से ऋ० ४।५७।५ में है और अष्टम कुछ भेद से ऋ० ४।५७।६ में है।

२. यह सूक्त बहुत स्वल्प भेद से ऋ० वे० १०।१४५ में आता है उसमें इस सूक्त का ऋषि 'इन्द्राणी' है। ३. सब मूल लेखों में पाठ "णुदत्यै" है।

४. थोड़े भेद से यह मन्त्र ऋ० १०।१०३।१३ में है, वहां ऋषि अप्रतिरथ ऐन्द्रः है।

[1]५ 'एषामहम्' इति त्रिष्टुप्। ६ 'उद्धर्षन्ताम्' इति त्र्यवसाना त्रिष्टुप्ककुम्मतीगर्भा षट्पदातिजगती। [2]८ 'अवसृष्टा परा पत' इति पथ्यापंक्तिरिति ॥७॥

३।२०। [3]१ 'अयं ते योनिः' इति दशर्चमाग्नेयमुत मन्त्रोक्त-देवत्यमानुष्टुभं प्रागुक्तर्षिः प्रथमाभ्यां द्वाभ्यां पञ्चम्याचाग्निम-भिष्टूय रयिं चाप्रार्थयत्। सप्तभिरितरान् भगादीन्देवानिति। तत्र ६ 'इन्द्रवायू' पथ्यापंक्तिः। ८ 'वाजस्य नु' इति विराड्जगती॥

३।२१।१ 'ये अग्नयः' इति दशर्चमाग्नेयं त्रैष्टुभमन्त्यास्तिस्रो बहुदेवत्याः, सप्तभिः प्रथमाभिरग्निमस्तौत्पराभिस्तिसृभिर्मन्त्रो-क्तान्देवानिति। प्रथमा पुरोऽनुष्टुप्। ५ 'यं त्वा होतारम्' इति जगती। ७ 'दिवं पृथिवीम्' इति विराड्गर्भा। [4]६ 'उक्षान्नाय' इत्युपरिष्टाद्विराड्बृहती। ८ 'हिरण्यपाणि, २ 'यः सोमे' इति, ३ 'य इन्द्रेण' इति भुरिजः,। ९ 'शान्तो अग्निः' इति द्वे अनु-ष्टुभौ। पूर्वानिचृदिति ॥८॥

३।२२।१ 'हस्तिवर्चसम्' इति बार्हस्पत्यमुतवैश्वदेवमानुष्टुभं वर्चस्यं सर्वान् देवान् वर्चोऽप्रार्थयदिति प्रागुक्तर्षिः। प्रथमावि-राट्त्रिष्टुप्। ३ 'येन हस्ती' इति पंचपदापरानुष्टुप्विराडति जगती। ४ 'यत्ते वर्चः' इति त्र्यवसाना षट्पदाजगती॥

३।२३।१ 'येन वेहद्' इति चान्द्रमसमुतयोनिदेवत्यमानुष्टुभं

---

१. Whitney ने अपने भाष्य में पञ्चम मन्त्र का छन्द नहीं दिया।

२. थोड़े भेद से यह मन्त्र ऋ० ६।७५।१६ में आता है वहां ऋषि 'पायु-भरद्वाज' है।

३. इस ३।२० सूक्त का १ मन्त्र थोड़े भेद से ऋ० ३।२९।१० में है इसका ऋषि विश्वामित्र है। शेष २-७ मन्त्र ऋ० १०।१४१ में थोड़े भेद से आते हैं। सप्तम मन्त्र में भेद बिलकुल नहीं। इनका ऋषि 'अग्निस्तापसः हैं।

४. यह मन्त्र ऋ० ८।४३।११ में कुछ भेद से आया है।

ब्रह्मानेन पुत्रमप्रार्थयद्योनिमभिष्टूय प्रजाया इति । ५ 'कृणोमि ते प्राजापत्यम्' इत्युपरिष्टाद्भुरिग्बृहती । ६ 'यासां द्यौः' इति स्कन्धोग्रीवीबृहती ॥

३।२४।१ 'पयस्वतीः' इति सप्तर्चं वानस्पत्यमानुष्टुभं भृगुरुतप्राजापत्यं मन्त्रोक्ता अस्तौद्देवता इति । २ 'वेदाहम्' इति निचृत्पथ्यापंक्तिः ॥

३।२५।१ 'उत्तुदस्त्वा' इति मैत्रावरुणमानुष्टुभं कामेषुदेवताकं च ततोऽनेन मन्त्रोक्तान्देवानस्तौत्, जायाकामश्चस्ववशायतामिति ॥६॥

३।२६।१ 'ये स्थां स्थ प्राच्याम्' इति द्वे रौद्रे, पूर्वं त्रैष्टुभमुत्तरमाष्टिकमथर्वा प्रत्यृचमग्न्यादि बहुदेवत्ये च । पूर्वया प्राचीस्थान् साग्नीन्हेतिनाम्नोदेवानस्तौदिति । द्वितीयया दक्षिणस्थान् सकामानाविष्यवनाम्नो देवान्, परया प्रतीचीस्थान् वैराजनाम्नो व्युक्तान्देवान्, परयोदीचीस्थान् सवातान् प्रविध्यन्तनाम्नो देवान्, परया ध्रुवस्थान् निलिम्पनाम्नोदेवान् सौषधिकान्, परयोर्ध्वस्थान् अवस्वन्त नाम्नोदेवान् बृहस्पतियुक्तान्, सर्वा ऋचः पूर्वस्य प्रत्येकं पंचपदा विपरीतपाद [1]लक्ष्मा भवन्ति । पूर्वात्रिष्टुप् । तृतीयाचतुर्थ्यौ भुरिजौ । द्वितीया पञ्चम्यान्त्या जगत्यौ । द्वितीयस्य पूर्वया प्राचींदिशमग्निमासितामादित्यामस्तौत्, द्वितीयया दक्षिणमिन्द्रं तिरश्चिराजिपितॄँस्तृतीयया प्रतीचीं वरुणं पृदाकुमन्नम्, परयोदीचीं सोमं स्वजमशनिं परया ध्रुवां विष्णुं कल्माषग्रीवं वीरुधः, परयोर्ध्वं बृहस्पतिश्चित्रं वर्षामिति ॥

अस्यापि षट् प्रत्येकं पञ्चपदा अष्टयस्तत्र द्वितीययात्यष्टिः । पञ्चमीभुरिगेकैकं ककुम्मतीगर्भा द्वे इति ॥

---

१. ङ यक्ष्मा ।

३।२८।१ 'एकैकयैषा' इति यामिन्यमानुष्टुभं ब्रह्मानेन यमिनोमस्तौत्, पशु पोषणायेति । प्रथमातिशक्वरीगर्भा चतुष्पदाति जगती । ४ 'इह पुष्टिः' इति यवमध्या विराड्ककुप् । ५ 'यत्रा सुहार्दः' इति त्रिष्टुप् । ६ 'यत्रा सुहार्दाम्' इति विराड्गर्भाप्रस्तारपंक्तिः ॥

३।२९।१ 'यद्राजानः' इत्यष्टर्चं शितिपादमाविदेवत्यमानुष्टुभमुद्दालकोऽनेन षडर्चेन शितिपादमविमस्तौत् । सप्तमी कामदेवत्या तयाकामम् । परा भौमा तया भूमिमिति । प्रथमातृतीये पथ्यापंक्ती । ७ 'क इदम्' इति त्र्यवसाना षट्पादुपरिष्टाद्दैवीबृहती ककुम्मतीगर्भाविराड्जगती । ८ 'भूमिष्ट्वा' इत्युपरिष्टाद्बृहतीति ॥११॥

३।३०।१ 'सहृदयम्' इति सप्तर्चं चान्द्रमसं सांमनस्यमानुष्टुभमथर्वानेन दम्पत्योः समीकरणाय सांमनस्यमविद्वेषमस्तौदिति । ५ 'ज्यायस्वन्तः' इति विराड्जगती । ६ 'समानी प्रपा' इति प्रस्तारपंक्तिः । ७ 'सध्रीचीनान्वः' इति त्रिष्टुप् ॥

३।३१।१ 'वि देवाः' इत्येकादशर्चं पाप्महादेवत्यमानुष्टुभं ब्रह्मानेन सूक्तेन मन्त्रोक्तान् देवान् [1]पाप्मघ्नास्तौत् । ४ 'वी मे' इति भुरिक् । [2]५ 'त्वष्टा दुहित्रे' इति विराट्प्रस्तारपक्तिरिति ॥१२॥



१. ङ पाप्मघ्न्या ।

२. कुछ भेद से यह मन्त्र ऋ० १०।१७।१ में आता है। वहां ऋषि देवश्रवायामायन है।

[†]अथ चतुर्थं काण्डम्

४।१।१ 'ब्रह्म जज्ञानम्' इति काण्डं सप्तर्चं सूक्तं प्रकृतिरन्याविकृतिरित्यवगच्छेत् । १ 'ब्रह्म जज्ञानम्' इति वेनो बार्हस्पत्यमुतादित्यदैवतम् ॥

४।२ [1]।१ 'य आत्मदा' इत्यष्टर्चमात्मदैवतमुभे त्रैष्टुभे भवतस्तां तां देवतां द्वाभ्यामस्तौत् । ४।१।२ 'इयं पित्र्या', ४।१।५ 'स बुध्न्यात्' इति । ६ 'आपो अग्रे' इति पुरोऽनुष्टुप् । ८ 'आपो वत्सम्' इत्युपरिष्टाज्ज्योतिरिति ॥

४।३।१ 'उदितः' इति रौद्रमुतव्याघ्रदेवत्यमानुष्टुभमथर्वानेन मन्त्रोक्तं व्याघ्रमस्तौत् । प्रथमा पथ्यापंक्तिः । ३ 'अक्ष्यौ च ते' इति गायत्री । ७ 'यत्संयमः' इति ककुम्मतीगर्भोपरिष्टाद् बृहती ॥

४।४।१ 'यां त्वा' इत्यष्टर्चं वानस्पत्यमानुष्टुभमनेन मन्त्रोक्तां उच्छुष्मौषधिं खात्वास्तौदिति च । ४ 'उच्छुष्मौषधीनाम्' इति पुरउष्णिक । ६ 'अद्याग्ने' इति बहुदेवत्ये इमे द्वे भुरिजौ पुरोष्णिक् ॥

४।५ [2]।१ 'सहस्र शृङ्गः' इति ब्रह्मा स्वापनं वार्षभमानुष्टुभम् । २ 'न भूमिम्' इति भुरिक् । ७ 'स्वप्न स्वप्ना' इति पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुबिति ॥१३॥

---

†. यह लेख हमारा है।

१. थोड़े भेद से यह सूक्त मन्त्र (८) के विना ऋ० १०।१२१ में आया है, वहां ऋषि 'हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः' है और देवता 'कः' है।

२. इस ४।५ सूक्त के १, ३, ५, ६ मन्त्र ऋ० ७।५५ में क्रम से ७,८,६,५ में थोड़े भेद से आये हैं, वहां ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्र है।

४।६।१ 'ब्राह्मणो जज्ञे' इति द्वे सूक्ते पूर्वमष्टर्चं गरुत्मान् तक्षकदेवत्यमुत्तरं वानस्पत्यमानुष्टुभे द्वाभ्यां मन्त्रोक्तदेवता अस्तौत् ॥

४।७।४ 'वि ते मदम्' इति स्वराट् ॥

४।८।१ 'भूतो भूतेषु' इति राज्याभिषेक्यं चान्द्रमसमाप्यमानुष्टुभमथर्वांगिरा मन्त्रोक्ता देवता अनेनास्तौत् । आद्या भुरिक् त्रिष्टुप् । ३ 'आतिष्ठन्तम्' इति त्रिष्टुप् । ७ 'एना व्याघ्रम्' इत्याद्या, ५ 'या आपः' इति विराट्प्रस्तारपंक्तिरिति ॥

४।९।१ [1]'एहि जीवम्' इति दशर्चं भृगुस्त्रैकाकुदांजनदैवतमानुष्टुभमनेन सूक्तेन तदेवांजनं बहुधास्तौत् । २ 'परिपाणम्' इति ककुम्मती, परापथ्यापंक्तिरिति ॥१४॥

४।१०।१ 'वाताज्जातः' इति शंखमणिसूक्तं तद्दैवतमानुष्टुभमथर्वाभिः कृशनमस्तौत् । [2]६ 'हिरण्यानाम्' इति पथ्यापंक्तिः । ७ 'देवानामस्थि' इति पञ्चपदा परानुष्टुप्शक्वरीति ॥

४।११।१ 'अनड्वान्दाधार' इति द्वादशर्चं भृग्वंगिरा आनडुहं त्रैष्टुभं तां देवतामिन्द्ररूपेणैवास्तौदिति । प्रथमाचतुर्थ्यौ जगत्यौ । द्वितीयाभुरिक् । ७ 'इन्द्रो रूपेण' इति त्र्यवसानाषट्पदानुष्टुब्गर्भोपरिष्टा [3]जागतानिचृच्छक्वरी । ८ 'मध्यमेतदनुडुहः' इति पंचानुष्टुभ इति ॥१५॥

---

१. इस सूक्त के सप्तम मन्त्र का उत्तरार्ध स्वल्प भेद से ऋ० १०।९७ में आता है ।

२. बी. के विना क. ख. ग. ङ. में हिरण्यानाम् के स्थान में 'अग्निर्हिरण्यानाम्' पाठ आया है बी. में पाठ मूल वेदवत् है । किसी भी मूलवेद में 'हिरण्यानां' के पूर्व 'अग्निः' पद नहीं है, यदि 'अग्नि' पद पूर्व लगावें तो पथ्यापंक्तिः छन्द नहीं बनता अब क्या कभी मूल संहिता में यह पद पूर्व था अथवा कुछ और बात थी इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है । ३. ङ. जागती ।

४।१२।१ 'रोहिण्यसि' इति वानस्पत्यमानुष्टुभमृभुर्मन्त्रोक्तां देवतामस्तौदिति । प्रथमात्रिपदागायत्री । ६ 'स उत्तिष्ठ' इति त्रिपदा यवमध्या भुरिग्गायत्री । ७'यदि कर्त्तम्' इति बृहतीति ॥

४।१३।१ [1]'उत देवा' इति चान्द्रमसमुत वैश्वदेवमानुष्टुभं शंतातिरनेन मन्त्रोक्तान् विश्वान् देवानस्तौदिति ॥

४।१४।१ 'अजो हि' इति नवर्चं भृगुराज्यमाग्नेयं त्रैष्टुभम् तावानेनास्तौत् । २ 'क्रमध्वमग्निना' ४ 'स्वर्यन्तः' इत्यनुष्टुभौ । ३'पृष्ठात् पृथिव्याः' इति प्रस्तारपंक्तिः । ७'पञ्चौदनं' । ६'शृतमजम्' इति जगत्यौ । ८ 'प्रतीच्यां दिशि' इति पञ्चपदाति शक्वरीति ॥१६॥

४।१५।१ 'समुत्पतन्तु' इति षोडशर्चमथर्वा मरुत्पर्जन्यदेवत्यं त्रैष्टुभं प्रथमया प्रथमं सर्वा दिशोऽस्तौत् । पराभ्यां वीरुधश्च, परया मारुतपर्जन्यान्, परया मरुतः, परया प्रजापतिस्तनयित्नुनासहाह्वयत् । परया वरुणं तिसृभिस्ततोमण्डूकान् पितृँश्च परया वातमप्रार्थयत् । आद्ये द्वे, ५ 'उदीरयत' इति विराड्जगत्यौ । १० 'अपामग्निः' इति भुरिक् । ४ 'गणास्त्वा' इति विराड्पुरस्ताद्बृहती । ७ 'सं वोऽवन्तु' इति, [2]१३ संवत्सरं शशयाना' इति द्वे अनुष्टुभौ । ६ 'आपो विद्युत्' इति पथ्यापंक्तिः । १२ 'अपो निषिञ्चन्' इति पंचपदानुष्टुब्गर्भा भुरिक् । १५ 'खण्वखाइ खैमखा' इति शकुमत्यनुष्टुबिति ॥१७॥

---

१. यह सूक्त छठे मन्त्र के विना ऋ० १०।१३७ में आता है। वहां इस के ऋषि एक-एक ऋचा वाले सात हैं। 'सप्त ऋषय एकर्चाः'। छठा मन्त्र १०।६०।१२ में है ऋषि बन्ध्वादयो गौपायनः, देवता हस्तः ।

२. यह ४।१५।१३ मन्त्र ऋ० ७।१०३।१, में आया है। वहां इसका ऋषि वसिष्ठ और देवता मण्डूक है।

४।१६।१ 'बृहन्नेषाम्' इति सत्यानृतोऽन्वी[1]क्षणसूक्तं नवर्चं ब्रह्मा वारुणं त्रैष्टुभमाद्यश्चतसृभिर्दिव्यसा देवविज्ञानमकरोत् परया वरुणेरणं, पराभ्यां वरुणप्रार्थनं, ततो द्वाभ्यां वरुणोक्तिरिति। ४।१६ प्रथमानुष्टुप्। ८ 'यः समाभ्यः' इति त्रिपान्महाबृहती। ९ 'तंस्त्वा' इति विराण्नाम त्रिपाद्गायत्री। ५'सर्वं तद्राजा' इति भुरिक्, ७'शतेन पाशैः' इति जगतीति॥

४।१७।१ 'ईशानां त्वा' इति चतुर्विंशर्चं त्रयं सूक्तानां शुक्रोऽपामार्ग वनस्पतिदेवत्यमानुष्टुभं सर्वाभिरपामार्गवीरुधमस्तौत्। ततः कृत्यामशमत्। १८।६ 'यश्चकार न शशाक' इति बृहतीगर्भा। १९।२ 'ब्राह्मणेन पर्युक्तासि' इति पथ्यापंक्तिरिति॥१८॥

४।२०।१ 'आ पश्यति' इति नवर्चं मातृनामा ऋषिर्मातृनामादैवतमानुष्टुभमनेनौषधिमेवास्तौत्। प्रथमा स्वराट्। अन्त्याभुरिक् इति॥

४।२१[2]।१ 'आ गावः' इति ब्रह्मगव्यं त्रैष्टुभमनेन गावोऽस्तौदिति। २ 'इन्द्रो यज्वने' इति तिस्रो जगत्य इति॥

४।२२।१ 'इममिन्द्रवर्धय' इति वसिष्ठ ऐन्द्रं त्रैष्टुभम[3]थर्वा क्षत्रियाय राज्ञे चन्द्रमसे प्रथमाभिः पञ्चभिः निरमित्रीकरणं मुख्येनेन्द्रमप्रार्थयत्। ग्रामगवाश्वादि सर्वं राज्योपकरणं च ततः पराभ्यामन्त्याभ्यामिन्द्रो[4]रूपेण स्वयमेव[5]क्षत्रियराजानं चन्द्रमसमाशिषा प्राणुददिति॥१९॥

---

१. क ख. ग. ङ. वीचक्षण।

२. यह ४।२१ सूक्त ऋ० ६।२८।१-७ में है वहां ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य है।

३. ह्वि० त्रैष्टुभं सोऽथर्वा।

४. ह्वि० इन्द्र रूपेण।

५. ह्वि० क्षत्रियं।

४।२३।१ 'अग्नेर्मन्वे' इति सप्त मृगारसंज्ञकानि सूक्तानि भृगारो नाना देवत्यानि त्रैष्टुभानि। ततः १ 'अग्नेर्मन्वे' इत्यनेन प्रथमं प्रचेतसमग्निमस्तौत् ॥

४।२४।१ 'इन्द्रस्य मन्महे' इति इन्द्रम् ॥

४।२५।१ 'वायोः सवितुः' इति वायुसवितारौ ॥

४।२६।१ 'मन्वे वां द्यावापृथिवी' इति द्यावापृथिव्यौ ॥

४।२७।१ 'मरुतां मन्वे' इति मरुतो देवान् ॥

४।२८।१'भवाशर्वौ मन्वे वाम्' इति भवशर्वावुतरौद्रमथर्वा॥

४।२९।१ 'मन्वे वां मित्रावरुणौ' इति मित्रावरुणौतन्मिषतः परानृषीनित्युत द्रुह्वणस्तत्र। २३।३ 'यामन्यामन्' इति पुरस्ताज्ज्योतिष्मती। २३।४ 'सुजातं जातवेदसम्' इत्यनुष्टुप्। ६ 'येन देवाः' इति प्रस्तारपंक्तिरिति। २४।१ 'इन्द्रस्य मन्महे' इति शाक्वरीगर्भापुरःशक्वरी। २५।३ 'तव व्रते' इत्यतिशक्वरी। २६।१ 'मन्वे वां द्यावापृथिवी' इति परोऽष्टिरित्युभेजगत्यौ। २५।७ 'उप श्रेष्ठा नः' इति पथ्याबृहती। २८।१ 'भवाशर्वौ मन्वे वाम्' इति द्व्यतिजागतगर्भाभुरिक्। २६।७ 'यन्मेदम्' इति शाक्वरगर्भातिमध्येज्योतिः। २९।७ 'ययोः रथः' इति शाक्वरीगर्भाजगतीति। सर्वेषां भृंगाणां सर्वासंगत्यैवमेकोनपंचाशत् परानुष्टुभ इति ॥२०॥

४।३०।[1] १ 'अहं रुद्रेभिः' इत्यष्टर्चमथर्वा वाग्देवत्यं त्रैष्टुभं स्वयमेवाहंमितिवाचंसर्वरूप सर्वात्मिकांसर्वदेवमयीमित्यस्तौत्। ६ 'अहं सोमम्' इति जगती ॥

४।३१[2]।१ 'त्वया मन्यो'। ४।३२।१ 'यस्ते मन्यो' इति

१. यह सूक्त ऋ० १०।१२५ में है। वहां ऋषि वागाम्भृणी और देवता भी वागाम्भृणी है।

२. यह सूक्त ऋ० १०।८४ में है। वहां ऋषि मन्युस्तापसः है।

द्वे ब्रह्मा स्कन्दोमन्युर्दैवते त्रैष्टुभे आभ्यांसेनान्योजयेन्मन्युः सूक्तमस्तूयत् । ३१।२ 'अग्निरिव मन्यो' । ३१।४ 'एको बहूनाम्' इति भुरिजौ । ३१।५ 'विजेषकृत्' इति तिस्रः ।।

४।३२। [1]१ 'यस्ते मन्यो' इति जगती ।।

४।३३ [2]१ 'अप नः शोशुचत्' इति ब्रह्मा पाप्मत्यमाग्नेयमष्टर्चं गायत्रम् ।।

४।३४।१ 'ब्रह्मास्य' इत्यष्टर्चमथर्वा । ब्रह्मास्यौदनं त्रैष्टुभं ४ 'विष्टारिणम्' इत्युत्तमाभुरिक् । ५ 'एष यज्ञानाम्' इति, त्र्यवसाना सप्तपाद कृतिः । ६ 'घृतह्लदा' इति पञ्चपदातिशक्वरी । पराभुरिक्शक्वरी । ८ 'इममोदनम्' इति जगती ।।

४।३५।१ 'यमोदनम्' इति प्रजापतिरा[3]तिमार्त्यं त्रैष्टुभम् । ३ 'यो दाधार' इति भुरिक् जगतीति ।।

४।३६।१ 'तान्सत्यौजाः' इति चातनः [4]सत्यौजसमाग्नेयमानुष्टुभम् । ९ 'ये मा क्रोधयन्ति' इति भुरिगिति ।।२१।।

४।३७।१ 'त्वया पूर्वम्' इति द्वादशर्चं बादरायणिरजश्रृंग्यप्सरोदेवत्यमानुष्टुभम् । प्रथमाभ्यां द्वाभ्यामोषधिमस्तौत् । पराभिस्तिसृभिरप्सरसः, परयौषधिं, पराभिःषड्भिर्गन्धर्वाप्सरौषधिरिति । ३ 'नदीं यन्तु' इति त्र्यवसाना षट्पदात्रिष्टुप् । ५ 'यत्र वः प्रेङ्खा' इति प्रस्तारपंक्तिः । ७ 'आनृत्यतः' इति परोष्णिक् । ११ 'श्वेवैक' इति षट्पदाजगती, परया निचृदिति ।।

४।३८।१ 'उद्भिन्दतीम्' इति द्विदेवत्यमानुष्टुभम् । सोऽक्षे-

---

१. यह सूक्त ऋ० १०।८३ में है इस का भी ऋषि ३१ सूक्त वाला है।

२. यह सूक्त ऋ० १।९७ में है। ऋषि कुत्स आङ्गिरस है।

३. ह्वि० आतिमर्त्यम् E. । ह्वि आतिमर्च्यम् Br ।

४. ह्वि सात्यौजसम् ।

विदेवनायाद्याभिश्चतसृभिरप्सरामाह्वयत् । पराभिस्तिसृभिर्वाजिनीवंतमृषभमस्तौत् । ३ 'यायैः परि' इति षट्पदा त्र्यवसाना जगती । तथा ५ 'सूर्यस्य रश्मीन्' इति भुरिगत्यष्टिः । ६ 'अन्तरिक्षेण' इति पूर्वात्रिष्टुबुत्तरात्र्यवसाना पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा पुरउपरिष्टाज्ज्योतिष्मती जगतीति ॥२२॥

४।३९।१ 'पृथिव्यामग्नये' इति दशर्चमंगिराः सान्नत्यं नानादेवत्यं । पांक्तं तथान्त्ये द्वे आग्नेयौ त्रैष्टुभौ । तत्र प्रथमाभ्यां द्वाभ्यां पृथिव्यग्नी स्तुत्वाप्रार्थयत् । पराभ्यां वाय्वन्तरिक्षे, पराभ्यां दिवादित्यौ, पराभ्यां दिक्चन्द्रमसस्ततः, पराभ्यां ब्रह्मा जातवेदसमग्नि प्रार्थ्यायजदिति । १ 'पृथिव्याम्', ३ 'अन्तरिक्षे', ५ 'दिवि', ७ 'दिक्षु' इति त्रिपादा महाबृहत्यः । २ 'पृथिवी', ४ 'अन्तरिक्ष', ६ 'द्यौः', ८ 'दिशः एताश्चतस्रः संस्तारपंक्तयः ॥

४।४०।१ 'ये पुरस्तात्' इति कृत्याप्रतिहरण[1]मष्टर्चं शुक्रो बहुदेवत्यं त्रैष्टुभम् । प्रथमया प्राच्यमग्निमस्तौत्, द्वितीयया दक्षिणस्यां यमम्, तृतीयया प्रतीच्यां वरुणं, परयोत्तरतः सोमम्, परयाधस्ताद्भूमिं, परयान्तरिक्षे वायुं, परयोपरिष्टात्सूर्यं, ततो दिगन्तर्देशेभ्यः सर्वत्र ब्रह्मेति ब्राह्मणं सर्वत्र । जातवेद आभिमुख्येनास्तौत् । २ 'ये दक्षिणतः' । ८ 'ये दिशामन्तर्देशेभ्यः' इति जगत्यौ । द्वितीयया पुरोऽतिशक्वरी पादयुगिति ॥२३॥

इति ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां द्वितीयः पटलः समाप्तः ॥



१. ह्वि० के Br. लेख में अष्टर्चं हैं दूसरे E में नहीं ।

[‡]अथ पंचमं काण्डम्

ॐ अथैव वक्ष्यमाणमंत्रेषु सूक्तप्रकृति[1] सार्षिछन्दोदैवतेष्व-वगच्छेत् सर्वत्रेति ॥

५।१।[2] १ 'ऋधङ् मन्त्रः ॥

५।२।[3] १ 'तदिदास' इति द्वे वारुणे त्रैष्टुभे ॥

५।३।[4] १ 'ममाग्ने वर्चः' इत्याग्नेयम्, पूर्वे नवके, परमेका-दशकं[5] त्रैष्टुभं। बृहद्दिवोऽथर्वा प्रथमस्या [6]पराबृहती त्रिष्टुबंत्या त्र्यवसाना षट्पदात्यष्टिः। १० 'ये नः सपत्नाः' इति विराड्-जगती। ५।१।७ 'उतामृतासुः' इति विराट्। ५।२।६ 'एवा महान्', ५।३।२ 'अग्ने मन्युम्' इति भुरिजौ पूर्वापराति जागतौ। उरु व्यचा नः पूर्वसूक्तद्वयेन वरुणमस्तौत्। ५।३।१ 'ममाग्ने वर्चः' इति द्वाभ्यामृग्भ्यां विहव्योऽग्निम्, पराभ्यां देवान्, परया द्रविणोदादि प्रार्थनम्, परा वैश्वदेवी, परा सौमी, तत्परा रौद्री, परे वैश्वदेव्यौ, परमैन्द्रीति च ॥१॥

५।४।१ 'यो गिरिषु' दशकं भृग्वंगिरा यक्ष्मनाशन कुष्ठ-

---

‡ यह लेख हमारा है।

१. ङ. सा ऋषि।

२. ५।१ सूक्त का छठा मन्त्र ऋ० १०।५।६ में आया है। वहां इसका ऋषि 'त्रित' और देवता अग्निः है।

३. ५।२ यह समग्र सूक्त अत्यन्त स्वल्प भेद से ऋ० १०।१२० में आया है वहां भी इसका ऋषि 'बृहद्दिव आथर्वणः' है।

४. ५।३ सूक्त के ७, ११ मन्त्रों के विना यह सूक्त ऋ० १०।१२८ में स्वल्प भेद से आया है वहां इसका ऋषि 'विहव्य' और 'विश्वेदेवाः' देवता है।

५. क. ख. ग. ङ. त्रिष्टुभम्।

६. वी· 'प्रथमस्याद्या परा'।

देवत्यमानुष्टुभं सर्वाभिः कुष्ठतक्मनाशनं वास्तौत् ६ 'इमं मे कुष्ठ' इति गायत्री । ५ 'हिरण्ययाः पन्थानः' इति भुरिक् । १० 'शीर्षामयम्' इत्युष्णिगगर्भानिचृत् ॥

५।५।१ 'रात्री माता' इति [1]लाक्षिकमानुष्टुभं नवकं ॥

५।६।[2] १ 'ब्रह्म जज्ञानं' सोमारुद्रीयं चतुर्दशकं त्रैष्टुभमेतदादीनि समिद्धो अंत्यातः प्राचीनान्यर्थवा पूर्वेण लाक्षामस्तौदिति । उत्तरस्याद्यया ब्रह्मादित्यम्, द्वितीययाकर्म्माणि, पराभ्यां रुद्रगणान् । ५ 'न्वे३तेन' इति तिसृभिः सोमारुद्रौ । [3]८ 'मुमुक्तम्' ५।६ इत्येकावसानाच्यनुष्टुब्द्विपदा । तयोरेव प्रार्थनम्, परया हेतिं पराभिश्चतसृभिः सर्वात्मकं रुद्रमिति । २ 'तत्र अनाप्ताये', इत्यनुष्टुप् । ३ 'सहस्रधार एव' इति द्वे जगत्यौ । तत्र ४ 'पर्यू षु' इत्यनुष्टुबुष्णिक्त्रिष्टुब्गर्भापंचपदा । ५ 'न्वे३तेन' इति तिस्रस्त्रिपदाविराण्नामगायत्र्यः । १० 'यो३स्मान्' इति प्रस्तारपंक्तिः । ११ 'इन्द्रस्य गृहः' इति चतस्रः पंक्तयोऽत्र, तुरीया स्वराडिति ॥२॥

५।७।१ 'आ नो भर' इति दशकं बहुदेवत्यमानुष्टुभमाद्यास्तिस्रोऽरातीयाः, परे सारस्वत्यौ, पराः सर्वाः पुनररातीयाः । यद्देवत्येति पारिभाषिकं स्मरणमिति । सरस्वत्या मधुवाचोऽप्रार्थयदिन्द्राग्निभ्यां वसूनि चेति । प्रथमाविराड्गर्भा प्रस्तार-

---

१. मूल लेखों में लाक्ष्मक पाठ है ।

२. ५।६ सूक्त का १ मन्त्र अथर्व ४।१।१ में पहले भी आया है । वहां इसका ऋषि 'वेन' और 'वृहस्पति' और 'आदित्य' है । मन्त्र २ अथर्व ४।७।७ में है । वहां ऋषि 'गरुत्मान्' और देवता तक्षक है । मन्त्र ३ स्वल्प भेद से ऋ० ९।७३।७ में है वहां ऋषि 'पवित्र' है । मन्त्र ४ ऋ० ९।१०।१ में अल्पभेद से आया है । ऋषि 'त्र्यरुणत्रसदस्यू' है ।

३. बी. मुमुक्तमस्मानिति ।

पंक्तिः। ४'सरस्वतीमनुमतिम्' इति पथ्याबृहती। ६'मा वनिम्' इति प्रस्तारपंक्तिः॥

५।८।१ 'वैकङ्कतेन' इति नवकमानुष्टुभं नानादेवत्यं प्रथमं द्वे आग्नेय्यौ, परा वैश्वदेवी, परावाशिषा ऐन्द्रचो भवन्ति। २ 'इन्द्रा याहि' इति त्र्यवसाना षट्पदा जगती। ३ 'यदसौ', ४'अति धावत' इति भुरिक् पथ्यापंक्ती। ६'यदि प्रेयुः' [1]इत्यास्तारपंक्तिः। ७ 'यानसौ' इति द्व्युष्णिग्गर्भापथ्यापंक्तिः। ९ 'अत्रैनान्' इति त्र्यवसानाषट्पदाद्व्युष्णिग्गर्भा जगतीति ॥३॥

५।९।१ 'दिवे स्वाहा'॥

५।१०।१ 'अश्मवर्म मा' इति चोभे वास्तोष्पत्ये अष्टके ब्रह्मा आद्यस्यस्वाहा दैवीबृहती, द्वितीया दैवीत्रिष्टुप्, तृतीयादैवीजगतीत्येवं परा जगती, परा बृहती, परात्रिष्टुप्, ९।७ 'सूर्यो मे' इति विराडुष्णिग्बृहतीगर्भा पञ्चपदाजगती। परा पुरस्कृतित्रिष्टुब्बृहतीगर्भाचतुष्पदेति जगतीति त्र्यवसाना च। द्वितीयस्याद्या षड्यवमध्यास्त्रिपदा गायत्र्यः। परायवमध्याककुप्, ८ 'बृहता मन' इति पुरोधृतिद्व्यनुष्टुब्गर्भा पराष्टिस्त्र्यवसानाचतुष्पदोऽति जगती॥

५।११।१ 'कथं महे' इत्येकाद[2]शर्चं त्रैष्टुभमथर्वानेन प्रश्नोत्तरमुखेनमंत्रोक्तदेवतामस्तौत्। प्रथमा भुरिक्। ३ 'सत्यमहम्' इति पंक्तिः। ६ 'एकं रजसः' इति पञ्चपदातिशक्वरी। ११'देवो देवाय' इति त्र्यवसानाषट्पदात्यष्टिः॥

---

१. ह्लि० गु० 'प्रस्तारपंक्तिः' छन्दोविधि से बी. ङ. क. आदि का आस्तारपंक्तिः पाठ ठीक है।

२. बी, एकादशकम्।

५।१२।[1] १ 'समिद्धो अद्य' इत्येकादशर्चं त्रैष्टुभं जातवेदसमंगिरा अनेनाग्निमस्तौत् । ३ 'आ जुह्वानः' इति पंक्तिरिति ।४।

५।१३।१ 'ददिः' इत्येकादशर्चं जागतं तक्षकदेवत्यं गरुत्मानेन विषमेवास्तौदिति । २ 'यत्ते अपोदकम्' इत्यास्तारपंक्तिः । ६ 'असितस्य' इति पथ्यापंक्तिः । ४ 'चक्षुषा ते चक्षुः', ७ 'आलिगी च' द्वे अनुष्टुभौ । ९ 'कर्णाश्वावित्' इति भुरिक् । ५ 'कैरात' इति त्रिष्टुप् । १० 'ताबुवम्' इति द्वे निचृद्गायत्र्यौ ॥

५।१४।१ 'सुपर्णस्त्वा' इति त्रयोदशकं वानस्पत्यं कृत्याप्रतिहरणमानुष्टुभं शुक्रो द्वाभ्यामोषधिमस्तौत् । पराभिः कृत्यादूषणमिति ३ 'रिश्यस्येव', ५ 'कृत्याः संतु कृत्याकृते', १२ 'इष्वा ऋजीयः' भुरिजः । ८ 'अग्ने पृतनाषाट्' इति त्रिपदा विराट् । १३ 'अग्नेरिवैतु' इति स्वराट् । १० 'पुत्र इव पितरम्' निचृद्बृहती । ११ 'उदेणीव' इति साम्नां त्रिपात्त्रिष्टु[2]बिति ॥५॥

५।१५।१ 'एका च मे' इत्येकादशकं विश्वामित्रो वानस्पत्यमानुष्टुभमनेन मधुलामोषधिमस्तौदिति । ४ 'चतस्रश्च मे' इति पुरस्ताद्बृहती ५ 'पञ्च', ७ 'सप्त' ८ 'अष्ट', ९ 'नव च मे' इति भुरिज इति ॥

५।१६।१ 'यद्येकवृषः' इत्येकावसानैकादशर्चमेकवृषदेवत्यंद्वैपदमनेन प्रागुक्तर्षिरेकवृषमस्तौत् । २ 'यदि द्वि' ३ 'त्रि' ६ 'षट्' ता आसुर्यनुष्टुभः । १ 'यद्येक', ४ 'चतुः', ५ 'पंच', ७ 'सप्त' ८ 'अष्ट' ९ 'नव' १० 'दश' एताः साम्नामुष्णिहः । ११ 'यद्येकादशः' इत्यासुरीगायत्रीति ॥

---

१. ५।१२ सूक्त ऋ० १०।११० में आता है, ऋषि 'जमदग्नीरामो वा' और देवता 'आप्रियः' है ।

२. वी. के विना अन्य किसी में इति नहीं प्रायः बहुत बार ही उन में खण्डान्त में इति नहीं होती ।

५।१७।१ 'तेऽवदन्' इत्यष्टादशकं मयोभूर्ब्रह्मजायादेवत्यमानुष्टुभमनेन सूक्तेन सोमेन बृहस्पतिजायापहरणमकारि तदाख्यामिषतामन्त्रोक्तां देवानां ब्रह्मजायामस्तौदिति । पूर्वाः षट् त्रिष्टुभः ॥

५।१८।१ 'नैतां ते', १९।१ 'अतिमात्रम्' इति द्वे पञ्चदशके, ब्रह्मगवीदेवत्ये आनुष्टुभे । आभ्यां ब्रह्मगवीब्राह्मणं चास्तौत् । ब्रह्मगवीब्रह्मज्यमगिंनदयन् । ४ 'निवैं क्षत्रम्' इति द्वे ८ 'जिह्वा ज्या' इति द्वे १३ 'देवपीयुः' इति त्रिष्टुभः पूर्वाभुरिक् ।

५।१९।२ 'ये बृहत्सामानम्' इति विराट्पुरस्ताद्बृहती । ७ 'अष्टापदी चतुरक्षी' इत्युपरिष्टाद्बृहतीति ॥६॥

५।२०।१ 'उच्चैर्घोषः' ॥

५।२१।१ 'विहृदयम्' इति द्वे द्वादशके ब्रह्मा, वानस्पत्यदुन्दुभिदेवत्ये । पूर्वं त्रैष्टुभमुत्तरमानुष्टुभम् । द्वाभ्यां सपत्नसेनापराजयायदेवसेनाविजयाय च दुन्दुभिमस्तौदिति । पराभिस्तिसृभिरादित्यादीन् देवानप्रार्थयत् । पूर्वस्य पूर्वा जगती ॥

५।२१।१ 'विहृदयं' ४ 'यथा मृगाः' इति द्वे पथ्यापंक्ती । ६ 'यथा श्येनात्' इति जगती । ११ 'यूयमुग्राः' इति बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् । १२ 'एता देवसेनाः' इति त्रिपदा यवमध्या गायत्रीति ॥

५।२२।१ 'अग्निस्तक्मानम्' इति चतुर्दशकं भृग्वंगिरास्तक्मनाशनदेवत्यमानुष्टुभं तक्मापबाधयोऽनेन देवानप्रार्थयत् तक्मनाशनमस्तौदिति च । प्रथमे द्वे त्रिष्टुभौ, पूर्वाभुरिक् । ५ 'ओको अस्य' इति विराट्पथ्याबृहती ॥

५।२३।१ 'ओते मे' इति त्रयोदशकमैन्द्रमानुष्टुभं काण्वोऽनेन क्रिमिजम्भनाय देवानप्रार्थयत् । १३ 'सर्वेषां च क्रिमीणाम्' इति विराडिति ॥७॥

५।२४।१ 'सविता प्रसवानाम्' इति सप्तदशकमथर्वा ब्रह्म-कर्मात्मदेवत्यमिति। सविता शाक्वरं प्रथमया स्वात्माविनाय कर्मणि[1] प्रार्थ्याजुहोति, द्वितीययाग्निम्, तृतीययाद्यावापृथिव्यौ, चतुर्थ्या वरुणं, पञ्चम्या मित्रावरुणौ, [2]षष्ट्या मरुतः, सप्तम्या सोमं, अष्टम्या वायुं, नवम्या सूर्यं, दशम्या[3] चन्द्रमसमेकादश्येन्द्रं, द्वादश्या मरुतांपितरं, त्रयोदश्या मृत्युं, परया यमं, परया पितॄन् [4]परया ततानवरानंत्यवयः। १७ 'ततस्ततामहाः' इति सर्वा चतुष्पदातिशक्वर्यः। ११'इन्द्रोदिवः' इति शक्वरी। १५'पितरः परे' इति तिस्रस्त्रिपादस्तत्र पूर्वे द्वे भुरिग्जगत्यावंत्या विराट् शक्वरी ॥८॥

५।२५।[5] १ 'पर्वताद्दिवः' इति त्रयोदशकं योनिगर्भदेवत्य-मानुष्टुभं ब्रह्मानेन गर्भार्थं देवानप्रार्थयत् तां गर्भं [6]चास्तौदनेन-सूक्तेन अंत्याविराट्पुरस्ताद्बृहतीति ॥

५।२६।१ 'यजूंषि यज्ञे' ॥

५।२७।१ 'ऊर्ध्वा अस्य' इति द्वे द्वादशके। पूर्वंवास्तोष्पत्य-मुतमन्त्रोक्तबहुदेवत्यमुत्तरमाग्नेयमाभ्यां मन्त्रोक्तदेवानभिष्टूया-यजत्।

---

१. बी. प्रार्थया जुहाति क ख. ग. ङ प्रार्थया जुहा। मूलपाठ मेरा है क्यों कि आदर्श पाठों से कुछ अर्थ नहो निकलता।

२. यह पाठ मैंने किया है सब मूल ग्रन्थों में षष्ठी पाठ है जिस से अर्थ कुछ नहीं निकलता।

३. बी. चन्द्रम्।

४. क. बी. 'परान्' अधिक है।

५. ५।२५ ऋ० १०।१८४ में है वहां ऋषि 'त्वष्टा गर्भकर्त्ता' 'विष्णुर्वा-प्राजापत्यः' है।

६. बी. 'वास्तौत्'।

५।२६।१ 'यजूँषियज्ञे', ५ 'छन्दांसि यज्ञे' इति द्विपदा वार्च्युष्णिहौ । २'युनक्तु देवः', ४'प्रैषा यज्ञे', ६'एयमगन्' इति तिस्रः, १० 'सोमो युनक्तु' इति [1]द्वे द्विपादा प्राजापत्या बृहत्यः । ३ 'इन्द्र उक्था [2]मदान्' इति त्रिपदा विराड्गायत्री । ९ 'भगो युनक्तु' इति त्रिपात्पिपीलिकमध्यापुरउष्णिगित्येता एकावसानाः । १२ 'अश्विना ब्रह्मण' इति परातिशक्वरीचतुष्पाज्जगतीति ॥

५।२७।१ 'ऊर्ध्वा अस्य' इति बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् । २ 'देवो देवेषु' इति द्विपदा साम्नांभुरिगनुष्टुप् । ३ 'मध्वा यज्ञम्' इति [3]द्विपदार्चीबृहतीति । ४ 'अच्छायमेति शवसा' इति द्विपात्साम्नी भुरिग्बृहतीति । ५ 'अग्निः स्रुचः' इति द्विपदासाम्नीत्रिष्टुप् । ६ 'तरी मन्द्रासु' इति द्विपाद्विराण्नामगायत्री । ७ 'द्वारो देवीः' इति द्विपात्साम्नीबृहतीमा एकावसानाः । ८ 'उरुव्यचसा' इति संस्तारपक्तिः ९ 'दैवा होतारः' इति षट्पदानुष्टुब्गर्भापरातिजगती । १० 'तन्नस्तुरीपम्' इति तिस्रः पुरउष्णिहः ॥९॥

५।२८।१ 'नव प्राणान्' इति चतुर्दशर्चमथर्वा त्रिवृद्देवत्यं त्रैष्टुभमनेनाग्न्यादीन्मन्त्रोक्तान्देवान्संप्राथ्यं तृवृतमस्तौदिति । ६ त्रेधा जातम्' इति पञ्चपदातिशक्वरी हिरण्यस्तुतिः परा च । ७ 'त्र्यायुषं', ९ 'दिवस्त्वा पातु' इति द्वे, १२ 'आ त्वा चृततु' इति ककुम्मत्यनुष्टुभः । १३ 'ऋतुभिष्ट्वा' पुरउष्णिक् ॥

५।२९।१ 'पुरस्ताद्युक्तः' इति पञ्चदशर्चं त्रैष्टुभं जातवेदसमुतमन्त्रोक्तदेवताकं चातनः सर्वाभिर्मंत्रोक्तान् देवानस्तौत् ।

---

१. ख. इति त्रिपात्पिपीलिका द्वे पाठ अधिक है। ङ. इति त्रि द्वे पाठ है।

२. सब मूल पुस्तकों में पाठ मदानीति है मूल पाठ मैंने दिया है क्योंकि वेद में यह हलन्त है।

३ बी. त्रिपदार्षीबृहती।

३ 'यथा सो अस्य' इति त्रिपदाविराण्नामगायत्री । ५ 'यदस्य हृतम्' इति पुरोऽतिजगती विराड्जगती । १२ समाहर' इति चतस्रोऽनुष्टुभः, प्रथमा भुरिक् । १४ 'एतास्ते' इति चतुष्पदा-पराबृहती ककुम्मतीति ॥

५।३०।१ 'आवतस्ते' इति सप्तदशर्चमुन्मोचन आयुष्यकामोऽनुष्टुभमनेनमन्त्रोक्तान् देवान् प्राणाक्नायायुश्चास्तौत् । प्रथमा पथ्यापंक्तिः । ९ 'अङ्ग भेदः' इति भुरिक् । १२ 'नमोयमाय' इति चतुष्पदाविराड् जगती । १४ 'प्राणेनाग्ने' इति विराट्प्रस्तारपंक्तिः । १७ 'अयं लोकः' इति त्र्यवसानाषट्पदा जगतीति ॥

५।३१।१ 'यां ते' इति द्वादशर्चं शुक्रः कृत्यादूषणदेवत्यमानुष्टुभमनेनकृत्याप्रशमनायकृत्यामस्तौदिति । ११ 'यश्चकार' इति बृहतीगर्भानुष्टुप् । १२ 'कृत्याकृतम्' इति पथ्याबृहतीति ॥१०॥

[1]इति ब्रह्मवेदोक्त मन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां तृतीयः पटलः समाप्तः ॥



१. गु. लिषितं रावल वबलसुत जशकर रावल शंकरीया लिषितं सम्वत १८८२ ना. मा. शख ।

†अथ षष्ठं काण्डम्

ॐ अथातस्तृचसूक्तकाण्डमन्त्र्षिछन्दोदेवता व्याख्यास्यामः। तत्र तृचप्रकृतिरितराविकृतिरिति ॥

६।१।१ 'दोषो गाय' ॥

६।२।१ 'इन्द्राय सोमम्' इति द्वे उष्णिहौ। पूर्वं सावित्रमुत्तरंवानस्पत्यं सौम्यम्। तृचोऽथर्वापश्यत्। ततो मन्त्रोक्त-[1]देवानस्तौदिति। पूर्वस्याद्या त्रिपदा पिपीलिकमध्या साम्नोजगती, तथा परे द्वे पिपीलिकमध्ये पुरउष्णिहौ। द्वितीयस्य तिस्रः परोष्णिह इति ॥१॥

६।३।१ 'पातं न इन्द्रापूषणा' ॥

६।४।१ 'त्वष्टा मे [2]दैव्यम्' इति द्वे नानादैवते पूर्वं जागतम्। तत्र प्रथमा पथ्याबृहती, परस्यचाद्या पथ्याबृहती, द्वितीया संस्तारपंक्तिः, तृतीया त्रिपदाविराड्गायत्री, द्वाभ्यामाभ्यां स्वस्त्ययनकामोऽथर्वा मन्त्रोक्तदेवाना[3]त्मगोपनायाभिष्टूयाप्रार्थयदिष्टमिति ॥

६।५।१ 'उदेनमुत्तरं नय' ॥

६।६।१ 'योऽस्मान्' इति द्वे आनुष्टुभे पूर्वमैन्द्राग्नमुत्तरं ब्राह्मणस्पत्यं सौम्यं प्रागुक्तर्षिः। पूर्वस्य प्रथमयाग्निमस्तौत्, द्वितीययेन्द्रं, परयाग्नि, परस्याद्यया ब्रह्मणस्पतिं, पराभ्यां सोममिन्द्रमिति भुरि[4]गिति ॥२॥

---

† यह लेख हमारा है।
१. बी. मन्त्रोक्तान्।
२. बी. दैव्यं वचः।
३. बी. आत्म नहीं।
४. क. ख. ग गु. ङ. इति नहीं।

६।७।१ 'येन सोम' इति सौम्यं गायत्रम् । तृतीया वैश्वदेवी, प्रथमा निचृत्, या यद्देवतया तया तामेवास्तौदित्युक्तर्षिः ॥

६।८।१ 'यथा वृक्षं लिबुजा' ॥

६।९।१ 'वाञ्छ मे' इति द्वे कामात्मदैवते । पूर्वस्यतिस्रः पथ्यापंक्तयः, उत्तरमानुष्टुभं जमदग्निरपश्यत् । ततो द्वाभ्यामाभ्यां कामात्मचेतसा मन्त्रोक्त[1]देवतामप्रार्थयत् ॥

६।१०।१ 'पृथिव्यै श्रोत्राय' इति [2]द्वैपदं नानादेवत्यं । प्रथमाग्नेयी, द्वितीया वायव्या, तृतीया सौर्याद्या[3]साम्नीत्रिष्टुप् । द्वितीया प्राजापत्या बृहती, परा[4]साम्नीबृहतीदं सूक्त सर्वकर्म्मसु शंतातिः संप्रोक्षणार्थमपश्य[5]दिति ॥३॥

६।११।१ 'शमीमश्वत्थः' इति रेतोदेवत्यमुतमन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभं प्रजापतिरपश्यत्ततस्तान्देवानस्तौत् ॥

६।१२।१ 'परि द्यामिव' इति तक्षक[6]दैवतमानुष्टुभं गरुत्मान् ॥

६।१३।१ 'नमो देववधेभ्यः' इति मार्त्यमानुष्टुभं स्वस्त्ययनकामोऽथर्वा ॥

६।१४।१ 'अस्थिस्रंसम्' इति बलासदेवत्यमानुष्टुभं बभ्रुपिङ्गलः ॥

६।१५।१ 'उत्तमो असि' इति वानस्पत्यमानुष्टुभमुद्दालकः ।

६।१६।१ 'आबयो' इति मन्त्रोक्तदेवत्यमुतचान्द्रमसमानुष्टुभं शौनकः चतुर्ऋचमपश्यत् । प्रथमा निचृत्त्रिपदा गायत्री ।

---

१. क. ख. ग. ङ. देवतानाम् ।
२. वी. द्विपदां । ३. ङ. साम्नां । ४. वी. साम्ना ।
५. क. ख ग ङ. इति नहीं । ६. वी. देवम् ।

३ 'तौविलिक' इति बृहतीगर्भाककुम्मत्यनुष्टुप् । ४ 'अलसाला' इति त्रिपदा प्रतिष्ठानेन हिन[1]देवमस्तौ[2]दिति ।।४।।

६।१७।१ 'यथेयम्' इति चतुर्ऋचमानुष्टुभं गर्भदृंहणदेवत्यमथर्वापश्यत्ततो गर्भदृंहणाय मन्त्रोक्तदेवतामनेनास्तौत् ।

६।१८।१ 'ईर्ष्यायाः' इति सूक्तमीर्ष्याविनाशनदेवत्यमानुष्टुभम् ।।

६।१९।१ 'पुनन्तु मा' इति नानादेवत्यं गायत्रमुतचान्द्रमसं शंतातिराद्यानुष्टुप् ।।

६।२०।१ 'अग्नेरिवास्य' इति यक्ष्मनाशनदैवतं भृग्वंगिराः। प्रथमातिजगती [3]द्वितीया ककुम्मती प्रस्तारपंक्तिः, तृतीया सतः पक्तिरित्यनेन मन्त्रोक्तान् सर्वान् देवानस्तौ[4]दिति ।।५।।

६।२१।१ 'इमा याः' इति चान्द्रमससमानुष्टुभम् ।।

६।२२।[5]१ 'कृष्णं नियानम्' इति आदित्यरश्मिदेवत्यमुत मारुतं त्रैष्टुभं शंताति[6]रिति द्वे सूक्ते अपश्यत्तत आभ्यां मन्त्रोक्तदेवानस्तौत् । २ 'पयस्वतीः कृणुथा' इति चतुष्पदा भुरिग्-जगती ।।

६।२३।१ 'सस्रुषीः' ।।

६।२४।१ 'हिमवतः प्रस्रवन्ति' इति द्वे अब्देवत्ये आनुष्टुभे । आभ्यामप एवास्तौत् ।।

६।२३।२ 'ओता आपः' इति त्रिपदा गायत्री । ३ देवस्य सवितुः' इति परोष्णि[7]गिति ।।६।।

---

१. बी. देवं नहीं ।   २. क. ख. ग. ङ. इति नहीं ।
३. ख. ङ. द्वितीयया ।   ४. क. ख. ग. ङ. इति नहीं ।
५. ६।२२।१ ऋ० ।१६४।४७ में है, ऋषि दीर्घतमा ।
६. बी. इति नहीं ।   ७. क. ख. ग. ङ. इति नहीं ।

६।२५।१ 'पञ्च च याः' इति मन्त्रोक्तमन्याविनाशनदेवत्यमानुष्टुभं शुनःशेपः ॥

६।२६।१ 'अव मा पाप्मन्' इति पाप्मादेवताकमानुष्टुभं, ब्रह्मानेन पाप्मानमस्तौत् ॥

६।२७।[1] १ 'देवाः कपोतः' ॥

६।२८।[2] १ 'ऋचा कपोतम्' ॥

६।२९।[3] १ 'अमून हेतिः' इति त्रीणि सूक्तानि याम्यानि उत नैर्ऋतनि । प्रथमं जागतं, परं त्रैष्टुभं [4]तृतीयं बार्हतं भृगुरपश्यत् । तत एतैः कपोतोलूकजन्यारिष्टक्षयकामो यमं निर्ऋतिं च मन्त्रोक्तान् देवानस्तौत् ॥

६।२७।२ 'शिवः कपोतः' इति त्रिष्टुप् ॥

६।२८।२ 'परीमेऽग्निम्' इत्यनुष्टुप् । ३ 'यः प्रथमः' इति जगती ॥

६।२९।३ 'अवैरहत्याय' इति त्र्यवसाना सप्तपदा विराडष्टिः । १ 'अमून् हेतिः' इति द्वे विराण्नाम गायत्र्यौ इति ॥७॥

६।३०।१ 'देवा इमम्' इति शाम्यंजागतम् ॥

६।३१।[5] १ 'आयं गौः' इति गव्यंगायत्रमुपरिबभ्रवो द्वे अद्राक्षीत् ॥

---

१. ६।२७ सूक्त ऋ० १०।१६५ में है, ऋषि कपोतो नैर्ऋतः है।

२. ६।२८।१ ऋ० १०।१६५।५ में कुछ भेद से है।

३. ६।२९।१ के २, ३ पद ऋ० १०।१६५।४ में हैं।

४. Whitney (ह्विटने) ने अपने अनुवाद में तृतीय मन्त्र का बृहती छन्द दिया ही नहीं।

५ ६।३१।१ ऋ० १०।१८९ में ये मन्त्र बहुत स्वल्प भेद से आते हैं, वहां ऋषि सार्पराज्ञी और देवता 'सार्पराज्ञी सूर्यो वा' है।

६।३०।२ 'यस्ते मदोवकेशः' इति त्रिष्टुप् । ३ 'बृहत्पलाशे' इति चतुष्पाच्छंकुमत्यनुष्टुप् ।।

६।३२।१ 'अन्तर्दावे' ।।

६।३३।१ 'यस्येदमारजो युजः' ।।

६।३४।१ 'प्राग्नये' इति पञ्चर्चम् ।।

६।३५।१ 'वैश्वानरो न ऊतये' इति चत्वारिसूक्तानि । प्रथमं त्रैष्टुभमुत्तराणि गायत्राणि, त्रीण्यग्नीन्द्रविश्वानरदेवतानि । प्रथमस्य द्वे तृतीयं च चातनस्तृतीयमथर्वा, द्वितीयं [1]जाटिकायनस्तुरीयं कौशिकः । ६।३२।२ 'रुद्रो वो ग्रीवा अशरैत्' प्रस्तारपंक्तिः । ६।३३।२ 'नाधृष आ दधृषते' इत्यनुष्टुप् ।।८।।

६।३६।१ 'ऋतावानं' ।।

६।३७।१ 'उप प्रागात्' इति द्वे, प्रथममाग्नेयं गायत्रं, परं चान्द्रमसमानुष्टुभं, स्वस्त्ययनकामोऽथर्वापश्यदिति ।।

६।३८।१ 'सिंहे व्याघ्रे' ।।

६।३९।१ 'यशो हविः' इति द्वे । प्रथमं चतुर्ऋचं त्रैष्टुभं । १ 'यशो हविः' इति जगती परा त्रिष्टुबंत्यानुष्टुबिमे बृहस्पतिदेवत्ये वर्चस्कामः प्रागुक्तर्षिरपश्यत् । उत पूर्वं त्विषिदेवत्यं ततोमन्त्रोक्तान्देवानाभ्यामस्तौत् ।।

६।४०।१ 'अभयं द्यावापृथिवी', २ 'अस्मै ग्रामाय' इति जगत्यौ, मन्त्रोक्तदेवत्येऽभयकामः । ३ 'अनमित्रं नो अधरात्' इत्यैन्द्रीमानुष्टुभं स्वस्त्ययनकामः ।।

६।४१।१ 'मनसे चेतसे [2]धिये' इति बहुदैवतं चान्द्रमसमानु-

---

१. ङ जादिकायनः, बी. जोतिकायनः ।

२. बी. धिये नहीं ।

ष्टुभं ब्रह्मा । आद्या भुरिक् । ३ 'मा नो हासिषुः' इति त्रिष्टुबिति[1] ॥६॥

६।४२।[2] १ 'अव ज्यामिव' इति मन्त्रोक्तमन्युदेवत्यमानुष्टुभं भृग्वगिरा । आद्ये द्वे भुरिजौ[3] ॥

६।४३।१ 'अयं दर्भः' इति मन्त्रोक्तमन्युशमनदेवताकमानुष्टुभं, परस्परं चित्तैकीकरणकाम इमे द्वे सूक्ते अपश्यदाभ्यां मन्त्रोक्ते अस्तौत् ॥

६।४४।१ 'अस्थाद् द्यौः' इति विश्वामित्रो मन्त्रोक्तदेवत्यमुत वानस्पत्यमानुष्टुभं । ३ 'रुद्रस्य मूलम्' इति त्रिपदा महाबृहती ॥

६।४५।[4] १ 'परोपेहि' दुःस्वप्ननाशनदेवत्य [5]मंगिरः प्रचेता यमश्चाद्या पथ्यापंक्तिः । २ 'अवशसा' इति भुरिक्त्रिष्टुप् । ३ 'यदिन्द्र' इत्यनुष्टुप् ॥

६।४६।१ 'यो न जीवः' इति तथर्षि पूर्वोक्तदेवत्यमुत स्वाप्नमाभ्यां मन्त्रोक्तदेवानस्तौ[6]दिति ॥१ ॥

६।४।६१ 'यो न जीवः' इति विष्टारपंक्तिः । २ 'विद्म ते' इति त्र्यवसाना शक्वरीगर्भापंचपदा जगती ॥

६।४६।[7] ३ 'यथा कलाम्' इत्यनुष्टुप् ॥

६।४७।१ 'अग्निः प्रातःसवने' इति प्रथमे श्रवले आग्नेयं

---

१. इति के आगे गु. में द्वे पाठ अधिक है।

२. Whitney ने ४२ सूक्त में ( ) बन्धन में चित्तकी करण: पाठ दिया है। वह मूल आदर्श पुस्तकों में नहीं।

३. मूल लेख में भुरिक् है।

४. ६।४५।२,३ मन्त्र कुछ पाठ भेद से ऋ० १०।१६४।३,४ में आते हैं।

५. बी. आंगिरसः। ६. क. ख. ग. ङ. इति नहीं।

७. ६।४६।३ ऋ० ८।४७।१७ में कुछ भेद से आता है। वहां ऋषि प्रचेता है।

त्रैष्टुभं । द्वितीया वैश्वदेवी । तृतीया सौधन्वना । प्रथमया प्रथमे सवनेऽग्निमस्तौत् । द्वितीयया माध्यन्दिने विश्वान् देवाँस्तृतीयया सौधन्वानिति ॥

६।४८।१ 'श्येनोऽसि' इति मन्त्रोक्तर्षिदेवत्यमौष्णिहमिति तिस्रः सप्तर्षयोऽनेन स्तूयन्ते ॥

६।४९।१ 'नहि ते अग्ने' इत्याग्नेयं गार्ग्य आद्यानुष्टुप् । २ 'मेष इव' इति द्वे जगत्यौ । परा विराट् तत्रेति ॥११॥

६।५०।१ 'हतं तर्दम्' इत्यथर्वाश्विनमभयकामः प्रथमा विराड्जगती ! २ 'तर्द हैं', ३ 'तर्दापते' इति द्वे पथ्या पंक्ति[1] ॥

६।५१।१ 'वायोः पूतः' इति शंतातिराप्यं त्रैष्टुभमाद्या गायत्री । [2]३ 'यत्किञ्च' इति वारुणी जगती, तया वरुणस्तुतिः ॥

६।५२।[3] १ 'उत सूर्यः' इति भागलिर्मन्त्रोक्तबहुदेवत्यमानुष्टुभम् ॥

६।५३।१ 'द्यौश्च मे' इति नानादैवतं त्रैष्टुभं बृहच्छुक्रः । प्रथमा जगतीत्यनेन मन्त्रोक्तान् देवानभिष्टूयाप्रार्थयादिति ॥

६।५४।१ 'इदं तद्' इति ब्रह्माग्नीषोमीयमानुष्टुभं ॥

६।५५।१ 'ये पन्थानः' इति वैश्वदेवीजगती । २ 'ग्रीष्मो हेमन्तः' इति द्वे रौद्र्यौ । पूर्वा त्रिष्टुप् । ३ 'इदावत्सराय' इति जगतीत्यने । मन्त्रोक्तदेवतास्तुतिरिति[4] ॥१२॥

---

१. क. ख. ग. ङ. पंक्तिः ।

२. ६।५१।३ कुछ भेद से ऋ० ७।८९।५ में आता है । ऋषि वहां वसिष्ठ है ।

३. ६।५२।१ ऋ० १।१९१।८,९ में बहुत भेद से आता है । ६।५२।२ भेद से ऋ० १।१९१।४ में है ।

४. क. ख. ग. ङ. इति नहीं ।

६।५६।[1] १ 'मा नः' इति [2]वैश्वदेवीत्युष्णिग्गर्भापथ्यापंक्तिः । २ 'नमोऽस्त्वसिताय' इति द्वे रौद्रयौ । पूर्वा त्रिष्टुप् । ३ 'सं ते हन्मि' इति निचृत् ॥

६।५७।१ 'इदमिद् वा' इति द्वे रौद्रयौ । ३ 'शं च नः' इति शंतातिः । पूर्वे द्वे अनुष्टुभौ तृतीयापथ्याबृहती ॥

६।५८।१ 'यशसं मेन्द्रः' इत्यथर्वा यशस्कामो बार्हस्पत्यमुतमन्त्रोक्तदेवत्यमाद्याजगती । २ 'यथेन्द्रः' इति प्रस्तारपंक्तिः । ३ 'यशा इन्द्रः' इत्यनुष्टुप् ॥

६।५९।१ 'अनडुद्भ्यस्त्वम्' इति रौद्रमुत मन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभम् ॥

६।६०।१ 'अयमा यात्यर्यमा' इत्यार्यमणमानुष्टुभम् ॥

६।६१।१ 'मह्यमापः' इति रौद्रं त्रैष्टुभम् । २ अहं विवेच' इति द्वे भुरिजौ ॥

६।६२।१ 'वैश्वानरो रश्मिभिः' इति रौद्रमुत मन्त्रोक्तदेवत्यं त्रैष्टुभ[3]मिति ॥१३॥

६।६३।[4] १'यत्ते देवी' इति चतुर्ऋचं द्रुह्वणो नैर्ऋतं मत्यं जागतं तिसृभिराद्याभिरायुर्वर्चोबलकामो निर्ऋतियमोमृत्युमस्तौत् । [5]अंत्याग्नेय्यनुष्टुप् तयाग्निं वसून्यप्रार्थयदिति । पूर्वातिजगतीगर्भा ।

---

१. क. ग. में प्रतीक 'मा नो देवा:' है ।

२. Whitney ने इस सूक्त का 'शंतातिः' ऋषि लिखा है।

३. क. ख. ग. ङ. इति नहीं ।

४ ६।६३।४ ऋ० १०।१९।१ में आता है । ऋषि 'संवतनः' है और देवता 'अग्निः' है ।

५. गु. में अंत्या, नहीं ।

६।६४।१ 'सं जानीध्वम्' इत्यथर्वा साम्मनस्यं वैश्वदेवमानुष्टुभम्[1] ॥

६।६५।१ 'अव मन्युः', ६।६६।१ 'निर्हस्तः', ६।६७।१ 'परि वर्त्मानि' इति त्रीणि चान्द्रमसमुतैन्द्राणि । पूर्वमुत पाराशर्यमानुष्टुभानि । पूर्वस्याद्या पथ्यापंक्तिः ॥

६।६६।१ 'निर्हस्तः शत्रुः' इति त्रिष्टुप् ॥

६।६८।१ 'आयमगन्' इति मन्त्रोक्तदेवत्यमाद्या पुरोविराडति[2] शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती । द्वितीयानुष्टुप् । ३ 'येनावपत्' इत्यतिजगतीगर्भात्रिष्टुप् ॥

६।६९।१ 'गिरावरगराटेषु' इति बार्हस्पत्यमुताश्विनमानुष्टुभं वर्चस्कामो यशस्कामश्च ॥

६।७०।१ 'यथा मांसम्' इति काङ्कायनः आघ्न्यं जागतम् ॥

६।७१।१ 'यदन्नमद्मि' इति ब्रह्माग्नेयं जागतमन्त्या वैश्वदेवी त्रिष्टुप् ॥

६।७२।१ 'यथासितः' इत्यथर्वांगिरा शेपोऽर्कदेवत्यमानुष्टुभमाद्या जगत्यंत्या भुरिक्चेति ॥१४॥

६।७३।१ 'एह यातु' ॥

६।७४।१ 'सं वः पृच्यन्ताम्' इति द्वे सांमनस्ये, मन्त्रोक्त नानादेवत्ये च । पूर्वं त्रैष्टुभमुत्तरमानुष्टुभमथर्वाद्यस्याद्या तृतीये भुरिजौ । परस्यांत्यात्रिष्टुप्, त्रिनामदेवत्या तया त्रिनामानं सांमनस्यमप्रार्थयत् ॥

६।७५।१ 'निरमुं नुद' इति मन्त्रोक्तदेवत्यमैन्द्रमानुष्टुभं सपत्नक्षयकामः कबन्धः । ३ 'एतु तिस्रः' इति षट्पदाजगती ॥

---

१. Whitney ने इस ६४ सूक्त के २ मन्त्र का छन्द 'त्रिष्टुभ' दिया है ।
२. W. विराडति शक्वरीगर्भा ।

६।७६।१ 'य एनम्' इति सान्तपताग्नेयमानुष्टुभं, चतुर्ऋचं[1] ३ 'यो अस्य' इति ककुम्मती ॥

६।७७।[2] १ 'अस्थाद् द्यौः' इति जातवेदसमानुष्टुभम् ॥

६।७८।१ 'तेन भूतेन' इति द्वे चान्द्रमस्यौ तृतीया त्वाष्ट्रीति तिस्रोऽनुष्टुभोऽथर्वा प्रथमाभ्यां जायाभिवृध्यै [3]चन्द्रमस्तौत्, रयिं च दंपत्योरप्रार्थयदंत्यया त्वष्टारं दीर्घायूंषि चेति ॥१५॥

६।७९।१ 'अयं नः' इति संस्फानदेवत्यं गायत्रमन्त्या त्रिपदा प्राजापत्यागायत्री ॥

६।८०।१ 'अन्तरिक्षेण पतति' इति चान्द्रमसमानुष्टुभम् । प्रथमा भुरिक् । ३ 'अप्सु ते' इति प्रस्तारपंक्तिः ॥

६।८१।१ 'यन्तासि' इति मन्त्रोक्तदेवत्यमुतादित्यमानुष्टुभम् ॥

६।८२।१ 'आगच्छत' इत्यैन्द्रमानुष्टुभं जायाकामो भगः ॥

६।८३।१ 'अपचितः प्र पतत' इति चतुर्ऋचमानुष्टुभं मन्त्रोक्तदेवत्यम् । ४'वीहि स्वाम्' इत्येकावसाना द्विपदा निचृदार्च्यनुष्टुप् ॥

६।८४।[4] १ 'यस्यास्ते' इति चतुर्ऋचं नैर्ऋतमाद्या भुरिग्जगती । २ 'भूते हविष्मती' इति त्रिपदार्षीबृहती । ३ 'एवो ष्वस्मन्' इति द्वे जगत्यौ। तत्र द्वितीया भुरिग्त्रिष्टुबिति[5] १६॥

---

१. बी. 'वा' अधिक है ।

२. ६।७७।२ ऋ० १०।१९।५ में भेद से आता है ऋषि मथितो यामायनो भृगुर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः ।

३. क. ख. ग. ङ. 'वृध्यौ' ।

४. ६।८४।४ अथर्व ६।६३।२ में पूर्व भी आया हैं, वहां इसका ऋषि 'द्रुह्वण' है ।

५. क. ख. ग. 'इति' नहीं ।

६।८५।१ 'वरणो वारयाता' इति वानस्पत्यमानुष्टुभमथर्वा यक्ष्मनाशनकामः ॥[1]

६।८६।१ 'वृषेन्द्रस्य' इति चैकवृषदेवत्यमानुष्टुभं वृषकामः ॥

६।८७।[2] १ 'आ त्वाहार्षम्' ॥

६।८८।[3] १ 'ध्रुवा द्यौः' इति ध्रौव्ये आनुष्टुभे ३ 'ध्रुवोच्युतः' इति त्रिष्टुप् ॥

६।८९।१ 'इदं यत् प्रेण्यः' इति मन्त्रोक्तदैवतं रौद्रम् । द्वे आनुष्टुभे मन्युविनाशनम् ॥

६।९०।१ 'यां ते रुद्र' इति रौद्रं द्वे आनुष्टुभे । ३ 'नमस्ते' इत्यार्षीभुरिगुष्णिक् ॥

६।९१।१ 'इमं यवम्' इति मन्त्रोक्तयक्ष्मनाशनदेवत्यमानुष्टुभं भृग्वंगिरा अंत्यया अप अस्तौदिति ॥१७॥

६।९२।[4] १ 'वातरंहा भव' इति वाजिनं त्रैष्टुभमाद्या जगती । अथर्वानेनेन्द्राय वाजिनमस्तौत् ॥

६।९३।१ 'यमो मृत्युः' इति रौद्रमन्त्या बहुदेवत्या त्रैष्टुभं शंतातिर्बहून्विश्वान्देवान् मन्त्रोक्तान् ॥

६।९४।१ 'सं वो मनांसि' सारस्वत्यमानुष्टुभमथर्वांगिरा अंत्या विराड्जगती ॥

६।९५।[5] १ 'अश्वत्थो देवसदनः' इति वानस्पत्यमानुष्टुभं मन्त्रोक्तदेवत्यं भृग्वंगिरा ॥

---

१. ख, ङ. 'नाशन इति कामः'। क. में ऐसा पाठ लिखकर इति पर हड़ताल फेरी हुई है।

२. ६।८७ ऋ० १०।१७३।१-३ में है।

३. ६।८८।१,२ ऋ० १०।१७३।३,४ में हैं। ऋषि इस सूक्त का ध्रुव है।

४. ६।९२।३ ऋ० १०।५६।२ में स्वल्पभेद से आया है, वहां ऋषि 'बृहदुक्थ वामदेव्यः' है।

५. ६।९५।१, २ पूर्व अथर्व ५।४।३,४ में आ चुके हैं।

६।९६।[1] १ 'या ओषधयः' इति च वानस्पत्यमानुष्टुभमंत्या सौम्या त्रिपद्याद्विराण्नाम [2]गायत्रीति ॥१८॥

६।९७।१ 'अभिभूर्यज्ञः' ॥

६।९८।१ 'इन्द्रो जयाति' ॥

६।९९।१ 'अभित्वेन्द्र' इति त्रीणि । पूर्वं मैत्रावरुणं, परे द्वे ऐन्द्रे, पूर्वे द्वे त्रैष्टुभे, तृतीयानुष्टुभमथर्वा ॥

६।९७।१ 'अभिभूर्यज्ञः' इति प्रथमांत्याभ्यां देवानस्तौत् । [3]तृतीयया मित्रावरुणौ, पराभ्यां सूक्ताभ्यामिन्द्रम् । २ 'स्वधास्तु' इति जगती । ३ 'इमं वीरम्' इति भुरिक् ॥

६।९८।२ 'त्वमिन्द्र' इति बृहतीगर्भास्तारपंक्तिः ॥

६।९९।३ 'परि दद्म' इति भुरिग्बृहती सौम्या सावित्री च ॥

६।१००।१ 'देवा अदुः' इति गरुत्मान् वानस्पत्यमानुष्टुभमनेन विषोपशांतये मन्त्रोक्तां देवतामासुरीदुहितरमस्तौदिति ।१९।

६।१०१। [4]१ 'आ वृषायस्व' इति ब्राह्मणस्पत्यमानुष्टुभमथर्वाङ्गिराः शेपः प्रथनकामः ॥

६।१०२।१ 'यथायं वाहः' इत्याश्विनमानुष्टुभं जमदग्निरभिसंमनस्कामः ॥

६।१०३।१ 'संदानं वः' ॥

६।१०४।१ 'आदानेन' इति द्वे बहुदेवत्ये, उतैन्द्राग्ने, आनुष्टुभे सूक्तक्रमादुच्छोचनप्रशोचनावपश्यताम् ॥

६।१०५।१ 'यथा मनः' इति कासादेवत्यमानुष्टुभम् ॥

---

१. ६।९६।१,२ ऋ० १०।९७।१५,१६ स्वल्पभेद से हैं, ऋषि भिषगाथर्वणः है ।
२. क. ख. ग. ङ. में इति नहीं । ३. बी. द्वितीया ।
४. ६।१०१।३ के लिये देखो पूर्व अथर्व ४।४।७॥

६।१०६।१ 'आयने ते' इति दूर्वाशालादेवत्यमानुष्टुभमुन्मोचनप्रमोचनाविति ॥२०॥

६।१०७।१ 'विश्वजित्त्रायमाणायै' इति चतुर्ऋचं विश्वजिद्देवत्यमानुष्टुभं, शंतातिरनेन मन्त्रोक्तां देवतामस्तौत् ॥

६।१०८।१ 'त्वं नो मेधे' इति पञ्चर्चं मेधादेवत्यमानुष्टुभं शौनकोऽनेन मेधामस्तौत् । ४ 'यामृषयः' इत्याग्नेयी । २ 'मेधामहम्' इत्युरोबृहती । ३ 'यां मेधाम्' इति पथ्याबृहती ॥

६।१०९।[2] १ 'पिप्पली' इति मन्त्रोक्तपिप्पलीदेवत्यमुतभेषज्यायुरानुष्टुभमथर्वा पिप्पलीमस्तौदिति ॥

६।११०।१ 'प्रत्नो हि' इत्याग्नेयं त्रैष्टुभं । प्रथमा पंक्तिरनेनाग्निमस्तौदिति ॥

६।१११।१ 'इमं मे अग्ने' इत्याग्नेयमानुष्टुभं, चतुर्ऋचं प्रथमा परानुष्टुप् [3]त्रिष्टुप् ॥

६।११२।१ 'मा ज्येष्ठम् ॥

६।११३।१ 'त्रिते देवाः' इति द्वे त्रैष्टुभे । प्रथममाग्नेयमुत्तरं पौंस्नम् । ३ 'द्वादशधा' इति पंक्तिः ॥

६।११४।१ 'यद्देवा देवहेडनम्' ॥

६।११५।१ 'यद् विद्वांसः' इति द्वे त्रैष्टुभे वैश्वदेवे आनुष्टुभे ब्रह्मास्यां मन्त्रोक्तान्विश्वान् देवान् ॥

६।११६।१ 'यद् यामम्' इति वैवस्वद्देवत्यं जागतं, जाटिकायनो, द्वितीया त्रिष्टुप् ॥

---

१. ङ प्रशोचनाविति ।
२. बी. पिप्पली क्षिप्तमिति ।
३. ख. बी. में त्रिष्टुप् नहीं है ।

६।११७।१ 'अपमित्यमप्रतीत्तम्' इति त्रीण्याग्नेयानि त्रैष्टुभानि । चानृणकामः कौशिक एभिर्वैश्वानरम् ॥

६।१२०।१ 'यदन्तरिक्षम्' इति द्वे मन्त्रोक्तदेवत्ये । प्रथमस्याद्या जगती । २ 'भूमिर्माता' इति पंक्तिः । ३ 'यत्रा सुहार्दः' इति तिस्रस्त्रिष्टुभः[1] ॥

६।१२१।३ 'उदगाताम्' इति द्वे आनुष्टभाविति ॥२१॥

६।१२२।१ 'एतं भागम्' ॥

६।१२३।१ 'एतं सधस्थाः' इति द्वे पञ्चर्चे त्रैष्टुभे, पूर्वं वैश्वकर्मणं, परं वैश्वदेवं भृगुर्मन्त्रोक्तान् देवानस्तौदिति ॥

६।१२२।४ 'यज्ञं यन्तं', ५ 'शुद्धाः पूता' इति जगत्यौ ॥

६।१२३।३ 'देवाः पितरः' इति द्विपात्साम्न्यनुष्टुप् । ४ 'स पचामि' इत्येकावसाना द्विपात्प्राजापत्या भुरिगनुष्टुप् ॥

---

१. बृहत्सर्वानुक्रमणी में १२० और १२१ सूक्त को एक ही सूक्त माना है। 'यत्रा सुहार्दः इतितिस्त्रस्त्रिष्टुभः' पाठ सिद्ध कर रहा है, कि १२० सूक्त का अन्तिम मन्त्र तथा १२१ सूक्त के आदि के दोनों मन्त्र त्रिष्टुप् छन्द वाले हैं। सारी पुस्तक में यही शैली है, कि छन्द अपने ही सूक्त के मन्त्रों का छन्द इकट्ठा देता है। यहां पर १२१ सूक्त के आदि दो मन्त्रों का छन्द देना, यह स्पष्ट कर रहा है कि उसके मत में दोनों सूक्त एक ही हैं। Whitney ने अपने English अनुवाद में १२१ सूक्त के ऊपर ऐसे दिया है –

"(कौशिक चतुर्ऋचं) मन्त्रोक्तदेवत्यं । १, २ त्रिष्टुभ, ३, ४ अनुष्टुभ ।"

इसमें ह्विटने ने छन्दों के बिना जो कुछ लिखा है, वह उस की अपनी कल्पना है। सर्वानुक्रमणी में इस विषय में कुछ नहीं लिखा। पता नहीं ह्विटने ने इस प्रकार की कल्पना को भी बृ० स० अनुक्रमणी के सिर पर क्यों मढ़ा है।

हमारी सम्मति में ये दोनों सूक्त भिन्न-भिन्न हैं। पञ्चपटलिका पृ० ७ पर भी इस १२१ सूक्त को चार ऋचा वाले सूक्तों में गिना है और भिन्न माना है। इस छठे काण्ड में जितने भी सूक्त आते हैं, उन में अधिक तीन ऋचा वाले हैं, और थोड़े से चार और पाँच ऋचा वाले हैं। इस समग्र कांड में पांच से अधिक ऋचा वाला कोई भी सूक्त नहीं। इस से यदि १२० और १२१ सूक्तों को इकट्ठा मान लिया जावे तो दोनों सूक्तों की ऋक् संख्या ७ हो जाती है, जो कि इस काण्डक्रम के विरुद्ध है, अतः सर्वानुक्रमणी का यह क्रम चिन्तनीय है।

६।१२४।१ 'दिवो नु माम्' इति त्रैष्टुभं मन्त्रोक्तदेवत्यमुत दिव्याप्यं निर्ऋत्यपस्तरणकामोऽथर्वा ॥

६।१२५।१ 'वनस्पते वीड्वङ्गः' इति त्रैष्टुभं वानस्पत्यम् । २ 'दिवस्पृथिव्याः' इति जगती ॥

६।१२६।१ 'उप श्वासय' इति वानस्पत्यं दुन्दुभिदेवत्यं-भुरिक् त्रैष्टुभमाभ्यां युद्धोपकरणानि । [1]३ 'प्रामूम्' इति ॥२२॥

६।१२७।१ 'विद्रधस्य' इति भृग्वंगिरा चास्तौत् । वानस्पत्यमुत यक्ष्मनाशनदेवत्यमानुष्टुभम् । ३ 'यो अङ्ग्यः' इति त्र्यवसाना षट्पदाजगती ॥

६।१२८।१ 'शकधूमम्' इति चतुर्ऋचमंगिरा सौम्यं, शकधूमदेवत्यमानुष्टुभमनेन नक्षत्रराजानं चन्द्रमसमस्तौदिति ॥

६।१२९।१ 'भगेन मा' इति भगदेवत्यमानुष्टुभमथर्वानेन भगमस्तौत् ॥

६।१३०।१ 'रथजिताम्' इति चतुर्ऋचम् ॥

६।१३१।१ 'नि शीर्षतः' इति प्रागुक्तम् ॥

६।१३२।१ 'यं देवाः' इति पंचर्चमिमानिस्मरदेवताकानि त्रीण्यानुष्टुभानि । १३०।१ रथजिताम्' इति विराट्पुरस्ताद् बृहती । १३२।१ 'यं देवाः' इति त्रिपादनुष्टुप् । ३ 'यमिन्द्राणी' इति भुरिक् । २ 'यं विश्वेदेवाः', ४ 'यमिन्द्राग्नी', ५ 'यं मित्रावरुणौ' इति तिस्र एता [2]बृहत्य इति ॥२३॥

६।१३३।१ 'य इमाम्' इति पञ्चर्चमगस्त्यो मेखलादेवताकं त्रिपादः । पूर्वे द्वे विराजौ, महामनेन मेखलामभिष्टूय तां ब्रह्म-

१. किसी हस्तलेख में इस मन्त्र का छन्द नहीं है, परन्तु जो ह्विटने ने इस मन्त्र का छन्द पुरोबृहती विराड्गर्भा त्रिष्टुप् लिखा है। पता नहीं उसका आधार क्या है ?

२. ङ. और ह्विटने में यहां महाबृहती छन्द इन तीनों का लिखा है।

चारिणसंत्याभ्यां बध्वा चाप्रार्थयत् । २ 'श्राहुतासि', ५ 'यां त्वा' इत्यनुष्टुभौ । ३ 'मृत्योरहम्' इति त्रैष्टुभम् । १ 'य इमाम्' इति भुरिक् । ४ 'श्रद्धाया दुहिता' इति जगती ॥

६।१३४।१ 'अयं वज्रः' इति द्वे त्रैष्टुभे मन्त्रोक्तवज्रदेवत्ये आनुष्टुभे शुक्रोऽन्त्या भुरिक् त्रिपदा गायत्री । प्रथमा परानुष्टुप् त्रिष्टुप् । अनेन मन्त्रोक्तमभिमन्त्र्याभिष्टूय तदप्रैषीत् ॥

६।१३५।१ 'यदश्नामि' इति [1]मन्त्रैरिति ॥२४॥

६।१३६।१ 'देवी देव्याम्' इति त्रीण्यानुष्टुभानि वानस्पत्यानि । तृतीयं पंचर्चमथर्वा पूर्वे द्वे केशवर्धनकामो वीतहव्यस्तृतीयं क्लीबकर्तुकाम इति । तत एभिर्नितत्निमोषधिमस्तौदिति । २ 'दृंह प्रत्नान्' इत्येकावसाना द्विपात्साम्नी बृहती ॥

६।१३८।३ 'क्लीब क्लीबम्' इति पथ्यापंक्तिः ॥

६।१३९।१ 'न्यस्तिका रुरोहिथ' इति द्वे आनुष्टुभे । पूर्वं पञ्चर्चं वानस्पत्यं, द्वितीयं ब्राह्मणस्पत्यमुत मन्त्रोक्तदन्तदेवत्यम् । १ 'न्यस्तिका' इति त्र्यवसाना षट्पदा विराड्जगती ॥

६।१४०।१ 'यौ व्याघ्रौ' इत्युरोबृहती २ 'व्रीहिमत्तम्' इत्युपरिष्टाज्ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् । ३ 'उपहूतौ सयुजौ' इत्यास्तारपंक्तिः ॥

६।१४१।१ 'वायुरेनाः' इति द्वे आनुष्टुभे पूर्वमाश्विनमुत्तरं वायव्यं विश्वामित्र इति ॥२५॥

[2]इति ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां चतुर्थः पटलः समाप्तः ॥



१. वी में यहां से पाठ छूटा हुआ है । द्वि० मन्त्रोक्त विराज देवत्यं आनुष्टुभम् ।

२. गु. में यह पाठ अधिक है "रा. राखेश्वर सुत रा. बबल सु. जेशंकर तथा शंकरीया लिखित श्री राजा सत्य छ जी संवत् १८२७ अश्विन वदी शुक्रवार श्री राम" ।

[†]अथ सप्तमं काण्डम्

[1]अथैकर्चसूक्तकाण्डमन्त्राणामृषिदैवतछन्दांसि वक्ष्यामः ।

७।१।१ 'धीती वा ये' इति द्व्यृचमेतत्प्रभृतीनि त्रैष्टुभान्यष्टसूक्तानि । पूर्वाणि त्रीण्यात्मदेवत्यानि चतुर्थं वायव्यं, [2]पञ्चमं पञ्चर्चमात्मदेवताकं, [3]षष्ठं द्व्यृचं तथा परं त्रीणीमान्यदितिदेवत्यानि । ब्रह्मवर्चस्कामोऽथर्वामन्त्रोक्तान् देवानस्तौदिति । ७।[4]६।२ 'महीमू षु' इति भुरिक् । ७।१।२ 'स वेद पुत्रः', ७।६।३ 'सुत्रामाणं', ७।६।४ 'वाजस्य नु' ७।७।१ 'दितेः पुत्राणाम्' इति जगत्यस्तत्र पूर्वास्तिस्रोविराजोऽन्त्यार्षीति । ७।५।३ 'यद्देवाः' इति पंक्तिः । ७।५।४ 'यत्पुरुषेण' इत्यनुष्टुप् ॥

---

†. यह लेख हमारा है ।

१. गु० में "श्री राम जीओ" अधिक है । ङ. 'ॐ' अधिक है ।

२. ङ. बी. में 'पञ्चम' पाठ नहीं ।

३. बृ० सर्वानुक्रमणिका का यहां इस छठे सूक्त की ऋक् संख्या में पञ्चपटलिका से भेद है । पटलिका ने "अदितिर्द्यौः··· · प्रपतेत इति चतुर्ऋचानि" पाठ देकर इस ७।६ सूक्त को चार ऋचा वाला माना है (देखो पञ्चपटलिका पं० भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित पृ० ८) परन्तु यहां इसे द्व्यृच मानकर, 'तथा परं' पाठ देकर 'सुत्रामाणं' और 'वाजस्य नु' मन्त्रों को इकट्ठा करके भिन्न द्व्यृच सप्तम सूक्त स्वीकार किया है। पं० शंकर पाण्डुरंग ने इस पर सायणभाष्य में अपनी भूमिका के पृ० १७ पर पटलिका के पाठ को न स्वीकार करके अनुक्रमणिका की ऋक्संख्या के क्रम से ६, ७ भिन्न दो सूक्त ही बनाये हैं। बर्लिन तथा अजमेर में छपी हुई मूल संहिताओं में सूक्त क्रम पटलिका के ही अनुकूल लिखा है । ७।५।१ ऋ० १।१६४।५० में है, वहां ऋषि दीर्घतमा और देवता साध्या है, फिर ऋ० १०।९०।१६ में भी यह आया है, वहां ऋषि नारायण और देवता पुरुष है ।

४ अथर्व० ७।६।१ मन्त्र ऋ० १।८९।१० में आया है, वहां इसका ऋषि गोतमो राहूगण पुत्र लिखा है । ७।६।३ ऋ० १०।६३।१० में है. वहां ऋषि गयःप्लातः है । हमने सूक्त क्रम प्रकाशित संहिता के अनुसार दिया है ।

७।८।१ 'भद्रादधि' इति द्वे त्रैष्टुभे, पूर्वं बार्हस्पत्यं, [1]द्वितीयं चतुर्ऋचं पौंस्नमुपरिबभ्रवो मन्त्रोक्तदेवौ। ७।९।३ 'पूषन् तव' इति त्रिपदार्षीगायत्री। ७।९।४ 'परि पूषा' इत्यनुष्टुबिति[2] ।१।

७।१०। [3]१ 'यस्ते स्तनः' इति द्वे त्रैष्टुभे सारस्वते ॥

७।१२।१ 'सभा च मा' इति चतुर्ऋचं सभ्यमानुष्टुभं शौनकः। पूर्वाभ्यां सरस्वतीं तृतीयस्य पूर्वा [4]द्विदेवत्या उतपित्र्या भुरिक्त्रिष्टुप्। द्वितीयाभ्यां तृतीयैन्द्री, चतुर्थ्यामन्त्रोक्तदेवत्यया तया तामप्रार्थयत् ॥

७।१३।१ 'यथा सूर्य्यः' इति द्व्यृचमानुष्टुभं, सौम्यमथर्वा द्विषोवर्चोहर्तुकामस्ततः एनमप्रार्थयत् ॥

७।१४।[5]१ 'अभि त्यं देवम्' इति चतुर्ऋचं सावित्रमानुष्टुभं।

७।१५।१ 'तां सवितः' इति द्वे सावित्रे, त्रैष्टुभे भृगुर्मन्त्रोक्त-देवताः। [6]७।१४।३ 'सावीर्हि देव' इति त्रिष्टुप्। ७।१४।४ 'दमूना देवः' इति जगती ॥

७।१७।१ 'धाता दधातु' इति चतुर्ऋचमानुष्टुभं, सावित्रमुत

---

१. ७।९।१,२ ऋ० १०।१७।६,५ में हैं वहां इनका ऋषि 'देवश्रवा यामायन' है, देवता पूषा है। ७।९।३, ४ ऋ० ६।५४।९, १० में हैं, वहां ऋषि भारद्वाजो बार्हस्पत्यः है।

२. क. ग. ङ. इति नहीं।

३. ७।१०।१ ऋ० १।१६४।४९ में है, ऋषि दीर्घतमा है।

४. यह पाठ ह्वि० के अनुसार दिया है हमारे मूलपाठों में देवत्योत्यित्र्या है।

५. अथर्व० ७।१४।१,२ सामवेद आर्चिक १, प्रपा० ५, अर्ध २, दशति ३, मं० ८ में है (देखो वैनफी Benfy द्वारा सम्पादितसामवेद पृ० ४८ तथा ४९।

६ यहां ७।१४।३।४ मन्त्रों को ७।१५ सूक्त में भूल से गिना हुआ है। सब प्रकाशित संहिताओं में इन्हें १४वें सूक्त में ही लिखा है। हमारी सम्मति में ये १४वें सूक्त में चाहिये थे।

बहुदेवत्यम् । पूर्वा त्रिपदार्षीगायत्री । ३ 'धाता विश्वा' इति द्वे त्रिष्टुभाविति[1] ॥२॥

७।१८।१ 'प्र नभस्व' इति द्वयृचं पार्जन्यमुत पार्थिवमथर्वा । पूर्वा चतुष्पाद्भुरिगुष्णिगुत्तरा त्रिष्टुप् ॥

७।१९।१ 'प्रजापतिर्जनयति' इति मन्त्रोक्तदेवत्यं जागतं ब्रह्मा ॥

७।२०।१ 'अन्वद्य नः' इति षडृचमानुष्टुभमानुमतीयमनेनानुमतीमिति । ३ 'अनु मन्यताम्' इति त्रिष्टुप् । ४ 'यत् ते नाम' इति भुरिक् । ५ 'एमं यज्ञम्' इति द्वे जगत्यौ, तत्र द्वितीयातिशाक्वरगर्भा ॥

७।२१।१ 'समेत' इति मन्त्रोक्तात्मदेवत्यं, परा शक्वरीविराड्गर्भा जगती च ॥

७।२२।१ 'अयं सहस्रम्' इति द्वयृचं लिङ्गोक्तदेवत्यम् । पूर्वा द्विपदैकावसाना विराड्गायत्री । २ 'ब्रध्नः समीचीः' इति त्रिपादनुष्टुप् ॥

७।२३।१ 'दौष्वप्न्यम्' इति मन्त्रोक्तदुःस्वप्ननाशनदेवत्यमानुष्टुभं यमः ॥

७।२४।१ 'यन्नः' इति सावित्रं त्रैष्टुभं ब्रह्मा[2] ॥

७।२५।१ 'ययोरोजसा' इति द्वयृचम् ॥

७।२६।[3] १ 'विष्णोर्नु कम्' इत्यष्टर्चमेधातिथिरुभे त्रैष्टुभे वैष्णव्येति । सर्वैरेतैर्विष्णुमभ्यस्तौत् ॥

---

१. क. ग. ङ. इति नहीं ।

२. बी. ब्रह्मात्मा ।

३. ७।२७।१ ऋ० १।१५४।१ में है, वहां ऋषि 'दीर्घतमा' है ।

७।२६।[1] २ 'प्र तद्विष्णुः' इति त्रिपदा विराड्गायत्री । [2]३ 'यस्योरु' इति त्र्यवसाना षट्पदा विराट्शक्वरी । [3]४ 'इदं विष्णुः' इति [4]चतस्रो गायत्र्यः । ८ 'दिवोविष्ण' इति त्रिष्टु-[5]बिति ॥३॥

७।२७।१ 'इडेवास्मान्' इति मन्त्रोक्तेडादेवत्यं त्रैष्टुभम् ॥

७।२८।१ 'वेदः स्वस्तिः' इति वेददेवताकं त्रैष्टुभम् ॥

७।२९।१ 'अग्नाविष्णू' इति द्वयृचं मन्त्रोक्तदैवतं त्रैष्टुभम् ॥

७।३०।१ 'स्वाक्तं मे' इति द्यावापृथिवीयमुत [6]प्रतिपादोक्त-देवताकं बार्हतं भृग्वंगिरा ॥

---

१. ७।२६।२ के प्रथम दो पद ऋ० १।१५४।२ में मिलते हैं और अन्तिम पद तथा इससे पूर्व का भी पद ऋ० १०।१८०।२ में आते हैं।

२. ७।२६।३ के प्रथम दो पद ऋ० १।१५४।२ के अन्तिम दो पदों में भी आते हैं।

३. ७।२६।४-७ ऋ० १।२२।१७-२० में आते हैं वहां इनका ऋषि 'मेधातिथि काण्व' है।

४. क. ग. गु. में चतस्रः के स्थान पर 'पंच' पाठ है, यह अशुद्ध है, क्योंकि आगे जाकर अंत्या कहकर जो पांचवीं ऋचा है उसे भिन्न लिखा है अतः ङ. बी. का पाठ ठीक है और दिवोविष्ण, मन्त्र के स्थान पर अंत्या त्रिष्टुप् लिखा है। ङ. में बहुत ही आश्चर्ययुक्त पाठ दिया है। वहां 'चतस्रो गायत्र्या दिवो विष्णुरिति पञ्च गायत्र्या अंतित्रिष्टुप्' लिखा है। यह पाठ बहुत भ्रम युक्त है। हमारी सम्मति में यहां बी. का पाठ बहुत शुद्ध है। वही हमने मूल में दिया है। क. ग. और गु. के पाठ भिन्न हैं और बी. का भिन्न। ङ. का पाठ दोनों प्रकार के पाठों के मेल से लिखा गया है, क्योंकि इसमें क. ग. गु. और बी. इन चारों ही आदर्श पुस्तकों का पाठ दिया है। प्रतीत होता है कि यह आदर्शपुस्तक क. ग. गु. और बी. के पीछे लिखा गया है। साथ ही इस से यह भी सिद्ध होता है, कि क. ग. गु. एक शाखा के पुस्तक हैं और बी. दूसरी शाखा का।

५. क. ग. ङ. इति नहीं। ६. बी. प्रती।

७।३१।१ 'इन्द्रोतिभिः' इत्यैन्द्रं भुरिक्त्रिष्टुप् ।।

७।३२।[1]१ 'उप प्रियम्' इत्यायुष्यमानुष्टुभं ब्रह्मा ।।

७।३३।१ 'सं मा सिञ्चन्तु' इति मन्त्रोक्तदेवत्यं पथ्यापंक्तिरित्यनया मरुदादीन् देवान् प्रजादीनप्रार्थयत् ।।

७।३४।१ 'अग्ने जातान्' इति द्वे अथर्वा जातवेदसे। द्वितीयं तृचं पूर्वं जागतं, परमानुष्टुभम् ।

७।३५।३ 'परं योनेः' इति त्रिष्टुभावाभ्यां जातवेदसमिति ।।४।।

७।३६।१ 'अक्ष्यौ नौ' इति मन्त्रोक्तोऽक्षिदेवत्यमानुष्टुभम् ।।

७।३७।१ 'अभि त्वा' इति लिङ्गोक्तदेवत्यमानुष्टुभम् ।।

७।३८।१ 'इदं खनामि' इति पञ्चर्चंवानस्पत्यमानुष्टुभमनेनासुरीमोषधिमिति । ३ 'प्रतीची सोमम्' इति चतुष्पादुष्णिक् ।।

७।३९।[2]१ 'दिव्यं सुपर्णम्' इति मन्त्रोक्तदेवत्यं त्रैष्टुभं प्रस्कण्वः ।।

७।४०।१ 'यस्य व्रतम्' इति द्व्यृचं सारस्वतं त्रैष्टुभं प्रथमा भुरिक् ।।

७।४१।१ 'अति धन्वानि' इति द्व्यृचं श्येनदैवतम् । पूर्वा जगती । परा त्रिष्टुप् ।।

७।४२।[3] १ 'सोमारुद्रा वि वृहतम्' इति द्व्यृचं मन्त्रोक्तदेवत्यं त्रैष्टुभम् ।।

७।४३।१ 'शिवास्ते' इति वाग्देवत्यं त्रिष्टुप् ।।

---

१. ७।३२।१ के आदि के तीन पद ऋ० ६।६७।२९ में आते हैं।

२. ७।३९।१ ऋ० १।१६४।५२ में है वहां ऋषि दीर्घतमा है।

३. ७।४२।१,२ ऋ० ६।७४।,२ ३ में हैं, ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य है।

७।४४। [1] १ 'उभा जिग्यथुः' इति मन्त्रोक्तदेवत्यं भुरिक्-त्रिष्टुप् ॥

७।४५। [2] १ 'जनाद्विश्वजनीनात्' इति भैषज्यमानुष्टुभम् । एतैः सप्तभिः सूक्तैर्मन्त्रोक्ताः स्वाः स्वा देवता इति ॥५॥

७।४५।२ 'अग्नेरिवास्य' इति मन्त्रोक्तदेवत्यमर्थापनयनमानुष्टुभम् ॥

७।४६। [3] १ 'सिनीवालि पृथुष्टुके' इति तृचमथर्वा मन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभम् । ३ 'या विश्पत्नी' इति त्रिष्टुप् ॥

७।४७।१ 'कुहूं देवीम्' इति द्वयृचं मन्त्रोक्तदेवत्यमाद्या जगती परा त्रिष्टुप् ॥

७।४८। [4] १ 'राकामहम्' इति द्वयृचं मन्त्रोक्तदेवत्यं जागतम्।

७।४९। [5] १ 'देवानां पत्नी' इति द्वयृचं मन्त्रोक्तदेवपत्नीदवताकं । पूर्वार्षीजगती, द्वितीया चतुष्पदा पंक्तिरेतैः सिनीवाल्यादिदेवता इति ॥

७।५०।१ 'यथा वृक्षम्' इति नवर्चं [6] कितववधकामोऽगिरा।

---

१. ७।४४।१ ऋ० ६।६९।८ में है वहां ऋषि 'भारद्वाज बार्हस्पत्य' है।

२. पंचपटलिका पृ० ७ में ७।४५ सूक्त को द्वयृच माना है, परन्तु अनुक्रमणिका में यह एकर्च ही है।

३. ७।४६।१,२ ऋ० २।३२।६,७ में हैं ऋषि गृत्समद है।

४. ७।४८।१,२ ऋ० २।३२।४,५ में हैं ऋषि गृत्समद है।

५. ७।४९।१,२ ऋ० ५।४६।७,८ में हैं वहां ऋषि 'प्रतिक्षत्र आत्रेय' है।

६. समग्र मूल लेखों में यहां 'कितवद्बन्धन लिखा है। यदि मूललेखों का पाठ स्वीकार करें तो कुछ भी अर्थ नहीं बन पड़ता। ह्वि० ने अपनी कल्पना से 'कितवबाधन कामः' पाठ दिया है। ब्लूमफील्ड यहां 'बन्धन' डा० रिडर 'द्वन्द्वधन' पाठ स्वीकार करते हैं, परन्तु ह्वि० ने अथर्व संहिता के ७।५०।१ मन्त्र के अन्तिम पद पर 'बध्यासम्' पद देखकर 'बःधन' पाठ माना है। मेरी सम्मति में यहां 'कितववध'

ऐन्द्रमानुष्टुभम् । [1]३ 'ईडे अग्निम्', ७ 'गोभिष्टरेमाम्' इति द्वे त्रैष्टुभौ । [2]४ 'वयं जयेम' इति जगती । [3]६ 'उत प्रहाम्' इति भुरिक्त्रिष्टुप् ॥

७।५१। [4]१ 'बृहत्पतिर्नः' इति बार्हस्पस्यं त्रैष्टुभमाभ्यां इन्द्रबृहस्पती इति ॥६॥

७।५२।१ 'संज्ञानं नः' इति द्वृच् चमथर्वा सांमनस्यमाश्विनम् । आद्या ककुम्मत्यनुष्टुप् । द्वितीया जगतीति ॥

७।५३।१ 'अमुत्र भूयादधि' इति सप्तर्चं ब्रह्मायुष्यमुत बार्हस्पत्यमाश्विनं त्रैष्टुभम् । ३ 'आयुर्यत्' इति भुरिक् । ४ 'मेमम्' इत्युष्णिग्गर्भार्षीपंक्तिः । ५ 'प्र विशतम्' इति तिस्रोऽनुष्टुभोऽनेन मन्त्रोक्तान् देवानायुरिति ।

पाठ ठीक है, क्योंकि समग्र मन्त्रार्थ के आलोचन से यही प्रतीत होता है कि जैसे अशनि (विद्युत्) वृक्ष को (हन्ति) मारती है वैसे ही मैं अक्षदेवन क्रीड़ा अर्थात् द्यूत में अपने प्रतिरोधि 'कितवानक्षैर्वध्यासम्' जुआरियों को पासों से 'वध्यासम्' मारूं। यहां 'हनो वध लिङि' अष्टा० २।४।४२ सूत्र से हन धातु को वधादेश हुआ है। मेरी सम्मति में तो मूल संहिता में भी 'बध्यासं' पाठ अशुद्ध है, वहां 'वध्यासम्' पाठ होना चाहिये। सम्भव है अन्य किसी आदर्श मूल संहिता के मिलने से पाठ में शुद्धता मिल जावे। श्री सायणाचार्य्य ने भी निज भाष्य में मूल पाठ 'वध्यासम्' मानकर ही अर्थ किया है, 'बध्यासम्' मानकर नहीं। अनुक्रमणीयों के आदर्श पाठ चिन्तनीय हैं।

१. ७।५०।३ ऋ० ५।६०।१ में आया है, वहां ऋषि 'श्यावाश्व आत्रेय' है।

२. ७।५०।४ ऋ० १।१०२।४ में है। वहां ऋषि 'कुत्स आङ्गिरस' है।

३. ७।५०।६,७ ऋ० १०।४२।६,१० में अल्पभेद से हैं वहां ऋषि 'कृष्णः' है।

४. ७।५१।१ ऋ० १०।४२।११ में अल्प भेद से है ऋषि कृष्ण और देवता केवल इन्द्र है।

५. 'आभ्यां' पद किन दो ऋचाओं के लिये प्रयुक्त किया है यह चिन्तनीय है।

७।५४।[1] १ 'ऋचं साम यजामहे' इति ऋक्सामदेवत्यमानुष्टुभम् ॥

७।५४।[2] २ 'ऋचं साम यत्' इति भृगुर्द्व्यृचमैन्द्रमानुष्टुभं द्वितीया विराट्परोष्णिक् ॥

७।५६।१ 'तिरश्चिराजेः' इति सूक्तमष्टर्चमथर्वा मन्त्रोक्तवृश्चिकदेवताकमानुष्टुभं [3]सपादा द्वितीया [4]वानस्पत्या । ४ 'अयं यो वक्रः' इति विराट्प्रस्तारपंक्ति[5]र्ब्राह्मणस्पत्यमुतेदमिति ॥७॥

---

१. शंकर पाण्डुरङ्ग सम्पादित सायण भाष्य के बिना, अन्य सब मूल संहिता प्रकाशकों ने ७।५४ सूक्त को द्व्यृच माना है। परञ्च अनुक्रमणी में इसे एकर्च लिखा है। प्रतीत होता है कि रा० ह्वि० ने पंचपटलिका के आधार से ७।५४ को तो द्व्यृच माना है और आगे के सूक्त 'ये ते पन्थानोव' को एकर्च माना है। मेरी सम्मति में यहां उन्होंने पटलिका के समझने में भूल की है। पं० भगवद्दत्त जी ने भी पटलिका सम्पादन में 'ऋचं साम' मन्त्र प्रतीक के आगे जो (५४) सूक्त का पता दिया है। वह भी राथादि अशुद्ध संहिताओं के आधार से ही उन्होंने दिया है। उनको भी यहां भूल उन्हीं संहिताओं के आधार से हुई है। वास्तव में 'ऋचं साम' का जो पता पटलिका में दिया गया है, वह प्रकाशित अथर्व संहिताओं के ७।५४ के २ मन्त्र से जानना चाहिये था, परन्तु संहिता प्रकाशकों ने ७।५४ के १ मन्त्र की प्रतीक जानकर 'ऋचं साम' और 'ऋचंसाम यत्' मन्त्रों का ५४ सूक्त को द्व्यृच बनाया है और 'ये ते पन्थानोव ७।५५ को एक भिन्न सूक्त बनाया है। ठीक ऐसा होना चाहिये था कि 'ऋचंसामयजामहे' मन्त्र का एकर्च भिन्न सूक्त बनाते और 'ऋचंसाम यदप्राक्षं' तथा 'ये ते पन्थानोव' इन दो मन्त्रों का एक भिन्न द्व्यृच सूक्त बनाते अनुक्रमणी और पटलिका से भी यही सिद्ध होता है।

२. यह एकर्च है वा द्व्यृच यह निर्णय हम ने पृ० ७७ की टिप्पणी में कर दिया है।

३. मूल लेखों में सम्पादा पढ़ा जाता है।

४. ह्वि० ने 'ब्राह्मणस्पत्या' पाठ कल्पित किया है।

५. मूल लेखों मे 'वानस्पम्त्याय' पाठ है ये दोनों पाठ शुद्ध क्या है ठीक रूप से पढे नहीं जाते।

७।५७।१ 'यदाशसा' इति द्वयृचं वामदेवोजागतं सारस्वतम् ॥

७।५८।[1] १ 'इन्द्रावरुणा सुतपौ' इति द्वयृचं कौरुपथिमन्त्रोक्तदेवत्यं जागतम् । द्वितीयात्रिष्टुप् ॥

७।५९।१ 'यो नः शपात्' इति बादरायणिररिनाशनमन्त्रोक्तदेवताकमानुष्टुभम् ॥

७।६०।१ 'ऊर्जं बिभ्रत्' इति सप्तर्चं । ब्रह्मा वास्तोष्पत्यमानुष्टुभम् । प्रथमा परानुष्टुप्त्रिष्टुबनेन [2]रम्यान्गृहान्वास्तोष्पतीनप्रार्थयत् ॥

७।६१।१ 'यदग्ने' इति द्वयृचमथर्वाग्नेयमानुष्टुभम् ॥

७।६२।१ 'अयमग्निः' इत्याग्नेयम् ॥

७।६३।१ 'पृतनाजितम्' इति मारीचिः काश्यप उभे जगत्यौ जातवेदसम् ॥

७।६४।१ 'इदं यत् कृष्णः' इति द्वयृचं यमोमन्त्रोक्तदेवत्यमुत नैर्ऋतं । प्रथमा भुरिगनुष्टुप् । द्वितोया न्यंकुसारिणीबृहती ॥

७।६५।१ 'प्रतीचीनफलः' इति तृचं शुक्रोऽपामार्ग वीरुद्दैवतमानुष्टुभमनेन मन्त्रोक्तां देवतां दुरितापमृष्टिमप्रार्थयत् ॥

७।६६।१ 'यद्यन्तरिक्षे' इति ब्रह्मा ब्राह्मणं त्रिष्टुप् ॥

७।६७।१ 'पुनर्मैत्विन्द्रियम्' इत्यात्म [3]दैवतं पुरः परोष्णिग् बृहतीति ॥८॥

---

१. ७।५८ सूक्त ऋ० ६।६८।१०,११ में है, वहां ऋषि 'भारद्वाज' बार्हस्पत्य है।

२. सब मूल पुस्तकों में पाठ 'रम्यां गृहान्' है 'रम्यान् गृहान्' हमने दिया है।

३. बी. देवत्यम्।

७।६८।[1] १ 'सरस्वति व्रतेषु' इति द्व्यृचम् ॥

७।६८।[2] ३ 'शिवा नः' इति सारस्वते उभे। ७।६९।१ 'शं नः' इति सुखदेवताकं शंतातिः पूर्वस्य पूर्वानुष्टुप्, परात्रिष्टुप्। ६८।३ 'शिवा नः' इति गायत्री। ६९।१ 'शं नो वातः' इति पथ्यापंक्तिः ॥

७।७०।१ 'यत् किं चासो' इति पञ्चर्चमथर्वा मन्त्रोक्तदेवत्यमुत श्येनदेवताकं त्रैष्टुभम्। २ 'यातुधाना' इत्यतिजगतीगर्भा जगती। ३ 'अजिराधिराजौ' इति तिस्रोऽनुष्टुभः पूर्वा पुरःककुम्मती ॥

७।७१।१ 'परि त्वाग्ने' इत्याग्नेयमानुष्टुभम् ॥

७।७२।[3] १ 'उत्तिष्ठत' इत्यैन्द्रं द्व्यृचम्। प्रथमानुष्टुप्, द्वितीया त्रिष्टुप्। ३ 'श्रान्तं मन्ये' इत्यैन्द्रंत्रैष्टुभम् ॥

७।७३।[4] १ 'समिद्धो अग्निर्वृषणा' इत्येकादशर्चं घर्मसूक्तमाश्विनमुत प्रत्यृचं मन्त्रोक्तदेवतंत्रैष्टुभमनेनघर्ममिति। पूर्वा,

---

१. पंचपटलिका में इस सूक्त को तृच माना है और अगले ६९ सूक्त को एकर्च स्वीकार किया है। परञ्च अनुक्रमणी तो ६८ और ६९ इन दोनों सूक्तों को द्व्यृच ही मानती है। शं. पा. के. सायण भाष्य के विना अन्य सब प्रकाशित संहिताओं ने ऋचाक्रम पटलिका के आधार से लिखा है। कौशिक सूत्र में तथा वैतान सूत्र में भी ६८ सूक्त को दो ऋचा वाला ही माना है।

२. प्रकाशित संहिता में यह मन्त्र ७।६८।३ है, अनुक्रमणी के मत में ७।६९।१ का प्रथम मन्त्र है।

३. पटलिका में इस ७२ सूक्त को तृच माना है, परन्तु अनुक्रमणी इसे द्व्यृच स्वीकार करके 'श्रान्तं मन्ये' वाले मन्त्र का भिन्न एकर्च सूक्त स्वीकार करती है। कौशिक सूत्र में इसे इति तिस्रः कहकर तृच माना है।

४. ७।७३।७,८ ऋ० १।१६४।२६,२७ में स्वल्प भेद से हैं वहां ऋषि दीर्घतमा है। ७३।९ ऋ० ५।४।५ वहां ऋषि वसुश्रुत आत्रेय है। ७३।१० ऋ० ५।२८।३ में है। वहां ऋषि 'विश्ववारात्रेयी' है। ७३।११ ऋ० १।१६४।४० में है। वहां ऋषि दीर्घतमा ह।

४ 'यद्दुस्त्रियासु', ६ 'उप द्रव पयसा' इति जगत्यः। २ 'समिद्धो अग्निरश्विना' इति पथ्याबृहतीति[1] ॥६॥

७।७४।१ 'अपचितां लोहिनीनाम्' इति चतुर्ऋचमथर्वांगिरा मन्त्रोक्तदेवत्यमुतजातवेदसमानुष्टुभम् ॥

७।७५। [2]१ 'प्रजावतीः' इति द्वयृचमुपरिबभ्रव आघ्न्यं त्रैष्टुभम्। २ 'पदज्ञा' इति त्र्यवसाना [3]पंचपदा भुरिक्पथ्यापंक्तिरनेनाघ्न्यास्तुतिः ॥

७।७६।[4] १ 'आ सुस्रसः' इति चतुर्ऋचमथर्वापचिद्भैषज्यदेवत्यमानुष्टुभमाद्या विराट्। २ 'या ग्रैव्या' इति परोष्णिक् ॥

७।७६।[5] ५ 'विद्म वै' इति द्वयृचं जायान्यैन्द्र [7]दैवतं त्रैष्टुभम्। [8]पूर्वा भुरिग्नुष्टुप् ॥

७।७७। [9]१ 'सांतपना इदम्' इति तृचमंगिरा मन्त्रोक्तमरुद्

---

१. बी. के विना 'इति' अन्य मूल लेखों में नहीं।

२. ७।७५।१ ऋ० ६।२८।७ में स्वल्प भेद से आया है, वहां ऋषि 'भरद्वाजो बार्हस्पत्यः' है।

३. क. ग. में पंचपदा नहीं।

४. यहां यह चतुर्ऋच है। पटलिका में इसे कहीं भी चतुर्ऋचों में नहीं गिना। प्रकाशित मूल संहिताओं में यह सूक्त षड्च है। प्रकाशकों ने पटलिका के आधार से ही ऐसा किया प्रतीत होता है। पटलिका में षडृचों के गण में इसे नहीं गिना, क्योंकि द्वितीय पटलान्त में इसे फिर उद्वृत करना था। ७।७६।६ ऋ० ६।४७।६ में आया है। वहां ऋषि गर्ग है।

५. पटलिका में यह सूक्त भिन्न नहीं, अनुक्रमणी में यह भिन्न द्वयृच सूक्त माना है।

६. सा० भा० भूमिका के पृ० १८ पर शं० पा० ने यहां पाठ जायन्यः। ऐन्द्र देवतम्, दिया है।

७. बी. देवत्यं है।

८. शं० पा० भूमि० पृ० १८ में यह पाठ नहीं है।

९. ७।७७।१ ऋ० ७।५६।६, १० में स्वल्प भेद से आता है।

देवताकम्। पूर्वा त्रिपाद्गायत्री। २ 'यो नः' इति त्रिष्टुप्। ३ 'संवत्सरीणा' इति जगती ॥

७।७८।१ 'वि ते मुञ्चामि' इति द्वयृचमाग्नेयमथर्वा प्रथमा परोष्णिक्, परा त्रिष्टुबित्यनेनाग्निं प्रार्थयतीति[1] ॥१०॥

७।७९।१ 'यत् ते देवा' इति चतुर्ऋचमथर्वामावास्या-देवताकं त्रैष्टुभम्। प्रथमा जगत्यनेन मन्त्रोक्तां देवतामिति ॥

७।८०।१ 'पूर्णा पश्चात्' इति चतुर्ऋचं पौर्णमासम्। [2]३ 'प्रजापते न' इति प्राजापत्यं त्रैष्टुभम्। २ 'वृषभं वाजिनम्' इत्यनुष्टुबनेन मन्त्रोक्तां देवतां चेति ॥

७।८१।[3] १ 'पूर्वापरम्' इति षड्ऋचं सावित्रीसूर्य्यचान्द्रमसं त्रैष्टुभम्। ३ 'सोमस्यांशः' इत्यानुष्टुभम्। ४ 'दर्शोसि' इति द्वे आस्तारपंक्ती। द्वितीया सम्राडनेन मन्त्रोक्तं चन्द्रमसं देवमभि-ष्टूयाप्रार्थयदिति ॥११॥

७।८२। [4]१ 'अभ्यर्चत' इति षड्ऋचं संपत्कामः शौनकआग्नेयं त्रैष्टुभम्। २ 'मय्यग्रे' इति ककुम्मतीबृहती। ३ 'इहैव' इति जगती मन्त्रोक्तां देवतामभ्यस्तौत् ॥

७।८३।१ 'अप्सु ते राजन्' इति चतुर्ऋचं शुनःशेपोवारुण-मानुष्टुभम्। २ 'धाम्नो धाम्नः' इति पथ्यापंक्तिः। [5]३ 'उदुत्त-मम्' इति द्वे त्रिष्टुभौ। तत्र द्वितीया बृहतीगर्भा ॥

---

१. क. ग. ङ, 'इति' नहीं।

२. ७।८०।३ ऋ० १०।१२१।१० में आया है। ऋषि 'हिरण्यगर्भः प्राजा-पत्यः' है।

३. ७।८१।१,२ ऋ० १०।८५।१८,१९ में आये हैं। ऋषि सूर्या सावित्री है।

४. ७।८२।१ ऋ० ४।५८।१० में स्वल्प भेद से है, ऋषि वामदेव है।

५. ७।८३।३ ऋ० १।२४।१५ में आया है। 'शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः। ७।८३।४ पूर्व अथर्व ६।१२१।१ में भी आया है।

७।८४।[1] १ 'अनाधृष्यो जातवेदाः' इति तृचं भृगुरैन्द्रं त्रैष्टुभम् । प्रथमाग्नेयी जगतीति ॥

७।८५।१ 'त्यमू षु' इति ताक्ष्यंदेवत्यं त्रैष्टुभम् ॥

७।८६।[2] १ 'त्रातारमिन्द्रम्' इत्यैन्द्रं त्रैष्टुभमुभे स्वस्त्ययनकामोऽथर्वा ॥

७।८७।१ 'यो अग्नौ रुद्रः' इत्यथर्वा रौद्रं जागतम् ॥

७।८८।१ 'अपेहि' इति तक्षकदेवत्यं गरुत्मान् त्र्यवसाना बृहतीति ॥

७।८९।१ 'अपो दिव्या' इति चतुर्ऋचमाग्नेयमानुष्टुभं सिन्धुद्वीपः । ४ 'एधोसि' इति त्रिपात्निचृत्परोष्णिक् ॥

७।९०। [3]१ 'अपि वृश्च' इति तृचमंगिरा मन्त्रोक्तदेवत्यमाद्या गायत्री । २ 'वयं तत्' इति विराट् पुरस्ताद्बृहती । ३ 'यथा शेपः' इति त्र्यवसाना षट्पदा भुरिग्जगतीति ॥१२॥

७।९१। [4]१ 'इन्द्रः सुत्रामा' इत्यथर्वा चान्द्रमसं त्रैष्टुभम् ॥

७।९२। [5]१ 'स सुत्रामा' इति च प्रागुक्तर्षिच्छन्दोदेवत्यम् ॥

७।९३।१ 'इन्द्रेण मन्युना' इति भृग्वंगिरा ऐन्द्रं गायत्रम् ॥

७।९४। [6]१ 'ध्रुवं ध्रुवेण' इत्यथर्वा सौम्यमानुष्टुभम् ॥

---

१. ७।८४।२ ऋ० १०।१८०।३, २ में है ऋषि 'जयः' है।

२. ७।८६।१ ऋ० ६।४७।११ में है, गर्ग ऋषि है।

३. ७।९०।१, २ । ऋ० ८।४०।६ में आये हैं।

४ ७।९१।१ ऋ० १०।१३१।६ में ऋषि सुकीर्त्तिः काक्षीवत है।

५. ७।९२।१ ऋ० ६।४७।१३ तथा १०।१३१।७ में आया है ऋषि दोनों स्थलों में वत् है।

६. ७।९४।१ ऋ० १०।१७३।६ में है, ऋषि ध्रुवः है।

७।९५।१ 'उदस्यश्यावौ' इति तृचम् ॥

७।९६।१ 'असदन् गाव' इति [1]प्रागुक्तमुभे कपिञ्जलः पूर्वं मन्त्रोक्तगृध्रदेवत्यमुत्तरं वायसमुभे आनुष्टुभे । ९५।२ 'अहमेनौ' इति द्वे भुरिजौ ॥

७।९७।[2] १ 'यदद्य त्वा' इति सूक्तमष्टर्चमथर्वा मन्त्रोक्तैन्द्राग्नं त्रैष्टुभमनेन यज्ञसम्पूर्णकामो यज्ञे पतिमिष्ट्वाप्रार्थयत् । ५ 'यज्ञ यज्ञम्' इति त्रिपदार्षी भुरिग्गायत्री । ६ 'एष ते यज्ञः' इति त्रिपात्प्राजापत्याबृहती । ७ 'वषड्हुतेभ्यः' इति त्रिपदा साम्नीभुरिग्जगती । ८ 'मनसस्पते' इत्युपरिष्टाद्बृहती ॥

७।९८।१ 'सं बर्हिः' इति ॥

७।९९।१ 'परि स्तृणीहि' इति द्वे मन्त्रोक्तदैवते त्रैष्टुभे । पूर्वा विराडुत्तरा भुरिक् ॥

७।१००।१ 'पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात्' इति द्वे यमो दुःष्वप्ननाशनदेवत्ये आनुष्टुभे ॥

७।१०२।१ 'नमस्कृत्य' इति प्रजापतिर्मन्त्रोक्तं नानादेवत्यं विराट्पुरस्ताद्बृहतीति ॥१३॥

७।१०३।१ 'को अस्या नः' ॥

७।१०४।१ 'कः पृश्निम्' इति द्वे ब्रह्मात्मदैवते त्रैष्टुभे ॥

७।१०५।१ 'अपक्रामन्' इत्यथर्वा मन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभम् ॥

७।१०६।१ 'यदस्मृति' इति मन्त्रोक्तदैवतमुतजातवेदसं परार्द्धं वारुणं बृहतीगर्भा त्रिष्टुप् ॥

---

१. ह्वि० ने 'प्राकृतम्' कल्पित किया है।

२. ७।९७।२ ऋ० ५।४२।४ में अल्पभेद से आया है, ऋषि अत्रि है।

७।१०७।१ 'अव दिवः' इति भृगुःसौर्य्यमुताब्दैवतमानुष्टुभम् ॥

७।१०८।१ 'यो नस्तायत्' इति द्वयृचमाग्नेयं त्रैष्टुभम् । पूर्वा बृहतीगर्भेति ॥

७।१०९।१ 'इदमुग्राय' इति सप्तर्चं बादरायणिराग्नेयमुत मन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभं । १ 'इदमुग्राय' इति विराट्पुरस्ताद्-बृहती । २ 'घृतमप्सराभ्यः, ३ 'अप्सरसः, ५ 'यो नो द्युवे, ६ 'सं वसवः' इति त्रिष्टुभः ॥

७।११०।१ 'अग्न इन्द्रः' इति तृचं भृगुरैन्द्राग्नम् । पूर्वा गायत्री । २ 'याभ्यामजयन्' इति त्रिष्टुप् । ३ 'उप त्वा देवः' इत्यनुष्टुप् ॥

७।१११।१ 'इन्द्रस्य कुक्षिरसि' इति ब्रह्मा वार्षभं परा-बृहतीत्रिष्टुप् ॥

७।११२[1] १ 'शुम्भनी' इति द्वयृचं मन्त्रोक्तमाब्दैवतम् । वरुणमानुष्टुभम् । पूर्वा भुरि[2]गिति ॥१४॥

७।११३।१ 'तृष्टके' इति द्वयृचं भार्गवः । तृष्टिकादेवत्य-माद्याविराडनुष्टुप् । परा शङ्कुमती चतुष्पदा भुरिगुष्णिक् ॥

७।११४।१ 'आ ते ददे' इति द्वयृचमग्नीषोमीयमानुष्टुभम् ॥

७।११५।१ 'प्र पतेतः' इति चतुर्ऋचमथर्वाङ्गिराः सावित्रं जातवेदसमानुष्टुभमनेन पापामन्यायागतां लक्ष्मीं निन्दयित्वा, न्यायागतां पुण्यामभिष्टूय मन्त्रोक्तां देवतामप्रार्थयत् । २ 'या मा लक्ष्मीः' इति द्वे त्रैष्टुभौ ॥

---

१. ७।११२।२ ऋ० १०।९७।१६ में है ऋषि 'भिषगाथर्वणः' है । देवता ओषधीः स्तुति है अथर्व ६।९६।२ में भी यह मन्त्र आया है ।

२. क. ग. ङ. इति नहीं ।

७।११६। [1] १ 'नमो रूराय' इति द्वयृचं चान्द्रम[2]सम् । आद्या परोष्णिक् । २ 'यो अन्येद्युः' इत्येकावसाना द्विपदाचर्यनुष्टुप् ॥

७।११७। [3] १ 'आ मन्द्रैः' इत्यैन्द्रं, पथ्याबृहती ॥

७।११८।१ 'मर्माणि ते' इति बहुदेवत्यमुतचान्द्रमसं त्रैष्टुभमिति ॥१५॥

इति ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां पञ्चमः पटलः समाप्तः ॥



१. ७।११६।१ ऋ० ३।४५।१ में आया है, ऋषि विश्वामित्र है ।

२. क. ग. चान्द्रमस्यम् ।

३. ७।११७।१ ऋ० ६।७५।१८ में है, 'पायुर्भारद्वाज' है ।

†अथाष्टमं काण्डम्

[1]ॐ नमो ब्रह्मवेदाय । ॐ अथेयं प्राग्रापरमे [2]त्यपरंकृषतनु-क्रमेणेत्यनुसंधत्ताभिधेयेनाविष्कृताथर्वमन्त्रर्षिछन्दोदैवतानुक्रान्ति-स्तां गुर्वनुज्ञातो योऽधीतेऽध्यापयति च, स मन्त्रपाठफलं सम्यग-श्नुते । तेन विनियुक्ता मन्त्राश्च सवीर्या भवन्ति । देहान्ते ब्रह्म-लोकमनुभूय किंचित्कालं तदन्विह द्विजोत्तमकुलेऽवतीर्य परम[3]-तुलं सुखं भुङ्क्ते । यः पुनरेतां छद्मनादत्तेग्राहयति वा ततः पठति पाठयति च, स गतायुरिहाप्रतिष्ठो दण्डयश्च भवति । मृतोऽन्ध तामि[4]स्रं, नीचैर्गमनं यावदक्षरं कालमनुभूयेमं पुनर्मृ-त्युलोकं प्राप्योलूकत्वमश्नुते । किंचित्कालं पुनर्मृतोऽपि तमेव नरकमनुभूयेमं पुनरिहावतीर्य द्विजकुले विद्याभ्यासवशाद्गुरुध्रुग्-जन्मान्धोऽवश्यं भवतीति । निश्चितोऽभिभवेदिति यथोक्तप्रकाश-स्य चोभयथा नूनमक्षय्यं सुकृतं भवेदिति ॥

अथ क्षुद्रकाण्डार्थसूक्तमन्त्राणामृषिदैवतछन्दांस्युच्यन्ते । ततो यावदेकादश काण्डान्तमर्थसूक्तप्रकृतिस्तावद्विहाय पर्यायान्वि-राड्वाप्रभृतीनिति तत्र ॥

८।१।१ 'अन्तकाय मृत्यवे' ।

८।२।१ 'आरभस्व' इति द्वे ब्रह्माण्यायुष्ये त्रैष्टुभे अपश्य-दिति । सर्वत्रानुक्तेऽपि शेषोऽनुवर्तते । या यद्देवत्येति चाद्यस्याद्या पुरोबृहती त्रिष्टुप् ॥

---

†. यह लेख हमारा है ।

१ गु० श्री गणेशाय नमः । क. में यहां कुछ नहीं ।

२. ङ. 'अपरं कृषनु' ठीक पाठ पढ़ा नहीं जाता ।

३. ङ. 'कुलं' ।　४. क. ङ. 'तामिश्र' ।

८।१।२ 'उदेनम्' इति द्वे, १७ 'उत् त्वा द्यौः' इति पञ्चानुष्टुभः । ४ 'उत् क्रामातः पुरुष', ६ 'श्यामश्च [1]त्वा', १५ 'जीवेभ्यस्त्वा' इति द्वे प्रस्तारपंक्तयः । ७ 'मा ते मनः' इति त्रिपाद्विराड्गायत्री । ८ 'मा गतानाम्' इति विराट्पथ्याबृहती । १२ 'मा त्वा क्रव्यात्' इति त्र्यवसाना पञ्चपदा जगती । १३ 'बोधश्च त्वा' इति त्रिपाद्भुरिङ्महाबृहती । १४ 'ते त्वा रक्षन्तु' इत्येकावसाना द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती । इदमेकविंशकमिहाद्यमुच्यत इति ॥१॥

८।२।१ 'आ रभस्व' इति द्वे, ७ 'अधिब्रूहि' इति भुरिजः । ३ 'वातात्ते' इत्यास्तारपंक्तिः । ४ 'प्राणेन त्वा' इति प्रस्तारपंक्तिः । ६ 'जीवलां [2]नघा' इति पथ्यापंक्तिः । ८ 'अस्मै मृत्यो' इति पुरस्ताज्ज्योतिष्मती जगती । ९ 'देवानां हेतिः' इति पञ्चपदाजगती । ११ 'कृणोमि ते' इति विष्टारपंक्तिः । १२ 'आरादरातिम्' इति पुरस्ताद्बृहती । १४ 'शिवे ते स्ताम्' इति त्र्यवसाना षट्पदा जगती । १५ 'शिवास्ते' इति पथ्यापंक्तिः । १९ 'यदश्नासि' इत्युपरिष्टाद्बृहती । २१ 'शतं ते' इति सतःपंक्तिः । २२ 'शरदे त्वा', २८ 'अग्नेः शरीरम्' इति पुरस्ताद्बृहत्यौ । ५ 'अयं जीवतु', १० 'यत्ते नियानम्', १६ 'यत्ते वासः' इति तिस्रः, २० 'अन्हे च त्वा' इति, २३ 'मृत्युरीशे' इति तिस्रः, २७ 'ये मृत्यवः' इति चैता अनुष्टुभस्तत्र १७ 'यत् क्षुरेण' इति त्रिपादिदमाद्यं विंशसहितमष्टर्चो परा इति ॥२॥

८।३। [3]१ 'रक्षोहणम्' ॥

---

१. बी. 'त्वा' नहीं ।

२. बी. 'नघारिषामिति' ।

३. ८।३।१ ऋ० १०।८७।१ में है, ऋषि पायुः है ।

८।४।[1] १ 'इन्द्रासोमा' इति द्वे [2]अनुवाकौ चातनः । पूर्वं षड्विंशमाग्नेयमुत्तरं पञ्चर्चविंशकं मन्त्रोक्तदेवत्यम् । जागतमाद्यं त्रैष्टुभम् ॥

८।३।[3] ७ 'उतारब्धान्', १४ 'पराद्य देवाः' इति द्वे, [4]१७ 'संवत्सरीणं पयः', २१ 'तदग्ने', १२ 'यदग्ने' इति भुरिजः । २५ 'ये ते शृङ्गे' इति पञ्चपदा बृहतीगर्भाजगती । २२ 'परि त्वा अग्ने' इति द्वे अनुष्टुभौ । [5]२६ 'अग्नो रक्षांसि' इति गायत्री ॥

८।४।८ 'यो मा पाकेन' इति सप्त, १६ 'यो मायातुम्' इति द्वे, १९ 'प्र वर्तय दिवः', २२ 'उलूकयातुम्', २४ 'इन्द्र जहि' इति त्रिष्टुभः । २० 'एत उ त्ये', २३ 'मा नो रक्षः' इति भुरिजौ । २५ 'प्रति चक्ष्व' इत्यनुष्टुबिति[6] ॥३॥

८।५।१ 'अयं प्रतिसरः' इति द्वाविंशं शुक्रः कृत्यादूषणदेवत्यमुत मन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभमाद्योपरिष्टाद्बृहती । द्वितीया त्रिपाद्विराडगायत्री । ३ 'अनेनेन्द्रः' इति चतुष्पाद्भुरिग्जगती । ५ 'तदग्निः' इति संस्तारपंक्तिः भुरिक् । ६ अन्तदंघ्रे' इत्युपरिष्टाद्बृहती । ७ 'ये स्राक्त्यम्' इति द्वे ककुम्मत्यौ । ९ 'याः कृत्याः' इति पुरस्कृतिर्जगती । १० 'अस्मै मणिम्' इति त्रिष्टुप् । ११ 'उत्तमो असि' इति पथ्यापंक्तिः । १४ 'कश्यपस्त्वा' इति

१. ८।४ समग्रसूक्त ऋग्वेद ७।१०४ सूक्त है वहां ऋषि वसिष्ठ है ।

२. क. अनुवाकौ, ङ. बी. अनुवाकं, घ० अनुवाव ।

३. ८।३।२४ ऋ० ५।२।९ में है ऋषि कुमार आत्रेयो वंगो वा जार उभौ वा ।

४. ८।३।१७ ऋ० १०।८७।१७ में है, ऋषि पायु है ।

५. ८।३।२६ ऋ० ७।१५।१० में है, ऋषि वसिष्ठ है ।

६. क. ङ. इति नहीं ।

त्र्यवसाना षट्पदा जगती । १५ 'यस्त्वा कृत्याभिः' इति पुरस्ताद् बृहती । १६ 'एन्द्राग्नं वर्म' इति जगतीगर्भा त्रिष्टुप् । २० 'आ मा रुक्षत्' इति विराड्गर्भा[1]स्तारपंक्तिः । २१ 'अस्मिन्निन्द्रः' इति परा विराट्त्रिष्टुप् । २२ 'स्वस्तिदा विशाम्' इति त्र्यवसाना सप्तपदा विराड्गर्भा भुरिक् शक्वरी[2]ति ॥४॥

८।६।१ 'यौ ते माता' इति षड्विंशं मातृनामा ऋषिर्मातृनामादेवत्यमुत मन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभम् । ब्रह्मानेन गर्भरक्षणार्थञ्चास्तौत् । २ 'पलालानुपलालौ' इति पुरस्ताद्बृहती । १० 'ये शालाः' इति त्र्यवसाना षट्पदाजगती । ११ 'ये कुकुन्धाः' इति द्वे, १४ 'ये पूर्वे', १६ 'पर्यस्ताक्षाः' इति पथ्यापंक्तयः । १५ 'येषां पश्चात्' इति त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी ब्राह्मणस्पत्या । १७ 'उद्धर्षिणम्' इति तथा जगतीति ॥

८।७।१ 'या बभ्रवः' इत्य[3]ष्टाविंशकमथर्वा भैषज्यायुष्यमुत मन्त्रोक्तोषधिदेवताकमानुष्टुभम् । २ 'त्रायन्तामिमं' इत्युपरिष्टाद्भुरिग्बृहती । ३ 'आपो अग्रम्' इति पुरउष्णिक् । ४ 'प्रस्तृणती' इति पंचपदा परानुष्टुबतिजगती । ५ 'यद् वः सहः' इति द्वे पथ्यापंक्ती द्वितीया विराड्गर्भा भुरिक् । ६ 'अवकोल्बा' इति द्विपदार्चीभुरिगनुष्टुप् । १० 'उन्मुञ्चन्तीः' इति पथ्यापंक्तिः । १२ 'मधुमन्मूलम्' इति पंचपदा विराडतिशक्वरी[4]ति ॥५॥

१४ 'वैयाघ्रो मणिः' इत्युपरिष्टान्निचृद्बृहती । २५ 'याव-

१. बी. प्रस्तारपंक्तिः । ह्विटने ने भी प्रस्तारपंक्तिः ही लिखा है। परन्तु टिप्पणि में बर्लिन मूल लेख से उसने भी आस्तारपंक्तिः पाठ उचित माना है।

२. क. बी. में इति है ङ. में नहीं।

३. बी. इति साष्टा विंशकम् ।

४. ङ. इति नहीं ।

तीनामोषधीनाम्' इति पथ्यापंक्तिः । २६ 'यावतीषु मनुष्याः' इति निचृत् । २८ उत् त्वाहार्षम्' इति भुरिक् ॥

८।८।१ 'इन्द्रो मन्थतु' इति चतुर्विशं भृग्वंगिरा ऐन्द्रमुत-वानस्पत्यं परं सेनाहननमानुष्टुभम् । २ पूतिरज्जुः' इति द्वे बृहत्यौ । पूर्वोपरिष्टाद् द्वितीया विराट् । ४ 'पुरुषानमून् इति बृहतीपुरस्तात् प्रस्तारपंक्तिः । ६ 'बृहद्धि जालम्' इत्यास्तार-पंक्तिः । ७ 'बृहत् ते' इति विपरीतपादलक्ष्मा चतुष्पदाति-जगतीति । ८ 'अयं लोकः' इति तिस्त्र उपरिष्टाद्बृहत्यः । ११ 'नयतामून्' इति पथ्याबृहती । परा भुरिक् । १९ 'परा जिताः' इति द्वे पुरस्ताद्बृहत्यौ । पूर्वा विराडुत्तरानिचृत् । २१ 'सं क्रोशताम्' इति त्रिष्टुप् । २२ 'दिशश्चतस्त्रः' इति चतु-ष्पदा शक्वरी । २३ 'संवत्सरो रथः' इत्युपरिष्टाद्बृहती । २४ 'इतो जयेतः' इति त्र्यवसाना त्रिष्टुबुष्णिग्गर्भा परा शक्वरी पञ्चपदा जगतीति[1] ॥६॥

८।९।१ 'कुतस्तौ' इति षड्विंशमथर्वा काश्यपेयमुत सर्वार्षं-छान्दसं त्रैष्टुभम् । २ 'यो अक्रन्दयत्' इति द्वे पंक्ती । द्वितीया-स्तारपंक्तिः । ४ 'बृहतः परि' इति द्वे अनुष्टुभौ । ८ 'यां प्रच्यु-ताम्' इति[2], ११ 'इयमेव' इति जगत्यौ । ९ 'अप्राणैति' इति भुरिक् । १२ 'छन्दःपक्षे उषसा', २२ 'इत्थं श्रेयः' इति जगत्यौ । १४ 'अग्नीषोमावदधुः' इति चतुष्पदातिजगती । २३ 'अष्टेन्द्रस्य' २५ 'को नु गौः' इति द्वे अनुष्टुभ इति[3] ॥७॥

८।१०। पर्याय १ ।

८।१०।१ विराड्वा' प्रभृतिर्वस्योभूयायां तांस्त्रयस्त्रिशत्सप्त-

---

१. ङ. इति नहीं ।
२. ङ. इति नहीं ।
३. क. ङ इति नहीं तथा अन्य लेखों में पाठ 'भाविति' हैं ।

शतं पर्यायमन्त्रानथर्वाचार्योऽपश्यत् । [3]तत्र १ 'विराड्वा' इति षट् पर्याया विराड्देवत्यास्तत्राद्यं त्रयोदशकम् । प्रथमा त्रिपदार्चीपंक्तिः । २ 'सोदक्रामत्' इति षड्याजुषीजगत्यः । ३ 'गृहमेधी', ६ 'यन्त्यस्य सभाम्' इति साम्न्यनुष्टुभौ । ५ 'यन्त्यस्य देवाः' आर्च्यनुष्टुप् । ७ 'यज्ञर्तो', १३ 'यन्त्यस्यामन्त्रणं', विराड्गायत्र्यौ । ११ 'यन्त्यस्य समितिम्' इति साम्नीबृहतीति ॥८॥

८।१०। पर्य्याय २ ।

[2]१ 'सान्तरिक्षे' इति दशकमाद्या त्रिपदा ९ 'ओषधीरेवास्मै' इति साम्न्यनुष्टुभौ । २ 'तां देवमनुष्याः' उष्णिग्गर्भा चतुष्पदो परिष्टाद्विराड्बृहती । ३ 'तामुप' इत्येकपदा याजुषीगायत्री । ४ 'ऊर्ज एहि', एकपदा, ७ 'ओषधीरेव' इति साम्नां पंक्ती । ५ 'तस्या इन्द्रः' विराड्गायत्रो । ६ 'बृहच्च रथन्तरं च' आर्च्यनुष्टुप् । ८ 'अपो वामदेव्येन' आसुरी गायत्री । १० 'अपो वामदेव्यम्' साम्नांबृहतीति ॥९॥

८।१०। पर्य्याय ३ ।

१ 'सा वनस्पतीन्' इत्यष्टौ । प्रथमा चतुष्पदा विराडनुष्टुप् । २ 'तस्माद् वनस्पतीनाम्' आर्चीत्रिष्टुप् । ३ 'सा पितॄन्' इति तिस्रः चतुष्पादः प्राजापत्याः पंक्तयः । ४ 'तस्मात् पितृभ्यः', ६ 'देवेभ्यः', ८ 'मनुष्येभ्यः' इति तिस्र आर्चीबृहत्यः ॥

---

१. शंकरपाण्डुरङ्ग ने भी सर्वानुक्रमणिका के आधार से सायण भाष्य में इस काण्ड के १५ सूक्त बनाये हैं परन्तु औरों ने इसके सूक्त १० स्वीकार करके शेषों को पर्य्याय रूप से इसके अन्तर्गत ही दिया है। हमने भी पर्य्याय सूक्तान्तंगत ही रखा है।

२. इस प्रकार का प्रतीकोद्धरण क्रम अथर्व में जो है वह विस्तार रूप से पंचपटलिका १।१ में देखो।

३. शं. पा० ने सायणभाष्य भू० पृ० १६ में पंक्तिः पाठ दिया है।

८।१०। प० ४ ।

[1] १ 'सासुरान्' इति द्वे षोडशके । तत्राद्या ५ 'सापितृन्' । ५।१ 'सा देवान्', ५।१३ 'सा सर्पान्' इति चतुष्पादः साम्नांजगत्यः । २ 'तस्या विरोचनाः', ६ 'यमः', १० 'मनुः', ५।१० 'कुबेरः', ५।१४ 'तक्षकः' इति साम्नां बृहत्यः । ५।१ 'तां देवाः', ३ 'तां द्विमूर्धा' इति साम्न्युष्णिहौ । ४ 'तां मायाम्', ८ 'स्वधाम्', ५।४ 'ऊर्जाम्', ५।१६ 'तद्विषम्' इत्यार्च्यनु[2]ष्टुभः । ७ 'तामन्तकः' आसुरी गायत्री । ९ 'सा मनुष्यान्', १३ 'सा सप्तर्षीन्', ५।९ 'सेतरजनान्' इति चतुष्पाद उष्णिहः । ११ 'तां पृथी' प्राजापत्यानुष्टुप् । १२ 'ते कृषिं', १६ 'तद् ब्रह्म', ५।८ 'तं पुण्यम्' इत्यार्च्यौ त्रिष्टुभः । १४ 'तस्याः सोमः', ५।२ 'इन्द्रः' इति साम्न्युष्णिहौ । १५ 'तां बृहस्पतिः', ५।७ 'वसुरुचिः' ५।११ 'रजतनाभिः' इति विराड्गायत्र्यः ॥१०॥

५ 'सा गन्धर्वाप्सरसः' इति चतुष्पदा प्राजापत्या जगती । ६ 'तस्याश्चित्र रथः' साम्नां बृहती त्रिष्टुप् । १२ 'तां विरोधाम्' त्रिपदा ब्राह्मीभुरिग्गायत्री । १५ 'तां धृतराष्ट्रः' साम्न्यनुष्टुबिति ।

८।१०। प० ६ ।

१ 'तद् यस्मा' इति चतुष्कमाद्याविराड्गायत्री । २ 'न च' इति साम्नां त्रिष्टुप् । ३ 'यत् प्रत्याहन्ति' इति प्राजापत्यानुष्टुप् । ४ 'तां विषमेव' इत्यार्च्युष्णिक् । इहानुक्तपादा द्विपदा इति ॥११॥ 

---

१. इस में ४ तथा ५ पर्यायों के उदाहरण हैं । ४ के उदाहरणों में केवल मन्त्र संख्या चिह्न ही दे दिया है और पञ्चम का (५) अंक देकर मन्त्र संख्या दी है ।

२. ढ. बी. अनुष्टुप् ।

३. क. में यह पर्याय छूट गया है ।

†अथ नवमं काण्डम्

६।१।१ 'दिवस्पृथिव्याः' इति चतुर्विंशर्चमथर्वा । मधुदेवत्यमाश्विनं त्रैष्टुभम् । द्वितीया त्रिष्टुब्गर्भापंक्तिः । ३ 'पश्यन्त्यस्याः' इति परानुष्टुप् । ६ 'कस्तम्', ७ 'स तौ' इति यवमध्ये महाबृहत्यौ । पूर्वातिशाक्वरगर्भोत्तरातिजागतगर्भा । ८ 'हिङ्करिक्रतो' इति बृहतीगर्भा संस्तारपंक्तिः । १० 'स्तनयित्नुस्ते' इति परोष्णिक्पंक्तिः । ११ 'यथा सोमः प्रातःसवने' इति तिस्रः, [1]१५ 'सं माग्ने' इति द्वे, १८ 'यद्गिरिषु' इति द्वे अनुष्टुभः । १४ 'मधु जनिषीय' इति पुर उष्णिक् । १७ 'यथा मक्षा' इत्युपरिष्टाद्विराड्बृहती । २० 'स्तनयित्नुस्ते' इति भुरिग्विष्टारपंक्तिः । २१ 'पृथिवी दण्डः' इत्येकावसाना द्विपदार्च्यनुष्टुप् । २२ 'यौ वै कशायाः' इति त्रिपदा ब्राह्मी पुरउष्णिक् । २३ 'मधुमान् भवति' इति द्विपदार्चीपंक्तिः । २४ 'यद् वीध्रे' इति त्र्यवसाना षट्पदाष्टिरिति ॥१२॥

६।२।१ 'सपत्नहनम्' इति पंचविंशकं कामदेवत्यं त्रैष्टुभम् । ५ 'सा ते काम' इत्यतिजगती । ७ 'अध्यक्षः' इति जगती । ८ 'इदमाज्यम्' इति [2]त्रिपदार्चीपंक्तिः । ११ 'अवधीत् कामः' इति भुरिक् । [3]१२ 'तेऽधराञ्चः' इत्यनुष्टुप् । १३ 'अग्निर्यवः' इति द्विपदार्च्यनुष्टुप् । १४ 'असर्ववीरः' इति द्वे, १७ 'येन देवाः' इति द्वे, २१ 'यावतीर्दिशः' इति द्वे जगत्यः । २० 'यावती द्यावापृथिवी', २३ 'ज्यायान्' इति भुरिजौ । १६ 'यत् ते काम' इति चतुष्पदा शक्वरीगर्भा परा जगतीति ॥१३॥

---

†. यह लेख हमारा है ।

१. ६।१।१५ ऋ० १।२३।२४ में है, ऋषि 'मेधातिथि काण्व' है ।

२. हि० द्विपदा लिखा है । ३. ६।२।१२ अथर्व ३।६।७ में आ चुका है ।

६।३।१ 'उपमिताम्' इति चैकत्रिंशत्कम्, भृग्वंगिराः शाला-देवत्यमानुष्टुभम्। ६ 'यानि ते' इति पथ्यापंक्तिः। ७ 'हविर्धा-नम्' इति परोष्णिक्। १५ 'अन्तरा द्याम्' इति त्र्यवसाना पञ्चपदातिशक्वरी। १७ 'तृणैरावृता' इति प्रस्तारपंक्तिः। २१ 'या द्विपक्षा' इत्यास्तारपंक्तिः। २५ 'प्राच्या दिशः' [1]३१ 'दिशोदिशः' इति त्रिपादौ प्राजापत्या बृहत्यौ। २६ 'दक्षि-णाया दिशः' इति साम्नां त्रिष्टुप्। २७ 'प्रतीच्याः', २८ 'उदी-च्याः' २९ 'ध्रुवायाः', ३० 'ऊर्ध्वायाः', प्रतिष्ठा नाम गायत्र्य-स्त्रिपाद एताः सप्तैकावसाना इति ॥१४॥

६।४।१ 'साहस्रस्त्वेषः' इति चतुर्विंशकं ब्रह्मार्षभं त्रैष्टुभम्। ८ 'इन्द्रस्यौजः' इति भुरिक्। ९ 'सोमेन पूर्णम्', १० 'बृहस्पतिः सविता' इति जगत्यौ। ११'य इन्द्र [2]इव' इति सप्त, १९'ब्राह्म-णेभ्य ऋषभम्' इति द्वे, [3]२३ 'उपेहोपपर्चन' इत्यनुष्टुभः। १८ 'शत याजम्' इत्युपरिष्टाद्बृहती। २१ 'अयं पिपानः' इत्यास्तारपंक्तिः। २४ एतं वो युवानम्' इति जगती॥

६।५।१ 'आ नय' इत्यष्टात्रिंशद्भृगुर्मन्त्रोक्ताजं पंचौदन-देवत्यं त्रैष्टुभम्। ३ 'प्रपदः' इति चतुष्पात् पुरोऽतिशक्वरी जगती। ४'अनु च्छ्य श्यामेन', १० 'अजस्त्रिनाके' इति जगत्या-विति[4] ॥१५॥

६।५।१४ 'अमोतम्', १७ 'येना सहस्रम्', २७ 'या पूर्वम्'

---

१. बी. यहां कुछ पाठ छूटा हुआ है।

२. बी. इव देवेष्विति।

३. ६।४।२३ ऋ० ६।२८।८ में बहु पाठ भेद से है।

४. ङ. इति नहीं।

इति [1]तिस्रोऽनुष्टुभः । ३० 'आत्मानं पितरम्' इति ककुम्मती । २३ 'नास्यास्थीनि' इति पुर उष्णिक् । १६ 'अजोसि' इति त्रिपादनुष्टुप् । १८ 'अजः पक्वः' इति [2]त्रिपाद्विराड्गायत्री । २४ 'इदमिदमेव' इति पञ्चपदानुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्बार्हता विराड्जगती । २० 'अजो वा इदमग्रे' इति तिस्रः' २६ 'पञ्च रुक्मा' इति पञ्चपदानुष्टुबुष्णिग्गर्भोपरिष्टाद्बार्हता भुरिजः[3] । ३१ 'यो वै नैदाघम्' इति सप्तपदाष्टिः । ३२ 'यो वै कुर्वन्तम्' इति चतस्रो दशपदाः प्रकृतयः । ३६ 'यो वा अभिभुवम्' इति दशपदाकृतिः । ३७ 'अजं च पचत' इति त्रिपाद्विराड्गायत्री । ३८'तास्ते रक्षन्तु' इत्येकावसाना द्विपदा साम्नांत्रिष्टुबिति ॥१६॥

९।६। प० १ ।

९।६।१ 'यो विद्यात्' इति षट् पर्य्याया ब्रह्मातिथ्या उत विद्यादेवत्यास्तत्र १ 'यो विद्यात्' [4]सप्तदश पूर्वाद्या नागीनाम-त्रिपाद्गायत्री । २ 'सामानि यस्य' त्रिपदार्षीगायत्री । ३ 'यद् वा अतिथिपतिः' ७ 'यदावसथान्' साम्नी त्रिष्टुभौ । ४ 'यदभि-वदति', ६ 'यदुपरिशयनम्' आर्च्यनुष्टुभौ । ५ 'या एव यज्ञ', आसुरी गायत्री । ६ 'यत् तर्पणं' त्रिपदा साम्नां जगती । ८'यदु-पस्तृणन्ति' याजुषीत्रिष्टुप् । १० 'यत् कशिपूपबर्हणम्' साम्नां-

---

१. गु० के विना अन्य क. ङ. बी. लेखों में चतस्रः ही पाठ है । गु० का पाठ शुद्ध है क्योंकि १४, १७, २७ में तीन ऋचायें हैं । जिनका अनुष्टुप् छन्द है चार ऋचायें नहीं ।

२. बी. में विराड् पद छूटा है ।

३. सब मूल लेखों में पाठ 'भुरिक्' है ।

४. यहां पाठ में परस्पर बहुत भेद है । क. "दश सप्तर्चोद्या नागीनामा" । ङ. में पाठ ऊपर के मूलवत् है, किन्तु नाम के पूर्व 'नागी' पद छूटा हुआ है । हमने मूल में बी. का पाठ दिया है ।

भुरिग्बृहती । ११ 'यदाञ्जनाभ्यञ्जनम्', १४ 'ये व्रीहयः' इति तिस्रः साम्न्यनुष्टुभः । १२ 'यत् पुरा' इति विराड्गायत्री । १३ 'यदशनकृतम्' साम्नीनिचृत्पंक्तिः । १७ 'स्रुग्दर्विः' त्रिपाद्विराड्भुरिग्गायत्रीति[1] ॥१७॥

६।६। प० २ ।

१ 'यजमान ब्राह्मणं वा' इति त्रयोदश । प्रथमा विराट्पुरस्ताद्बृहती । २ 'यदा ह भूयः', १२ 'प्रजापतेर्वा एषः' साम्नांत्रिष्टुभौ । ३ 'उप हरति' आसुर्यनुष्टुप् । ४ 'तेषामासन्नानाम्' साम्न्युष्णिक् । ५ 'स्रुचा हस्तेन', ११ 'प्राजापत्यो वा' इति साम्नां बृहत्यौ । द्वितीया भुरिक् । ६ 'एते वै प्रियाः' आर्च्यनुष्टुप् । [2]७ 'स य एवम्' इति त्रिपात्स्वराडनुष्टुप् । ९ 'सर्वो वा एषो जग्धपाप्मा' साम्न्यनुष्टुप् । १० 'सर्वदा वा एषः' त्रिपदार्चीत्रिष्टुप् । १३ 'योऽतिथीनाम्' त्रिपदार्चीपंक्तिरिति ॥१८॥

६।६। प० ३ ।

१ 'इष्टं च वा' इति नवकं प्रथमाः षट्, ९ 'एतद् वा उ स्वादीयः' इति त्रिपादः पिपीलिकमध्या गायत्र्यः । ७ 'एष वा अतिथिः' साम्नी बृहती । ८ 'आशितावती' इति पिपीलिकमध्योष्णिक् ॥

६।६। प० ४ । १ 'स य एवम्',

६।६। प० ५ । १ 'तस्मा उषा' इति द्वौ दशकौ ॥

६।४ प० । पूर्वस्याद्याश्चतस्रः १ 'स य एवम्' इति शब्द-

---

१. ङ. इति नहीं ।

२. क. ङ. में "स य एवं विद्वानिति पंचपदा विराट् पुरस्ताद्बृहती" पाठ है । इनका पाठ बी. से सर्वथा भिन्न है । वि० ने भी मूलवत् पाठ ऊपर देकर टिप्पणि में बलिनसंस्करण का पाठ दिया है ।

रूपाः प्राजापत्या अनुष्टुभः । ९ 'स य एवं विद्वानुदकम्' इति भुरिक् । २ 'यावदग्निष्टोमेन' इति चतस्रो [1]यावत्सर्वरूपास्त्रिपादोगायत्र्यः । १० 'प्रजानां प्रजननाय' इति चतुष्पात्प्रस्तारपंक्तिः ॥

६।५। उत्तरस्याद्या साम्न्युष्णिक् । २ 'बृहस्पतिरूर्जय' इति पुर उष्णिक् । ३ 'निधनं भूत्याः' साम्नां भुरिग्बृहती । ४ 'तस्मा उद्यन्', ६ 'तस्मा अभ्रः' ९ 'उपहरति' इति साम्न्यनुष्टुभः । ५ 'मध्यंदिन' त्रिपदा निचृद्विषमा नाम गायत्री । ७ 'विद्योतमानः' त्रिपदा विराड्विषमा नाम गायत्री । ८ 'अतिथीन् प्रति' इति त्रिपाद्विराडनुष्टुबिति ॥१९॥

६।६। प० ६ ।

१ 'यत् क्षत्तारम्' इति चतुर्दशकं पूर्वासुरीगायत्री । २ 'यत् प्रतिश्रृणोति' साम्न्यनुष्टुप् । ३ 'यत् परिवेष्टारः', ५ 'यद् वा अतिथिपतिः' [2]त्रिपदे आर्चीपंक्ति । ४ 'तेषां न' इत्येकपदा प्राजापत्या गायत्री । ६ 'यत् सभागयति' इति षडाच्यो बृहत्यः । १२ 'स उपहूतः' एकपदासुरी जगती । १३ 'आप्नोतीमम्' याजुषी त्रिष्टुप् । १४ 'ज्योतिष्मतः' एकपदासुर्युष्णिक् ॥

६।७।१ 'प्रजापतिश्चै[3]कः' षड्विंशो गव्यः । आद्यार्चीबृहती । २ 'सोमो राजा' आर्च्युष्णिक् । ३ 'विद्युज्जिह्वा', ५ 'श्येनः क्रोडः' आर्च्यनुष्टुभौ । ४ 'विश्वं वायुः', १४ 'नदी सूत्री',

---

१. शं. पा. यावच्छन्दरूपा । क. यावच्छत्ररूपा, बी पाठ पढ़ा नहीं जाता । हम ने ङ. का पाठ दिया है ।

२. ङ. बी. त्रिपदा आर्ची ।

३. अथर्व संहिता में पाठ 'प्रजापतिः' मात्र है उसके आगे 'चैकः' नहीं परन्तु समग्र मूल लेखों में प्रजापतिश्चैकः है अतः यह पाठ विचारणीय है ।

१५ 'विश्वव्यचाः', १६ 'देवजना' इति साम्नां बृहत्यः । ६ 'देवानां पत्नीः' ८ 'इन्द्राणी' आसुरी गायत्र्यौ । ७ 'मित्रश्च' त्रिपदा पिपीलिकमध्यानिचृद्गायत्री । ९ 'ब्रह्म च', १३ 'क्रोधो वृक्कौ' साम्नां गायत्राविति[1] ॥२०॥

१० 'धाता च' इति पुर उष्णिक् । ११ 'चेतो हृदयम्', १२ 'क्षुत्कुक्षिः', १७ 'रक्षांसि लोहितम्', २५ 'एतद्वै' इति साम्न्युष्णिहः । १८ 'अभ्रं पीबः', २२ 'तृणानि प्राप्तः' एकपदे आसुरीजगत्यौ । १९ 'अग्निरासीनः' एकपदासुरोपंक्तिः । २० 'इन्द्रः प्राङ्तिष्ठन्' याजुषीजगती । २१ 'प्रत्यङ्तिष्ठन्' आसुर्यनुष्टुप् । २३ 'मित्र ईक्षमाणः' एकपदासुरो बृहती । २४ 'युज्यमानः' साम्नां भुरिग्बृहती । २६ 'उपैनम्' साम्नीत्रिष्टुप् । इहानुक्तपादा द्विपदा इति ॥२१॥

९।८।१ 'शीर्षक्तिं शीर्षाम[2]यम्' इति द्वाविंशकम् । भृग्वंगिरा अनुष्टुबनेन सर्वशीर्षामयां द्यामयमुपाकरोत् । १२ उदरात् ते' इत्यनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती चतुष्पादुष्णिक् । १५ 'याः पार्श्वे' इति विराडनुष्टुप् । २१ 'पादाभ्यां ते' इति विराट्पथ्या बृहती । २२ 'सं ते शीर्ष्णः' इति पथ्यापंक्तिः ॥

९।९।[3] १ 'अस्य वामस्य' इति द्वाविंशकं वामीयम् । ब्रह्मादित्यदेवत्यं त्रैष्टुभमध्यात्मकरम् । १२ 'पञ्चपादं', १४ 'सनेमि', १६ 'साकंजानां', १८ 'अवः परेण पितरम्' इति जगत्यः ॥

---

१. क. ङ. इति नहीं ।

२. बी. सर्वशीर्षमिति । किसी मूल लेख से भी अर्थ बहुत स्फुट नहीं होता मूल पाठ घ के आधार से दिया है ।

३. ९।९ सूक्त ऋ० १।१६४ सूक्त में आता है, ऋषि दीर्घतमा है ।

६।१०। [1]१ 'यद् गायत्रे' इत्यष्टाविंशकम् । गोविराडध्यात्मदेवत्यं त्रैष्टुभम् । आद्या, ७ 'अयं स', १४ 'इयं वेदिः, १७ 'सप्तार्धगर्भा' इति द्वे जगत्यः । [2]२१ 'गौरिन्मिमाय' इति पञ्चपदातिशक्वरी । तथा २३ 'अपादेति' मैत्रावरुणौ, २४ 'विराड्वाग्' इति चतुष्पदा पुरस्कृतिर्भुरिगतिजगती । २ 'गायत्रेणप्रति', २६ 'त्रयः केशिनः इति द्वे भुरिज इति ॥२२॥

इति श्री ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां षष्ठः पटल' समाप्तः ॥



१. ६।१०।६, १६, २३ तथा २४ मन्त्रों के विना शेष सब मन्त्र इस सूक्त के ऋ० १।१६४ सूक्त में मिलते हैं, ऋषि दीर्घतमा है । इसका ६वां मन्त्र ऋ० १०।५५।५ में है, ऋषि बृहदुक्थः वामदेव्यः है । और मन्त्र २३ ऋ० १।१५२।३ में है ऋषि दीर्घतमा है ।

२. क. ङ. 'मिमाय' नहीं ।

‡अथ दशमं काण्डम्

१०।१।१ ॐ 'यां कल्पयन्ति' द्वात्रिंशत् प्रत्यंगिरसः। कृत्या दूषणदेवत्यमानुष्टुभमाद्या महाबृहती। २ 'शीर्षण्वती' इति विराण्नाम गायत्री। ६ 'ये त्वा' इति पथ्यापंक्तिः। १२ 'देवैनसात्' इति पंक्तिः। १३ 'यथा वातः' इत्युरोबृहतीति। १५ 'अयं पन्थाः' इति चतुष्पदा विराड्जगती। १७ 'वात इव', २० 'स्वायसा' इति प्रस्तारपंक्तिर्द्वितीया विराट्। १६ 'पराक् ते', १८ 'यां ते बर्हिषि' इति त्रिष्टुभौ। १९ 'उपाहृतम्' इति चतुष्पदा जगती। २२ 'सोमो राजा' इत्येकावसाना, द्विपदार्च्युष्णिक्। २३ 'भवशर्वौ' इति त्रिपदा भुरिग्विषमा गायत्री। २४ 'यद्येयथ' इति प्रस्तारपंक्तिः। २८ 'एतद्धि' इति त्रिपदा गायत्री। २९ 'अनागोहत्या' इति मध्येज्योतिष्मती जगती। ३२ 'यथा सूर्यः' इति द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदातिजगतीति ॥१॥

१०।२।१ 'केन पार्ष्णी' इति त्रयस्त्रिंशत् पार्ष्णीसूक्तं नारायणः। पौरुषमानुष्टुभमाद्याश्चतस्रो, ७ 'हन्वोर्हि' इति द्व त्रिष्टुभः। ६ 'कः सप्त खानि', ११ 'को अस्मिन्नापः' इति जगत्यौ। २८ 'ऊर्ध्वो नु सृष्टाः' इति भुरिग्बृहती। इदं ब्रह्मप्रकाशिसूक्तम्। ३१ 'अष्टाचक्रा' इति द्वे साक्षात् पर ब्रह्मप्रकाशिन्याविति ॥

१०।३।१ 'अयं मे वरणः' इति पञ्चविंशकमथर्वामन्त्रोक्तवरणदेवत्यमुत वानस्पत्यं चान्द्रमसमानुष्टुभम्। २ 'प्रैणान् छृणीहि' इति द्वे, ६ 'स्वप्नं सुप्त्वा' इति भुरिक्त्रिष्टुभः। ८ 'यन्मे माता' इति पथ्यापंक्तिः। ११ 'अयं मे वरणः', १६ 'तां-

‡. यह लेख हमारा है।

स्त्वम्' इति भुरिजौ। १३ 'यथा वातो वनस्पतीन्' इति द्वे पथ्यापंक्ती। १४ 'यथा वातः' इति १७ 'यथा सूर्यः' इति प्रभृति २५ 'यथा देवेष्वमृतम्' इति षट्पदा दश जगत्य इति ॥२॥

१०।४।१ 'इन्द्रस्य प्रथमः' इति षड्विंशतिः। गरुत्मान् तक्षकदैवतमानुष्टुभम्। आद्या पथ्यापंक्तिः। २ 'दर्भः शोचिः' इति त्रिपदा यवमध्यागायत्री। ३ 'अव श्वेत' इति द्वे पथ्याबृहत्यौ। ८ 'संयतम्' इत्युष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप्। १२ 'नष्टासवः' इति भुरिग्गायत्री। १६ 'इन्द्रो [1]मेहिम्' इति त्रिपदा प्रतिष्ठागायत्री। २१ 'ओषधीनामहम्' इति ककुम्मती। २३ 'ये अग्निजा' इति त्रिष्टुप्। २६ 'आरे अभूत्' इति त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भाककुम्मती भुरिक्त्रिष्टुबिति ॥३॥

१०।५। [2]१ 'इन्द्रस्यौज' इति चतुर्विंशतिः सिन्धुद्वीपः। आप्यमुतचान्द्रमसमानुष्टुभमाद्या पञ्च त्रिपदाः, पुरोऽभिकृतयः ककुम्मतीगर्भाः पंक्तयः। ६ 'विश्वानि मा' इति चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती। ७ 'अग्नेर्भाग स्थ' इत्यष्टौ त्र्यवसानाः पंचपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहत्यः। ११ तत्र 'मित्रावरुणयोः' १४ 'देवस्य सवितुः' इति [3]द्वे पथ्यापंक्ती। १५ 'यो व आपोपां भागः' इति सप्त चतुरवसाना दशपदा मन्त्रोक्तदेवत्यास्त्रैष्टुब्गर्भा अति-

---

१. आदर्श पुस्तकों में पाठ 'इन्द्रे मेहीति' है परन्तु मूलसहिता में 'मेहिम्' पाठ जान हमने स्वयं पाठ शुद्ध किया है।

२. अथर्व संहिता में यह सूक्त ५० मन्त्रों का है। अनुक्रमणी में यहां २४ मन्त्रों का भिन्न सूक्त है। शेष अवान्तर सूक्तों के मन्त्रों को साथ मिलाकर ये ५० ऋचाओं वाला सूक्त बनाया है। हम अनुक्रमणी के अनुकूल भिन्न-भिन्न सूक्त देंगे।

३. 'द्वे' से १५ मन्त्र ग्रहण करना ठीक नहीं क्योंकि इसका छन्द भिन्न कहा है अतः यह पद चिन्तनीय है। पंक्ती का द्विवचनरूप हमारा है। मूल में पंक्तिः पद है।

धृतयः । तत्र १६ 'हिरण्यगर्भः', २० 'पृश्निः' इति[1] कृती । २४ 'अरिप्रा आपः' इति त्रिपाद्विराड्गायत्री ॥

१०।६। [2]१(२६) 'विष्णोः क्रमोसि' इत्येकादश त्र्यवसानाः कौशिका विष्णुक्रमदेवत्या उत प्रतिमन्त्रोक्तदेवत्याः षट्पदा यथाक्षरंशक्वर्यतिशक्वर्यौ (३६) १ 'जितमस्माकम्' इति मार्वी पञ्चपदातिशाक्वरातिजागतगर्भाष्टिः ॥

१०।७।(३७) १ 'सूर्य्यस्यावृतम्' इति पञ्च ब्रह्मा प्रतिमन्त्रोक्तदेवत्याः । प्रथमा विराट्पुरस्ताद्बृहती । (३८) २ 'दिशो ज्योतिष्मतीः' इति पुर उष्णिक् । (३९) ३ 'सप्त ऋषीन्', (४१) ५ 'ब्राह्मणान्' इति [3]द्वे आर्षीगायत्र्यौ । (४०) ४ 'ब्रह्माभ्या' इति विराड्विषमागायत्री ॥४॥

१०।८। (४२) १ 'यं वयम्' इति नवर्चं विहव्यः प्राजापत्या अनुष्टुभः । (४४) ३ 'राज्ञो वरुणस्य' इति त्रिपाद्गायत्रीगर्भानुष्टुप् । (५०) ९ 'अपामस्मै' इति त्रिष्टुप् ॥

१०। [4]६ (६) १ 'अरातीयोः' इति पञ्चर्चात्रिंशद्बृहस्पतिः । मन्त्रोक्तफालमणिदेवत्यमुत वानस्पत्यमानुष्टुभम् । आद्या, ४ 'हिरण्यस्रक्' इति गायत्र्यौ । ३ 'यत् त्वा शिक्वः' इत्याप्या । ५ 'तस्मै घृतम्' इति षट्पदा जगती । ६ 'यमबध्नात् बृहस्पतिर्मणिम्' इति प्रथमा सप्तपदा विराट्शक्वरी । ७ 'तमिन्द्रः' इति

---

१. 'कृती' यह द्विवचन रूप भी हमारा है। मूल पुस्तकों में पाठ कृतिः है।

२. १०।५ सूक्त क्रम में यह मन्त्र २६ वां है। भिन्न सूक्त क्रम में प्रथम। अथर्व संहिता में जो १०।५ सूक्त ५० ऋचाओं का है उसके अनुक्रमणिका के अनुसार ४ सूक्त भिन्न-भिन्न बने हैं। संहिता का मन्त्र क्रम भी साथ हमने बंधनी में दे दिया है।

३. यहां भी 'द्वे' पद चिन्तनीय है।

४. प्रकाशित संहिता क्रम बन्धनी में दिया है।

चतस्रस्त्र्यवसाना अष्टपदा अष्टयः, अन्त्या नवपदा धृतिः। ११ 'बृहस्पतिर्वाताय' इति पथ्यापंक्तिः। १२ 'तेनेमां मणिना कृषिम्' इति षट् त्र्यवसानाः षट्पदाः शक्वर्यः। २० 'अथर्वाणो अबध्नत' इति पथ्यापंक्तिः। २१ 'तं धाता' इति गायत्री। २३ 'अगमत् सह गोभिः' इति पञ्च पथ्यापंक्तयः। ३१ 'उत्तरं द्विषत' इति त्र्यवसाना षट्पदा जगती। ३५ 'एतमिध्म' इति पंचपदा [1]त्र्यनुष्टुब्गर्भाजगतीति ॥५॥

१०।१० [७] १ 'कस्मिन्नङ्गे' इति चतुश्चत्वारिंशदथर्वा क्षुद्रो मन्त्रोक्तस्कम्भोऽध्यात्मदेवत्यंत्रैष्टुभम्। प्रथमा विराड्जगती। २ 'कस्मादङ्गाद् दीप्यते', ८ 'यत्परममवमम्' इति भुरिजौ। ७'यस्मिन्त्स्तब्ध्वा' इति परोष्णिक्। १०'यत्र लोकान्' इत्युपरिष्टाद्बृहती। ११'यत्र तपः' इति द्वे, १५ 'यत्रामृतञ्च', २० 'यस्मादृचः' इत्युपरिष्टात्ज्योतिर्जगत्यः। १३ 'यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे' इति परोष्णिक्। १४'यत्रऋषयः', १६ 'यस्य चतस्रः, १८ 'यस्य शिरः', द्वे उपरिष्टाद्बृहत्यः। १७ 'ये पुरुषे' इति त्र्यवसाना षट्पदा जगती। २१ 'असच्छाखाम्' इति बृहतीगर्भानुष्टुप्। २२ 'यत्रादित्यश्च' इत्युपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती। २३ 'यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिम्' इत्यष्टावनुष्टुभ[2] इति ॥६॥

३१ 'नाम नाम्ना' इति मध्येज्योतिर्जगती। ३२ 'यस्य भूमिः' ३४ 'यस्य वातः', ३६ 'यः श्रमात्' इत्युपरिष्टाद्विराड्बृहत्यः। ३३ 'यस्य सूर्यः' इति [3]परा विराडनुष्टुप्।

---

१. क. ङ. त्र्यनु पढ़ा जाता है, बी. में 'पदानु' लिखा है। ह्वि० ने भी त्र्यनुष्टुब्गर्भा पाठ लिखा है।

२. क. ङ. इति नहीं। ३. क. ङ. ह्वि पर।

३५ 'स्कम्भो दाधार' इति चतुष्पदा जगती । ३७ 'कथं वातः', ४० 'अप तस्य' इत्यनुष्टुभौ । ३८ 'महद्यक्षम्' इति त्रिष्टुप् । ३९ 'यस्मै हस्ताभ्याम्' इत्युपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती । ४१ 'यो वेतसम्' इत्यार्षी त्रिपाद्गायत्री । ४२ 'तन्त्रमेके' इति द्वे त्रिष्टुभौ । ४४ 'इमे मयूखाः' इत्येकावसाना पंचपदा निचृत्पदपंक्तिराच्यर्यनुष्टुप्, द्विपदा वा पंचपदा निचृत्पदपंक्तिरिति ॥७॥

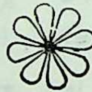
१०।११ [८] १ 'यो भूतम्' इति चतुश्चत्वारिंशत्' कुत्सोऽध्यात्मदेवत्यं त्रैष्टुभम् । आद्योपरिष्टाद्विराड्बृहती । २ 'स्कम्भेनेमे' इति बृहतीगर्भानुष्टुप् । ५ 'इदं सवितः' इति भुरिगनुष्टुप् । ६ 'आविः सन्निहितम्' इत्यनुष्टुप् । ७ 'एक चक्रम्' इति पराबृहती । १० 'या पुरस्तात्' इत्यनुष्टुब्गर्भा । ११ 'यदेजति' इति जगती । १२ 'अनन्तं विततम्' इति पुरोबृहती त्रिष्टुब्गर्भार्षी-पंक्तिः । १४ 'ऊर्ध्वं भरन्तम्', १९ 'सत्येन' इति द्वे' अनुष्टुभः । १५ 'दूरे पूर्णेन' इति भुरिग्बृहती । २१ 'अपादग्रे', २३ 'सनातनम्', २५ 'बालादेकम्', २९ 'पूर्णात्पूर्णम्' इत्यनुष्टुभः । २२ 'भोग्यः' इति पुर उष्णिक् । २६ 'इयं कल्याणि' इति द्व्युष्णिग्गर्भानुष्टुप् । २७ 'त्वं स्त्री' इति भुरिग्बृहती । ३० 'एषा सनत्नी' इति भुरिक् । ३१ 'अविर्वै नाम' इति चतस्रः, ३७ 'यो विद्यात् सूत्रम्' इति द्वे, ४१ 'उत्तरेणेव', ४३ 'पुण्डरीकं नवद्वारम्' इत्यनुष्टुभः । ३९ 'यदन्तरा द्यावापृथिवी' इति बृहतीगर्भा । [1]४२ 'निवेशनः' इति विराड्गायत्रीति ॥८॥

१०।१२ [९] १ 'अघायताम्' इति सप्तविंशतिरथर्वामन्त्रोक्तशतौदनदेवत्यमानुष्टुभम् । आद्यात्रिष्टुप् । १२ 'ये देवाः' इति

१. १०।८।४२ ऋ० १०।१३९।३ में अल्प भेद से आया है ऋषि विश्वावसुर्देवगन्धर्व है ।

पथ्यापंक्तिः । २५ 'क्रोडौ ते स्ताम्' इति द्व्युष्णिग्गर्भानुष्टुप् । २६ 'उलूखले मुसले' इति पंचपदा बृहत्यनुष्टुबुष्णिग्गर्भा जगती । २७ 'अपो देवीः' इति पञ्चपदातिजागतानुष्टुब्गर्भाशक्वरी ॥

१०।१३ (१०)१ 'नमस्ते जायमानायै' इति चतुस्त्रिंशत्कश्यपो मन्त्रोक्तवशादेवत्यमानुष्टुभमाद्या ककुम्मती । ५ 'शतं कंसाः' इति पञ्चपदातिजागतानुष्टुभं स्कंधोग्रीवीबृहती । ६ 'यज्ञपदीः', ८ 'अपस्त्वम्', १० 'यदन्नूचो' इति विराजः । २३ 'सर्वं गर्भात्' इति बृहती । २४ 'युध एकः' इत्युपरिष्टाद्बृहती । २६ 'वशामेव' इत्यास्तार पंक्तिः । २७ 'य एवं विद्यात्' इति शङ्कुमती । २९ 'चतुर्धा रेतः' इति त्रिपदा विराड्गायत्री । ३१ 'वशाया दुग्धं पीत्वा' इत्युष्णिग्गर्भा । ३२ 'सोममेनाम्' इति विराट्पथ्या बृहती ॥६॥



अथैकादशं काण्डम्

११।१।१ 'अग्ने जायस्व' इति सप्तत्रिंशद्ब्रह्मौद[1]निकम्, त्रैष्टुभमाद्यानुष्टुब्गर्भाभुरिक्पंक्तिः। २ 'कृणुत धूमम्' इति बृहतोगर्भाविराट्। ३ 'अग्ने जनिष्ठा' इति चतुष्पदा शाक्वरगर्भाजगती। ४ 'समिद्धो अग्ने' इति भुरिक्। ५ 'त्रेधा भागः' इति बृहतीगर्भा विराट्। ६ 'अग्ने सहस्वान्' इत्युष्णिक्। ८ 'इयं महो' इति विराड्गायत्री। ९ 'एतौ ग्रावाणौ' इति शाक्वरातिजागतगर्भा[2] जगती। १० 'गृहाण ग्रावाणौ' विराट्पुरोऽतिजगती विराड्जगती। ११ 'इयं ते धीतिः' इति जगती। १५ 'ऊर्जो भागः' इति द्वे भुरिजौ। १७ 'शुद्धाः पूताः' इति विराड्जगती। १८ 'ब्रह्मणा शुद्धाः' इत्यतिजागतगर्भा परातिजागताविराडतिजगती। २० 'सहस्रपृष्ठः' इत्यतिजागतगर्भा[3] परा शाक्वरा चतुष्पदा भुरिग्जगती ॥१०॥

२१ 'उदेहि वेदिम्' इति, २४ 'अदितेर्हस्ताम्' इति तिस्रो, २६ 'अग्नौ तुषान्' इति विराड्जगत्योऽन्त्या भुरिक्। २७ 'शुद्धाः पूताः' इत्यतिजागतगर्भा[4] जगती। ३१ 'बभ्रोरध्वर्यो' इति भुरिक्। ३५ 'वृषभोसि' इति चतुष्पात् ककुम्मत्युष्णिक्। ३६ 'समाचिनुष्व' इति पुरोविराट् व्याघ्रादिष्ववगंतव्या। ३७ 'येन देवाः' इति विराड्जगती ॥

११।२।१ 'भवाशर्वौ मृडतम्' इत्येकत्रिंशदर्थवा मन्त्रोक्तरुद्रदेवतं त्रैष्टुभम्। या यद्देवत्येति पारिभाषिकमनुस्मर्यते सर्वत्र। आद्या परातिजागताविराड्जगती। २ 'शुने क्रोष्ट्रे' इत्यनुष्टुब्गर्भा

---

१. ङ. बी' दनीकं'।
२. ङ. 'गर्भानुजगती'।
३. क. गु. 'पर'।
४. बी. गर्भा भुरिग्जगती।

पञ्चपदा तथा जगती । ३ 'ऋन्दाय ते' इति चतुष्पात्स्वराडुष्णिक् । ४ 'पुरस्तात् ते' इति द्वे, ७ 'अस्त्रा नीलशिखण्डेन' इत्यनुष्टुभः । ६ 'अङ्गेभ्यस्ते' इत्यार्षीगायत्री । ८ 'स नो भव' इति महाबृहती । ९ 'चतुर्नमः' इत्यार्षी । १० 'तव चतस्रः' इति पुरः कृतिस्त्रिपदा विराडिति ॥११॥

११ 'उरुः कोशः' इति पञ्चपदा विराड्जगतीगर्भा शक्वरी । १२ 'धनुर्बिभर्षि' इति भुरिक् । १३ 'योऽभियातः', १५ 'नमस्ते' इति द्वे अनुष्टुभः[1] । १४ 'भवारुद्रौ', १७ 'सहस्राक्षमतिपश्यम्' इति तिस्रो विराड्गायत्र्यः[2] । २० 'मा नो हिंसीः' इति भुरिग्गायत्री । २१ 'मा नो गोषु' इत्यनुष्टुप् । २२ 'यस्य तक्मा' इति विषमपादलक्ष्मा[3] त्रिपदा महाबृहती । २३ 'योऽन्तरिक्षे', २६ 'मा नो रुद्र' इति द्वे विराड्गायत्र्यः[4] । [5]२९ 'मा नो महान्तम्', २४ 'तुभ्यमारण्याः' इति जगत्यौ । २५ 'शिशुमाराः' इति[6] पञ्चपदाति शक्वरी । ३० 'रुद्रस्यैलबकारेभ्यः' इति चतुष्पादुष्णिक् । ३१ 'नमस्ते घोषिणीभ्यः' इति त्र्यवसाना विपरीतपादलक्ष्मा षट्पादिति[7] ॥१२॥

११।३। प० १

१ 'तस्यौदनस्य' इति त्रयः पर्यायास्तत्र पूर्वमेकत्रिंशद् बार्हस्पत्यौदनदेवत्याः । १४ 'ऋचा कुम्भी' इत्यासुरी गायत्र्यौ । २ 'द्यावापृथिवी श्रोत्रे' इति त्रिपदा समविषमा गायत्री । ३ 'चक्षुर्मुसलम्', ६ 'कब्रु फलीकरणाः', १० 'आन्त्राणि' इत्यासुरीपंक्तयः ।

---

१. ङ. 'भौ' । २. ङ. त्र्यौ ।
३. क. ग. लक्ष्मा । ङ. ह्वि० लक्ष्म्या । ४. ङ त्र्यौ ।
५. ११।२।२९ ऋ० १।११४।७ में है ऋषि कुत्सआंगिरस है
६. ङ. गु. में इति के आगे द्वे पाठ अधिक है ।
७. ह्वि० में इति के आगे जगती पाठ दिया है ।

४ 'दितिः शूर्पं', ८ 'त्रपु भस्म' साम्न्यनुष्टुभौ । ५ 'अश्वाः कणाः', १३ 'ऋतं हस्तावनेजनं', १५ 'ब्रह्मणा परिगृहीता', २५ 'यावद् दाता' साम्न्युष्णिहः । ७ 'श्यामस्मयः', १९ 'ओदनेन' इति चतस्रः प्राजापत्यानुष्टुभः । ९ 'खलः पात्रं', १७ 'ऋतवः' इति द्वे आसुर्यनुष्टुभः । ११ 'इयमेव पृथिवी' इति भुरिगार्च्यनुष्टुप् । १२ 'सीताः पर्शवः' इति याजुषीजगती । १६ 'बृहदायवनम्', २३ 'स य ओदनस्य' इत्यासुरीबृहत्यौ । २४ 'नाल्प' इति त्रिपदा प्राजापत्या बृहती । २६ 'ब्रह्मवादिनः' इत्यार्च्युष्णिक् । २७ 'त्वमोदनम्' इति साम्नीबृहती, द्वितीया भुरिक् । ३० 'नैव' इति याजुषीत्रिष्टुप् । ३१ 'ओदन एव' अल्पशः पंक्तिरुत याजुषीति ॥१३॥

११।३। प० २ ।

[1] १ 'ततश्चैनम्' इति द्वासप्ततिर्मन्त्रोक्तदेवत्याः । प्रथमा सर्वाग एव । ३८ 'एनमन्यैः प्राणापानैः', ४१ 'अन्येनोरसा' इति च साम्नी त्रिष्टुभौ[2] । ३२ 'ज्येष्ठतः' 'तं वा अहं', ताभ्यामेनं ३५ 'मुखतस्ते', ४२ 'उदरदारः', एकपदा[3] आसुरी गायत्र्यः । ३२ 'बृहस्पतिना' ४३ 'समुद्रेण' इति दैवीजगत्यौ । ३५ 'तेनैनं', ३६ 'तयैनं,' ३७ 'तैरेनं', ३८ 'प्राणापानस्त्वा', ४४ 'उरू ते', ४६ 'बहुचारी' एकपदा आसुर्यनुष्टुभः । ४९ 'एष वा ओदनः'

---

१. इस द्वितीय पर्याय में प्रकाशित मूल संहिताओं की मन्त्र संख्या १८ है। इनको बृहत्० के पटल ७।१४ के अन्त में 'दण्डक' कहा गया है। इन १८ दण्डकों में ७२ अवसान हैं। पञ्चपटलिका (द्वासप्तति पर:।३१।) तथा बृहत्० दोनों इस विभाग में सहमत हैं। शङ्करपाण्डुरङ्ग ने स्वकीय संस्करण के तृतीय भाग पृ० ३५६ के आगे इन १८ दण्डकों को ७२ अवसानों में विभक्त करके छापा है।

२. आदर्श पुस्तकों में त्रिष्टुभः पाठ है।

३. मूल पुस्तकों में 'एकपदासुरी' है।

इति साम्न्यनुष्टुप् । ३३ 'एनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्याम्' इत्यादितः सप्तदशाचर्यनुष्टुभः । ३७ 'ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः' इति साम्नीपंक्तिः ३३ 'बधिरो भविष्यसि', ३६ 'जिह्वा ते', ४० 'विद्युत् त्वा', ४७ 'सर्पस्त्वा', ४८ 'ब्राह्मणं हनिष्यसि' इत्यासुरी जगत्यः । [1]३४ 'अन्धो भविष्यसि', ३७ 'दन्तास्ते', ४१ 'कृष्या न रात्स्यसी', ४३ 'अप्सुमरिष्यसि', ४५ 'स्रामो भविष्यसि', इत्यासुरी पंक्तयः। ३४ 'सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्' इत्यासुरी त्रिष्टुप् । ३५ 'ब्रह्मणा मुखेन', ४६ 'अश्विनोः पादाभ्याम्', ४८ 'ऋतस्य हस्ताभ्याम्' इति याजुषी गायत्र्यः । ३६ 'अग्नेर्जिह्वया', ३७ 'ऋतुभिर्दन्तैः', ४१ 'दिवा पृष्ठेन' इति दैवी पंक्तयः । ३८ 'सप्तर्षिभिः प्राणापानैः', ३९ 'अन्तरिक्षेण व्यचसा' इति प्राजापत्या गायत्र्यः । ३९ 'राजयक्ष्मस्त्वा' आसुर्युष्णिक् । ४१ 'पृथिव्योरसा', ४७ 'सवितुः प्रपदाभ्याम्' दैवीजगत्यौ । ४२ 'सत्येनोदरेण', ४५ 'त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम्', ४९ 'सत्ये प्रतिष्ठाय' इति दैवीत्रिष्टुभः । ४९ 'अप्रतिष्ठानः', एकपदा भुरिक् साम्नी बृहतीति । यदेते पर्य्यायसूक्तमन्त्रा जपकर्मणि प्रयुज्यन्ते, तदाधिकारान्तानेतान विजानीयात् । तदा तथा छन्दस्येता अष्टादश दण्डका भवन्ति । 'सोदक्रामत्', 'य एवं विद्वान्' इत्यादिषु यथाक्षरं यथा तथाधिकारान्तं गायत्र्यादि कृति, धृति, पथ्यापंक्त्यादि छन्दः प्रयुञ्ज्यादिति ॥१४॥

११।३। प० ३

५० 'एतद्वै ब्रध्नस्य' इति सप्तको मन्त्रोक्तदेवत्यस्तत्राद्यासुर्यनुष्टुप् । ५१ 'ब्रध्नलोकः' इत्याचर्युष्णिक् । ५२ 'एतस्माद्वा' इति त्रिपदा भुरिक्साम्नीत्रिष्टुप् । ५३ 'तेषां प्रज्ञानाय' इत्या-

१. मूल पुस्तकों में 'जगत्यावंधो' पाठ है। उपर्युक्त पाठ स्वयं दिया है।

सुरीबृहती । ५४ 'स य एवं विदुषः' इति द्विपदा भुरिक्साम्नीबृहती । ५५ 'न च प्राणम्' इति साम्न्युष्णिक् । ५६ 'न च सर्वज्यानिम्' इति प्राजापत्या बृहती ॥

११।४।१ 'प्राणाय नमः' इति षड्विंशकं भार्गवो वैदर्भिर्मन्त्रोक्तप्राणदेवत्यमानुष्टुभमाद्या शंकुमती । ८ 'नमस्ते प्राण प्राणते' इति पथ्यापंक्तिः । १४ 'अपानति' इति निचृत् । १५ 'प्राणमाहुः' इति भुरिक् । २० 'अन्तर्गर्भः' इत्यनुष्टुब्गर्भा त्रिष्टुप् । २१ 'एकं पादम्' इति मध्येज्योतिर्जगती । २२[1] 'अष्टाचक्रम्' इति त्रिष्टुप् २६ 'प्राण मा मत्' इति बृहतीगर्भेति ॥१५॥

११।५।१ 'ब्रह्मचारीष्णन्' इति षड्विंशकं ब्रह्मा मन्त्रोक्तब्रह्मचारीदेवत्यं त्रैष्टुभमाद्या पुरोऽति जागता विराड्गर्भा । २ 'ब्रह्मचारिणं पितरः' इति पञ्चपदा बृहतीगर्भा विराट्शक्वरी परा उरोबृहती । ६ 'ब्रह्मचार्येति समिधा' इति शाक्वरगर्भा चतुष्पदा जगती । ७ 'ब्रह्मचारी जनयन्' इति विराड्गर्भा । ८ 'आचार्यस्ततक्ष' इति पुरोऽति जागता विराड्जगती । ९ 'इमां भूमिम्' इति बृहतीगर्भा । १० 'अर्वागन्यः परः' इति भुरिक् । ११ 'अर्वागन्य इतः' इति जगती । १२ 'अभिक्रन्दन्' इति शाक्वरगर्भा[2] चतुष्पाद्विराडति जगती । १३ 'अग्नौ सूर्य्ये' इति जगती । १५ 'अमा घृतम्' इति पुरस्ताज्ज्योतिः । १४ 'आचार्यो मृत्युर्वरुणः', १६ 'आचार्यो ब्रह्मचारी' इति सप्तानुष्टुभः । २३ 'देवानामेतत्' इति पुरोबार्हतातिजागतगर्भा । २५ 'चक्षुः श्रोत्रम्' इत्येकावसानार्च्युष्णिक् । २६ 'तानि कल्पत्' इति मध्येज्योतिरुष्णिग्गर्भा ॥

---

१. ११।४।२२ ऋ० १०।८।७।
२. इ. वी. में 'गर्भापरा' चतुष्पात् है। परञ्च क. व. द्वि में परा नहीं।

११।६।१ 'अग्नि ब्रूमः' इति त्रयोविंशकं शंतातिश्चान्द्रमसमुत मन्त्रोक्तदेवत्यमानुष्टुभम्। २३ 'यन्मातली रथक्रीतम्' इति बृहतीगर्भेति ॥१६॥

११।७।१ 'उच्छिष्टे नाम रूपम्' इति सप्तविंशतिरथर्वा मन्त्रोक्तोच्छिष्टोऽध्यात्मदैवतमानुष्टुभम्। ६ 'ऐन्द्राग्नं पवमानम्' इति पुरोष्णिग्बार्हत परा। २१ 'शर्कराः सिकताः' इति स्वराट्। २२ 'राद्धिः प्राप्तिः' इति विराट्पथ्याबृहती ॥

११।८।१ 'यन्मन्युः' इति चतुस्त्रिंशत्कौरुपथिरध्यात्मसन्युदैवतमानुष्टुभम्। ३३ 'प्रथमेन प्रमारेण' इति पथ्यापंक्तिः ॥

११।९।१ 'ये बाहवः' इति षड्विंशकं कांकायनो मन्त्रोक्तार्बुदिदेवत्यमानुष्टुभमाद्या सप्तपदा विराट्शक्वरी त्र्यवसाना। ३ 'उत्तिष्ठतमा रभेथाम्' इति परोष्णिक्। ४ 'अर्बुदिर्नाम' इति त्र्यवसानोष्णिग्बृहतीगर्भा परा त्रिष्टुप् षट्पदाति जगती। ९ 'अलिक्लवा जाष्कमदा', ११ 'आ गृह्णीतम्', १४ 'प्रतिघ्नानाः[1] सम्' पथ्यापंक्तयः। १५ 'श्वन्वतीः' इति सप्तपदा त्र्यवसाना शक्वरी। १६ 'खडूरेधिचङ्क्रमाम्' इति त्र्यवसाना पञ्चपदा विराडुपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्। १७ 'चतुर्दंष्ट्रान्' इति त्रिपदा गायत्री। २२ 'ये च धीराः' इति त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी। २३ 'अर्बुदिश्च त्रिषन्धिः' इति पथ्यापंक्तिः। २४ 'वनस्पतीन् वानस्पत्यान्' इति द्वे त्र्यवसाने सप्तपदे शक्वर्यौ। २६ 'तेषां सर्वेषाम्'[2] इति पथ्यापंक्तिरिति ॥१७॥

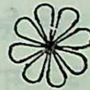
११।१०।१ 'उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः' इति सप्तविंशतिः

१. बी 'संधावमिति' अधिक पाठ है।

२. बी. 'सर्वेषाम्' नहीं।

भृग्वंगिरा मन्त्रोक्तत्रिषन्धिदेवत्यमानुष्टुभमाद्या विराट्पथ्याबृहती । २ 'ईशां वो वेद राज्यम्' इति त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुबगर्भातिजगती । ३ 'अयोमुखाः सूचीमुखाः' इति विराडास्तारपंक्तिः । ४ 'अन्तर्धेहि' इति विराट् । ८ 'अवायन्ताम्' इति विराट्त्रिष्टुप् । ९ 'यामिन्द्रेण[1] इति पुरोविराट्पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् । १२ 'सर्वांल्लोकान्' इति पंचपदा पथ्यापक्तिः । १३ 'बृहस्पतिराङ्गिरसः' षट्पदा जगती । १६ 'वायुरमित्राणाम्' त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मत्यनुष्टुप्[2] त्रिष्टुबगर्भा शक्वरी । १७ 'यदि प्रेयुः' पथ्यापंक्तिः । २१ 'मूढा अमित्राः' त्रिपदा गायत्री । २२ 'यश्च कवची' विराट् पुरस्ताद्बृहती । २५ 'सहस्रकुणपा' ककुप् । २६ 'मर्माविधम्' [3]प्रस्तारपंक्तिरिति ॥१८॥

इति श्री ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां सप्तमः पटलः समाप्तः सम्पूर्णता[4]मेति । एवं षड्विंशदर्थसूक्तान्यथर्ववेदसंहितायाम् ॥



१. घ. इति नहीं ।   २. बी. त्रिष्टुब् नहीं ।

३. बी. स्तारपंक्तिः ।

४. मूल लेखों में 'मिति' है ।

अथ द्वादशं काण्डम्

१२।१। [1]ओं अथानुवाका उच्यन्ते। १ 'सत्यं बृहत्' इति त्रिषष्टिरथर्वा भौमं त्रैष्टुभम्। २ 'असंबाधम्' इति भुरिक्। ४ 'यस्याश्चतस्रः इति तिस्रः' १० 'यामश्विनौ' इति त्र्यवसानाः षट्पदा जगत्यः। ७ 'यां रक्षन्ति' इति प्रस्तारपंक्तिः। ८ यार्ण-वेधि' ११ 'गिरयस्ते' इति त्र्यवसाने षट्पदे विराडष्टी। ६ 'यस्यामापः' इति परानुष्टुप्। १२ 'यत् ते मध्यम्' इति द्वे, १५ 'त्वज्जाताः' इति शक्वर्यः'। पूर्वे द्वे त्र्यवसाने, तिस्रोऽपि पञ्चपदाः। १४ 'यो नो द्वेषत्' इति महाबृहती। १६[2] 'ता नः प्रजाः' इति साम्नीत्रिष्टुप्। १८ 'महत् सधस्थम्' इति त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्वरी। १६ 'अग्निर्भूम्याम्' इति द्वे पुरोबृहत्यौ, द्वितीया विराडिति ॥१॥

२१ 'अग्निवासाः' इति साम्नीत्रिष्टुप् प्रागुक्ता। १६ 'ता नः' इति चोभे एकावसाने। २२ 'भूम्यां देवेभ्यः' इति त्र्यवसाना षट्पदा। २३ 'यस्ते गन्धः पृथिवि' इति [3]पञ्चपदोभे विराडति जगत्यौ। २४ 'यस्ते गन्धः पुष्करम्' इति पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा जगती। २५ 'यस्ते गन्धः पुरुषेषु' इति सप्तपदोष्णिगनुष्टुब्गर्भा-शक्वरी। २६ 'शिला भूमिः' इति तिस्रोऽनुष्टुभः। ३० 'शुद्धा न आपः' इति विराड्गायत्री। ३२ 'मा नः पश्चात्' इति पुरस्ता-ज्ज्योतिः। ३३ 'यावत् ते', ३५ 'यत् ते भूमे', ३६ 'यस्यां पूर्वे भूतकृतः' इति तिस्रोऽनुष्टुभः। ३४ यच्छयानः' इति त्र्यवसाना

---

१. घ० ओं नहीं। गु० श्रीगणेशायनमः अधिक है।

२ सब मूल आदर्श पुस्तकों में पाठ 'महाबृहत्येता नः प्रजा इति' है। 'महाबृहती एता नः' पाठ संहिता में कहीं नहीं 'ता नः' पाठ हम ने दिया है।

३. क. घ. गु. 'पंचपदे उभे'। ङ. वी. ठीक है जो ऊपर दिया है।

षट्पदा त्रिष्टुब्बृहतीगर्भाति जगती। ३६ 'ग्रीष्मस्ते' इति विपरीतपादलक्ष्मा पंक्तिः। ३७'यापसर्पम्' इति पञ्चपदा त्र्यवसाना शक्वरी। ३८ 'यस्यां सदः' इति त्र्यवसाना षट्पदा जगती। ४१ 'यस्यां गायन्ति' इति [1]सप्तपदा ककुम्मती शक्वरी। ४२ 'यस्यामन्नम् इति स्वराडनुष्टुप् ॥२॥

४३ 'यस्याः पुरः' इति विराडास्तारपंक्तिः। ४४ 'निधिं[2] बिभ्रती' इति द्वे, ४६ 'ये त आरण्याः' इति जगत्यः। ४६ 'यस्ते सर्पः' इति षट्पदानुष्टुब्गर्भा परा शक्वरी। ४७ 'ये ते पन्थानः' इति षट्पदोष्णिगनुष्टुब्गर्भा पराति शक्वरी। ४८'मल्वं बिभ्रती' इति पुरोऽनुष्टुप्। ५० 'ये गन्धर्वाः' इत्यनुष्टुप्। ५१ 'यां द्विपादः' इति त्र्यवसाना षट्पदानुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी। ५२ 'यस्यां कृष्णम्' इति पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा परातिजगती। ५३'द्यौश्चमे' इति द्वे, ५६ 'ये ग्रामाः', ५९ 'शन्तिवा', ६३ 'भूमे मातः' इत्यनुष्टुभः पूर्वा पुरोबार्हता। ५७ [3]'अश्व इव' इति जगती। ५८ 'यद् वदामि' इति पुरस्ताद्बृहती। ६१ 'त्वमस्य' इति पुरोबार्हता। ६२ 'उपस्थास्ते' इति परा विराट् ॥३॥

१२।२।१ 'नडमा रोह' इति पञ्चपञ्चाशत् भृगुराग्नेयमुत मन्त्रोक्तदेवत्यं त्रैष्टुभम्। २ 'अघशंसदुःशंसाभ्याम्', ५ 'यत् त्वा क्रुद्धाः' इत्यनुष्टुभौ। ३ 'निरितः' इत्यास्तारपंक्तिः। ६ 'पुनस्त्वादित्याः' इति भुरिगार्षी पंक्तिः। ७ 'यो अग्निः

---

१. १२।१।४१ को क. ङ. बी. में सप्तपदा और घ० ह्वि० में षट्पदा लिखा है।

२. घ० बिभ्रत्निति।

३. १२।१।५७ का छन्द ह्वि० ने जगती के स्थान पर 'पुरोति जागताजगती' लिखा है परन्च हमारे पास जितने भी आदर्श पुस्तक हैं उन सब में जगती है अतः ह्वि० का पाठ चिन्तनीय है।

क्रव्यात्' इति जगती। ८ 'क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि' इति भुरिक्। ६ 'अग्निमिषितः' इत्यनुष्टुब्गर्भा विपरीतपादलक्ष्मा पंक्तिः ।४।।

१२ 'देवो अग्निः' इति नवानुष्टुभः। तत्र १६ 'अग्नेयेभ्यस्त्वा' इति ककुम्मती परा बृहती। १८ 'समिद्धो अग्न आहुत' इति निचृत्। [1]२१ 'परं मृत्यो' इति त्रयोदश मार्त्व्यः। ३४ 'अपावृत्य' इति तिस्रः। ३८ 'मुहुर्गृध्यैः' इति चतस्रोऽनुष्टुभः। ३७ 'अयज्ञियो हतवर्चा' इति पुरस्ताद्बृहती। ४० 'यद् रिप्रम्' इति पुरस्तात्ककुम्मत्यनुष्टुप्। ४२ 'अग्ने अक्रव्यात्' इति त्रिपदैकावसाना भुरिगार्चीगायत्री। ४३ 'इमं क्रव्यात्' इत्यनुष्टुप्। ४४ 'अन्तर्धिः' इत्येकावसाना द्विपदार्चीबृहती। ४५ 'जीवानामायुः' इति जगती। ४६ 'सर्वानग्ने' इत्येकावसाना द्विपदा साम्नीत्रिष्टुप्। ४७ 'इममिन्द्रम्' इति पंचपदा बार्हत वैराजगर्भा जगती। ४८ 'अनड्वाहम्' इति द्वे भुरिजौ। ५० 'ते देवेभ्यः' इत्युपरिष्टाद्विराड्बृहती। ५१ 'ये श्रद्धा', ५४ 'इषीकाम्' इत्यनुष्टुभौ। ५२ 'प्रेव' इति पुरस्ताद्विराड्बृहती। ५५ 'प्रत्यञ्चमर्कम्' इति बृहतीगर्भेति ।।५।।

१२।३।१ 'पुमान् पुंसः' इति षष्टिर्यमो मन्त्रोक्तस्वर्गौदनाग्निदेवत्यं त्रैष्टुभम्। आद्या भुरिक्। १२ 'पितेव पुत्रान्' इति जगती। १३ 'यद्यत् कृष्ण' इति, [2]अथ १७ 'स्वर्गं लोकम्' इति स्वराडार्षी[3] पंक्ती। २१ 'पृथग्रूपाणि' इति द्वे। ८ 'दक्षिणां

---

१. १२।२।२१, २२, २३, २४, २५, ३० तथा ३१ मन्त्र ऋग्वेद १०।१८।१, ३, ४, ६, ५, २ तथा ७ में क्रम से मिलते हैं ऋ० वे० में इनका ऋषि सङ्कुसुको यामायन है। १२।२।२६ ऋ० १०।५३।८ में आता है।

२. मूल पुस्तकों में पाठ इत्याथा है कुछ स्पष्ट पाठ नहीं।

३. सब मूल पुस्तकों में 'पंक्तिः' एकवचन का पाठ है।

दिशम्' २४ 'अग्निः पचन्' इति जगत्यः। ३४ 'षष्टयां शरत्सु' इति विराड्गर्भा। ३९ 'यद्यज्जाया' इत्यनुष्टुब्गर्भा। ४२ 'निधिनिधिपा' इति द्वे भुरिजौ। ४४ 'आदित्येभ्यो अङ्गिरेभ्यः' इति पराबृहतो। ४७ 'अहं पचामि' इति भुरिक्। ५५ 'प्राच्यै त्वादिशे' इति षट् त्र्यवसानाः सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वर [1]धात्यर्गर्भा अतिधृतयः। प्रथमा ५७ 'प्रतीच्यै त्वा' ५८ 'उदीच्यै[2] त्वा', ६० 'ऊर्ध्वायै त्वा' इति कृतिः। ५९ 'ध्रुवायै त्वा' कृतिरिति ॥६॥

१२।४।१ 'ददामि' इति त्रिपञ्चाशत्। कश्यपो मन्त्रोक्तवशादेवत्यमानुष्टुभम्। ७ 'यदस्याः कस्मै चित्' इति भुरिक्। २० 'देवा वशामयाचन् मुखम्' इति विराट्। ३२ 'स्वधाकारेण पितृभ्यः' इत्युष्णिग्बृहतीगर्भा। ४२ 'तां देवाः' इति बृहतीगर्भेति। एवं सर्वत्रन्यूनाधिकत्वे समूह्य यथातथमिति चत्वारोऽनुवाका इति ॥७॥

१२।५। प० १।

१ 'श्रमेणतपसा' इति सप्त पर्य्यायाः [3]प्रागुक्तर्षिर्ब्रह्मगवीदेवतास्तत्राद्याः[4] षट्प्रथमोभौ प्राजापत्यानुष्टुप्। ६ 'अपक्रामति' इति २ 'सत्येनावृता' इति भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्। ३ 'स्वधया परिहिता' इति चतुष्पात्स्वराडुष्णिक्। ४ 'ब्रह्म पदवायम्' इत्यासुर्यनुष्टुप्। ५ 'तामाददानस्य' इति साम्नी पंक्तिः ॥

१२।५। प० २।

---

१. ङ. में इस पाठ को चक्कू से उड़ाया हुआ है।

२. ङ. में उदीच्यै के आगे 'त्वा' पद नहीं।

३. ङ. में 'प्रागुक्तर्षिः' पाठ नहीं। ४. क. घ. 'आद्यः'।

७ 'ओजश्च' इति पंचाद्ये[1] द्वे आर्च्यनुष्टुभौ। पूर्वा भुरिक्। १० 'पयश्च' इत्युष्णिक्। एताश्चतस्रः पुनः पुनः[2] पदान्तरेण, पदाभ्यासादेकपदाः। ११ 'तानि सर्वाणि' इत्यार्चो निचृत् पंक्तिरिति ॥८॥

१२। ५। प० ३।

१२ 'सैषा भीमा' इति षोडश। प्रथमा विराड्विषमा-गायत्री। १३ 'सर्वाण्यस्यां घोराणि' इत्यासुर्यनुष्टुप्। १४ 'सर्वाण्यस्यां क्रूराणि', २६ 'अघविषा निपतन्ती' इति द्वे साम्न्युष्णिहौ। १५ 'सा ब्रह्मज्यम्' इति गायत्री १६ 'मेनिः शतवधा' द्वे, १९ 'हेतिः शफान्' इति द्वे प्राजापत्यानुष्टुभः। १८ 'वज्रो धावन्ती' इति याजुषी जगती। २१ 'मृत्युर्हिङ्कृण्वती' साम्न्यनुष्टुप्। २२ 'सर्वज्यानिः' साम्नी बृहती। २३ 'मेनिर्दुह्यमाना' याजुषी त्रिष्टुप्। २४ 'सेदिरुपतिष्ठन्ती' इत्यासुरी गायत्री। २५ 'शरव्या३मुखे' साम्न्यनुष्टुप्। २७ 'अनुगच्छन्ती प्राणान्' आर्च्युष्णिगिति ॥९॥

१२।५। प० ४।

२८ 'वैरं विकृत्यमाना', इत्येकादश। आद्यासुरी गायत्री। २९ 'देवहेतिः', ३७ 'अवर्तिरश्यमाना' आसुर्यनुष्टुभौ। ३० 'पाप्माधिधीयमाना' साम्न्यनुष्टुप्। ३१ 'विष प्रयस्यन्ती' याजुषी त्रिष्टुप्। ३२ 'अघं पच्यमाना' साम्नोगायत्री। ३३ 'मूलबर्हणी' इति साम्नी बृहत्यौ। ३५ 'उ भूतिरुपह्लियमाणा' भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्। ३६ 'शर्वः क्रुद्धः' इति साम्न्युष्णिक्। [3]३८ अशिता लोकात्' प्रतिष्ठा गायत्री ॥

---

१. सब मूल लेखों में 'आद्या द्वे' पाठ है।

२. मूल का पाठ क. घ. के अनुकूल दिया है। ङ. पदान्तरेग पादाभ्यासात्। बी. पादान्तरेग पादाभ्यासात्। ह्वि० पादान्तरेण पदाभ्यासात्।

३. सब आदर्श पुस्तकों में पाठ 'असिता' है।

१२।५। प० ५।

३९ 'तस्या आहननम्' इत्यष्टाद्या साम्नीपंक्तिः। ४० 'अस्वगता' याजुष्यनुष्टुप्। ४१ 'अग्निः क्रव्याद्भूत्वा', ४६ 'य एवं विदुषः' भुरिक्साम्न्यनुष्टुभौ। ४२ 'सर्वास्याङ्गा पर्वा' आसुरीबृहती। ४३ 'छिनत्त्यस्य' साम्नी बृहती। ४४ 'विवाहां ज्ञातीन् सर्वान्' पिपीलिकमध्यानुष्टुप्। ४५ 'अवास्तुमेनमस्वगम्' आर्चीबृहतीति ॥१०॥

१२।५। प० ६।

४७ 'क्षिप्रं वै तस्य' इति पञ्चदशाद्यास्कन्धोग्रीवीः। ६१ 'त्वया प्रमूर्णम्' प्राजापत्यानुष्टुप्[1]। ४८ 'तस्यादहनम्'[2] आच्यनुष्टुप्। ५० 'क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति' साम्नी बृहती। ५४ 'ओषन्तो समोषन्ती' इति द्वे प्राजापत्योष्णिहौ। ५६ 'आ दत्से जिनताम्' आसुरीगायत्री। ६० 'अघ्न्ये प्र शिरः' इति गायत्री ॥

१२।५। प० ७।

६२ 'वृश्च प्र वृश्च' इति द्वादशकम्। आद्यास्तिस्रः, ६६ 'वज्रेण शतपर्वणा', ६८ 'लोमान्यस्य' इति तिस्रः प्राजापत्यानुष्टुभः। ६५ 'एवा त्वं देवि' गायत्री। ६७ 'प्र स्कन्धान्' इति प्राजापत्या गायत्री। ७१ 'सर्वास्याङ्गा पर्वाणि' आसुरी पंक्तिः। ७२ 'अग्निरेनं क्रव्यात्' इति प्राजापत्यात्रिष्टुप्। ७३ 'सूर्य एनम्' आसुर्युष्णिगिति ॥११॥



१. सब मूल पुस्तकों में 'अनुष्टुभम्' पाठ है।

२. बी. आर्ची।

अथ त्रयोदशं काण्डम्

१३।१।१ 'उदेहि वाजिन्' इति काण्डं ब्रह्माध्यात्मं रोहितादित्यदेवत्यं त्रैष्टुभम् । ३ 'यूयमुग्रा' इति तिस्रः, ९ 'यास्ते रुहः', १२ 'सहस्रश्रृङ्गः', १५ 'आ त्वा रुरोह' इति जगत्यः । ८ 'वि रोहितो' भुरिक् । ३ 'यूयमुग्रा' इति मारुती । १५ 'आ त्वा रुरोह' इत्यति जागतगर्भा परा, १७ 'वाचस्पते पृथिवी' इति ककुम्मती जगत्यौ । १३ 'रोहितो यज्ञस्य' इत्यति शाक्वरगर्भाति जगती । १४ 'रोहितो यज्ञम्' इति त्रिपदा पुरः पर[1]शाक्वरा विपरीतपाद[2]लक्ष्मा पंक्तिः । १८ 'वाचस्पत ऋतवः' इति पर शाक्वर परा[3] परातिजागतोभे पञ्चपदे ककुम्मत्याद्यतिजगत्यौ, पूर्वा भुरिगिति ॥१२॥

२१ 'यं त्वा' इत्यार्षी निचृद्गायत्री । २२ 'अनुव्रता' इति द्वे प्रकृते । २६ 'रोहितो दिवमारुहत्' इति विराट् परोष्णिक्, परा प्रकृतिः[4] । २८ 'समिद्धो अग्निः' इति चतस्र आग्नेय्यस्तत्राद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः । पूर्वा भुरिक् । तुरीया बहुदेवत्या पञ्चपदा ककुम्मती शाक्वरगर्भा जगतीपरानुष्टुप् । ३५ 'ये देवा राष्ट्रभृतः' इत्युपरिष्टाद्बृहती । ३६ 'उत् त्वा यज्ञाः' निचृन्महाबृहती । ३७ 'रोहिते द्यावापृथिवी' परशाक्वरा विराडति जगती । ३९ 'अमुत्र सन्निह' इति द्वे अनुष्टुभावेकपदी विराड् जगती । ४३ [5]'आरोहन् द्याम्' इति विराण्महाबृहती । ४४ 'वेद तत् ते' इति परोष्णिक् । ४५ 'सूर्यो द्याम्' इति षट्, ५१ 'यं वातः' इति

---

१. घ. परा ।
२. ङ. ह्वि. लक्ष्म्या ।
३. घ. क. पर ।
४. मूल लेखों में 'प्रकृता' है ।
५. १३।१।४१, ऋ० १।१६४।१७ में है ऋषि दीर्घतमा है ।

षडनुष्टुभः। ५२ 'वेदिं भूमिम्', ५५ 'स यज्ञः' इति पथ्यापंक्ती। द्वितीया ककुम्मती बृहतीगर्भा। ५७ 'यो मा' इति ककुम्मती। [1]५९ 'मा प्र गाम' इति द्वे गायत्र्याविति ॥१३॥

१३।२।१ 'उदस्य केतवः' अनुष्टुप्। २ 'दिशां प्रज्ञानाम्' इति द्वे, ८ 'सप्त सूर्यः' इति जगत्यः। १० 'उद्यन् रश्मीन्' इत्यास्तार पंक्तिः। [2]११ 'पूर्वापरम्' इति बृहतीगर्भा। १२ 'दिवि त्वात्' इति चतस्रोऽनुष्टुभः। [3]१६ 'उदु त्यं जातवेदसम्' इति नवार्ष्यो गायत्र्यः। २५ 'रोहितो दिवम्' इति ककुम्मत्यास्तार पंक्तिः। [4]२६ 'यो विश्वचर्षणिः' इति पुरो द्व्यति जागता भुरिग्जगती। [5]२७ 'एकपाद्द्विपदः' इति विराड्जगती। [6]२९ 'बण्महाँ असि' इति बार्हतगर्भानुष्टुप्। ३० 'रोचसे दिवि' इति पञ्चपदोष्णिग्बृहतीगर्भाति जगती। ३४ 'चित्रं देवानां केतुः' इत्यार्षीपंक्तिः[7]। ३७ 'दिवस्पृष्ठे' इति पंचपदा विराड्गर्भा जगती। [8]३९ 'रोहितः कालः' इति द्वे, ४१ 'सर्वा दिशः' इत्यनुष्टुभः। ४३ 'अभ्यन्यदेति' इति जगती। ४४ 'पृथिवी प्रः'

---

१. १३।१।५९, ६० ऋ० १०।५७।१, २ में है। बन्धुः, सुबन्धुः, श्रुतबन्धुः और विप्रबन्धु गोपायन के पुत्र ऋषि हैं।

२. १३।२।११ ऋ० १०।८५।१८ में है ऋषि सूर्यासावित्री है।

३. १३।२।१६ से २४ पर्यन्त ऋ० १।५०।१-९ में है ऋषि प्रस्कण्व काण्व है। यही मन्त्र अथर्व० २०।४७।१३-२१ में भी हैं।

४. १३।२।२६ ऋ० १०।८१।३ में भेद से है ऋषि विश्वकर्म्मा भौवन है।

५. १३।२।२७ ऋ० १०।११७।८ में है ऋषि भिक्षुः है। देवता—धनान्न दान प्रशंसा है।

६. १३।२।२९ ऋ० ८।१०१।११ में है ऋषि जमदग्नि भार्गव है।

७. १३।२।३५ ऋ० १।११५।१ में है ऋषि कुत्स आङ्गिरस है।

८. १३।२।३८ अथर्व० १०।८।१८ तथा १३।३।१४ में आया हुआ है।

इति चतुष्पदा पुरः शाक्वरा । ४५ 'पर्यस्य' इत्यति जागतगर्भा, पूर्वाभुरिगुभे जगत्याविति[1] ॥१४॥

१३।३।१ 'य इमे द्यावापृथिवी' इति चतुरवसानाऽष्टपदा-कृतिः । २ 'यस्माद् वाताः' इति तिस्रस्त्र्यवसानाः षट्पदाः पूर्वे द्वे अष्टो तत्र पूर्वा भुरिक्, तृतीयातिशाक्वरगर्भा धृतिः । ५ 'यस्मिन् विराट्' इति तिस्रश्चतुरवसानाः सप्तपदाः । पूर्वे द्वे शाक्वराति शाक्वरगर्भे प्रकृती तृतीयानुष्टुब्गर्भातिधृतिः । ८ 'अहोरात्रैः' इति त्र्यवसाना षट्पदात्यष्टिः । [2]९ 'कृष्णं नियानम्' इत्येकादश चतुरवसाना आद्याश्चतस्रः, [3]१५ 'अयं स देवः', १७ 'येनादित्यान्' इति सप्तपदा भुरिगति धृतयः । १५ 'अयं स देवः' इति निचृत् । १७ 'येनादित्यान्' इति कृतिः । १३ 'स वरुणः', १४ 'सहस्राह्म्यम्', १६ 'शुक्रं वहन्ति', १८ 'सप्त युञ्जन्ति' १९ 'अष्टधा युक्तः' इत्यष्टपदाः । पूर्वे द्वे विकृती परास्तिस्र आकृतयोऽन्त्या भुरिक् । २० 'सम्यञ्चं तन्तुम्', २२ 'वि य और्णोत्' इति त्र्यवसाने षट्पदे अत्यष्टी । २१ 'निम्रुचस्तिस्रः', २३ 'त्वमग्ने क्रतुभिः' इति तिस्रश्चतुरवसाना अष्टपदाः । २४ 'य आत्मदा' इति सप्तपदा, प्रथमा कृतिः । २३ 'त्वमग्ने', २५ 'एकपाद्द्विपदः' इति विकृतिः । २४ 'य आत्मदा' इति कृतिः ॥१५॥

१३।४। प० १ ।

१ 'स एति' इति षट्पर्य्याया मन्त्रोक्तदेवत्यास्तत्राद्यास्त्रयोदश । प्रथमा एकादश प्राजापत्यानुष्टभः । १२ 'तमिदं निगतम्' इति विराड्गायत्री । १३ 'एते अस्मिन्' इत्यासुर्युष्णिक् ॥

---

१. १३।२।४६ ऋ० ५।१।१ में है ऋषि बुधगविष्ठिरावात्रेया है ।

२. १३।३।९ ऋ० १।१६४।४७ में है ऋषि दीर्घतमा है तथा अथर्व० ६।२२।१ और ९।१०।२२ में भी यह मन्त्र है ।

३. १३।३।१४ अथर्व १३।२।३८ में आ चुका है ।

१३।४। प० २।

१४ 'कीर्तिश्च' इत्यष्टौ। पूर्वा भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्। १५ 'य एतं देवम्' आसुरीपंक्तिः। १६ 'न द्वितीयः', १९ 'स सर्वस्मै' प्राजापत्यानुष्टुभौ। १७ 'न पञ्चमः', १८ नाष्टमः', आसुरीगायत्र्यौ॥

१३।४। प० ३।

२२ 'ब्रह्म च' इति सप्त, तत्र द्वे भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप्। २३ 'भूतञ्च' आर्चीगायत्री। २५ 'स एव मृत्युः' एकपदासुरी गायत्री। [1]२६ 'स रुद्रः' इत्यार्षी गायत्री। २७ 'तस्येमे' द्वे प्राजापत्यानुष्टुभौ॥

१३।४। प० ४।

२९ 'स वा अह्नः' सप्तदश तत्र प्रथमासुरी गायत्री। ३० 'स वैरात्र्याः' प्राजापत्यानुष्टुप्[2]। ३१ 'स वा अन्तरिक्षात्' विराड्-गायत्री। ३२ 'स वै वायोः' प्राजापत्यानुष्टुप्। ३३ 'स वै दिवः' इत्यासुरी गायत्री। ३४ 'स वै दिग्भ्यः' साम्न्युष्णिक्। ३५ 'स वै भूमेः', ३६ 'स वा अग्नेः' प्राजापत्यानुष्टुभौ। ३७ 'स वा अद्भ्यः', ३८ 'स वा ऋग्भ्यः' साम्न्युष्णिगनुष्टुभौ। ३९ 'स वै यज्ञात्', ४० 'स यज्ञस्तस्य' इत्यासुरी गायत्र्यौ। ४१ 'स स्तनयति' साम्नीबृहती। ४२ 'पापाय वा' प्राजापत्यानुष्टुप्[3]। ४३'यद्वा कृणोषि' आर्षीगायत्री। ४४ 'तावांस्ते' साम्न्यनुष्टुप्। ४५ 'उपो ते' इत्यासुरी गायत्रीति॥१६॥

---

१. १३।४। प० ३।२६ ह्वि० ने यहां अर्ची अनुष्टुभ छन्द लिखा है जो कि किसी मूलग्रन्थ में नहीं है।

२. मूल पुस्तकों में 'भं' पाठ है।

३. मूल पुस्तकों में पाठ अनुष्टुभं है।

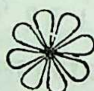
१३।४। प० ५ ।

४६ 'भूयानिन्द्रः' इति षट् प्रथमासुरीगायत्री । ४७ 'भूयानरात्याः' यवमध्या गायत्री । ४८ 'नमस्ते अस्तु' साम्न्युष्णिक् । ४९ 'अन्नाद्येन' निचृत्साम्नीबृहती । ५० 'अम्भो अमः' प्राजापत्यानुष्टुप्[1] । ५१ 'अम्भो अरुणम्' विराड्गायत्री ॥

१३।४। प० ६ ।

५२ 'उरुः पृथुः' इति पंच । आद्या, ५३ 'प्रथो वरः' प्राजापत्यानुष्टुभौ । ५४ 'भवद्वसुः' इति द्विपदार्षी गायत्रीति ॥१७॥

इति श्री ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायाम् अष्टमः[2] पटलः समाप्तः ॥



१. मूल पुस्तकों में 'भे' है ।
२. मूल लेखों में 'अष्टः' है ।

अथ चतुर्दशं काण्डम्

१४।१। [1] १ 'सत्येन' इति सैकोनचत्वारिंश[2]च्छतम् । द्वयानुवाकं काण्ड सावित्री सूर्यात्मदैवतमानुष्टुभम् । प्रथमाभिः पञ्चभिः सोममस्तौत्, पराभिः स्वविवाहं शत[3]तस्या देवांस्त्रयोविंशति । कया सोमार्कौ, परया चन्द्रमसं, परया नृणां विवाहमंत्राशिषः [4]पराशिषः । २५ 'परा देहि', २७ 'अश्लोला तनूः' इति द्वे वधूवासः संस्पर्शमोचन्यौ ॥

२।१० 'येवध्वः' इति यक्ष्मनाशनीः । परा दम्पत्योः परिपंथनाशनी । १४ 'यदश्विना' इति विराट्प्रस्तारपंक्तिः । ५५ 'बृहस्पतिः प्रथमः', २६ 'तृष्टमेतत्' इति पुरस्ताद्बृहत्यौ । १५ 'यदयातम्' इत्यास्तारपंक्तिः । १६ 'प्र त्वा मुञ्चामि', २० 'भगस्त्वेतः', २३ 'पूर्वापरम्', २४ 'नवो नवः', ३१ 'युवं भगम्' इति तिस्रः, ३७ 'यो अनिध्मः', ४० 'शं ते हिरण्यम्', ४५ 'या अकृन्तन्', ४७ 'स्योनं ध्रुवम्' ४६ 'देवस्ते' इति द्वे, ५३ 'त्वष्टा वासः', ५६ 'इदं तद्रूपम्' इति द्वे, २।४६ 'यावतीः कृत्याः', २।६१ 'यज्जामयः' २।७०, 'सं त्वा नह्यामि' २।७४ 'येदं पूर्वा'

---

१. इस काण्ड में दो अनुवाक हैं। प्रथमानुवाक की ऋचायें ६४ और दूसरे की ७५ हैं। दोनों अनुवाकों की ऋचा मिलाकर ही यहां मूल में 'एकोनचत्वारिंशच्छतम्' है। १३९ ऋचायें बनती हैं। पञ्चपटलिका में भी ऐसे ही लिखा है "आद्यः सौर्यश्चतुष्षष्टिः पञ्चसप्ततिरुत्तरः' (पं० प० ४।१७) प्रथम सूर्य देवता वाला ६४ ऋचाओं का और दूसरा ७५ ऋचाओं वाला सूक्त है। इस पुस्तक में दोनों अनुवाकों की समग्र ऋक्संख्या प्रथम दे देने का क्रम इसी स्थल में देखा है अन्य किसी भी काण्ड में एसी बात पहले नहीं लिखी गयी। १४।१ सूक्त के बहुत से मन्त्र ऋ० १०। ८५ सूक्त में हैं ऋषि सूर्या सावित्री है।

२. ङ. के विना अन्य सब मूल पुस्तकों में दृचं पढ़ा जाता है। ह्वि० ने पाठ ङ. का दिया है।

३. समग्र मूल लेखों में पाठ 'तस्या' है परन्तु ह्वि० ने पाठ 'तस्या' लिखा है।

४. ङ. और ह्वि० में पराशिषः पाठ नही है।

इति द्वे त्रिष्टुभ इति । २३ 'पूर्वापरं', ३१ 'युवं भगम्' ४५ 'या अकृन्तन्' २।२४ 'आरोह चर्म' इति द्वे, २।३२ देवा अग्रे' २।३४ 'अप्सरसः सधमादम्', २।३६ 'राया वयम्', २।३८ 'तां पूषम्', ६० 'भगस्ततक्ष' इति परानुष्टुभः । पराविल्येधिषीमहि इति व्याघ्रादिष्ववगन्तव्यः । प्रियं जीवं रुदन्ति विनयन्तीन्द्राग्नी द्यावापृथिवी ब्रह्मा परमा वामगन्निति द्वे संकाशयाम्या ॥

१४।२।

३१ 'आरोह तल्पम्' । ६९ 'आ रोहोरुम्' इति, ३७ 'सं पितरावृत्विये' इति जगत्यः । तात इन्द्राग्नी ब्रह्मा परमा ३१'आ रोहोरु', ३७ 'सं पितरौ' भुरिक् त्रिष्टुभः । १।३४'अनृक्षराः', ३४ 'नवं वसानः', इति प्रस्तारपंक्ती[1] । ३५ 'नमो गन्धर्वस्य' इति पुरोबृहती त्रिष्टुप् । ४३ 'स्योनाद्योनेः' इति त्रिष्टुबगर्भापंक्तिः । ४८ 'अपास्मत्' इति सतः पंक्तिः । ५९ 'यदीमेकेशिनः' इति द्वे, ६२ 'यत् ते प्रजायाम् इति पथ्यापंक्तयः । ९ 'इदं सु मे' इति त्र्यवसाना षट्पदा विराडत्यष्टिरिति ॥२॥

१।३८ 'इदमहम्' इति पुरोबृहती त्रिपात्परोष्णिक् । २।५२ 'उशतीः कन्यला' इति विराट्परोष्णिक् । १५'प्रति तिष्ठ', ५१ 'ये अन्ताः' इति भुरिजौ । २० 'यदा गार्हपत्यम्' इति पुरस्ताद्बृहती । ३३ 'उत्तिष्ठेतः' इति विराडास्तारपंक्तिः । ६९ 'अङ्गादङ्गात्' इति त्र्यवसाना षट्पदातिशक्वरी । ७१ 'अमोहमस्मि' इति बृहती । स हृदयमित्यथर्वा सौम्यमानुष्टुभम् । 'मा नो अग्न' इति पतिवेदनः सौम्यं त्रैष्टुभम् । विहित्र्यधिकैन्द्रोवृषाकपि इन्द्राणीन्द्रस्य समूदिरेपांक्तमित्येष सौर्यं विवाह इति ॥३॥



---

१. मूल पुस्तकों में 'पंक्तिः' ।

अथ पञ्चदशं काण्डम्

१५। प० १।

१ 'व्रात्य आसीत्' इति काण्डमष्टादश पर्यायाः। अध्यात्मकं मन्त्रोक्तदेवत्या उत व्रात्य दैवतमाद्योऽष्टौ। तत्र पूर्वा साम्नीपंक्तिः। २ 'स प्रजापतिः सुवर्णम्' इति द्विपदा साम्नी बृहती। ३ 'तदेकम्' एकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्। ४ 'सोवर्धत स महान्' एकपदा विराड्गायत्री। ५ 'स देवानामीशाम्' साम्न्यनुष्टुप्। ६ 'स एकव्रात्यः' त्रिपदा प्राजापत्या बृहती। ७ 'नीलमस्य' आसुरीपंक्तिः। ८ 'नीलेनैव' इति [1]त्रिपदानुष्टुबिति ॥४॥

१५। प० २।

१ 'स[2] उदतिष्ठत्' इति द्व्यूनात्रिंशत्। आद्या ६ 'स दक्षिणां', १५'स प्रतीचीं', २१'स उदीचीं', ६ 'भूतं च' २६ 'श्रुतं च' साम्न्यनुष्टुभः[3]। २ 'तं बृहच्च', १६ 'तं वैरुपम्', २२ 'तं श्यैतं' साम्नीत्रिष्टुभः[4]। ३ 'बृहते च' द्विपदार्षीपंक्तिः। ४'बृहतश्च', १८ 'वैरूपस्य', २४ 'श्यैतस्य च, द्विपदा ब्राह्मी गायत्र्यः[5]। ५ 'श्रद्धा पुंश्चली', १३ 'उषाः', १९ 'इरा' विराट्। २५ 'विद्युत्' इति द्विपदार्ची [6]जगती। १४ 'अमावास्या च' साम्नीपङ्क्तिः। २० 'अहश्च' आसुरीगायत्री। २७ 'मातरिश्वा च' पदपंक्तिः। २८ 'कीर्त्तिश्च' त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप्। १० 'तं यज्ञायज्ञियम्' एकपदोष्णिक्। ११ 'यज्ञायज्ञियाय च' द्विपदार्षी भुरिक्

१. ङ. 'त्रिपाद'।

२. घ० 'उदिति'।

३. क. घ. 'भं'।

४ सब मूल पुस्तकों में 'साम्नीत्रिष्टुप्' पाठ है। बहुवचनान्त पाठ कल्पित है।

५. मूल पुस्तकों में 'गायत्री' है।

६. बी. के विना सब में 'जगत्यः' है।

त्रिष्टुप् । १२ यज्ञायज्ञियस्य च' आर्षीपरानुष्टुप् । १७ 'वैरूपाय च' द्विपदा विराडार्षीपंक्तिः । २३ 'श्यैताय च' निचृदार्षीपंक्तिरिति ॥५॥

१५ । प० ३ ।

१ 'स संवत्सरम्' एकादश । प्रथमा पिपीलिकमध्यागायत्री । २ 'सोऽब्रवीत्' साम्न्युष्णिक् । ३ 'तस्मै व्रात्याय' याजुषी जगती । ४ 'तस्या ग्रीष्मश्च' आर्ची द्विपदोष्णिक् । ५ 'बृहच्च रथन्तरं च' आर्ची बृहती । ६ 'ऋचः प्राञ्चः' आसुर्यनुष्टुप् । ७ 'वेद आस्तरणम्' साम्नीगायत्री । ८ 'सामासाद' आसुरीपंक्तिः । ९ 'तामासन्दीम्' आसुरी जगती । १० 'तस्य देवजनाः' प्राजापत्या त्रिष्टुप् । ११ 'विश्वान्येवास्य' विराड्गायत्रीति ॥६॥

१५ । प० ४ ।

१'तस्मै प्राच्या दिशः' इति द्व्यूनाविंशतिः प्रथमा । १'तस्मै प्राच्याः', १३ 'ध्रुवायाः', १८ 'ऊर्ध्वायाः' दैवीजगत्यः[1] । ४ 'दक्षिणायाः', ७ 'प्रतीच्याः', १० 'उदीच्याः' प्राजापत्या गायत्र्यः । २'वासन्तौ मासौ', ८ 'वार्षिकौ मासौ' आर्च्यनुष्टुभौ । ३ 'वासन्तावेनं', १२ 'शारदावेनं' द्विपदे[2] प्राजापत्याजगत्यौ[3] । ५'ग्रैष्मौ मासौ' प्राजापत्या पंक्तिः । ६ 'ग्रैष्मावेनं' आर्चीजगती । ९ 'वार्षिकावेनम्' भौमार्ची त्रिष्टुप् । ११ 'शारदौ मासौ' साम्नीत्रिष्टुप् । १४ 'हैमनौ मासौ' प्राजापत्या बृहती । १५ 'हैमनावेनम्', १८ 'शैशिरावेनम्' इति द्विपदे आर्ची पंक्ती । १७ शैशिरौ मासौ' आर्ष्युष्णिगिति ॥७॥

---

१. ड. जगत्यौ ।

२. मूल पुस्तकों में 'द्विपदा' है ।

३. मूल पुस्तकों में जगती है ।

१५ । प० ५ ।

१ 'तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशात्' इति षोडश । मन्त्रोक्त रुद्रदेवत्याः । 'प्रथमा' त्रिपदा समविषमा गायत्री । २ 'भव एनम्' त्रिपदा भुरिगार्ची त्रिष्टुप् । ३ 'नास्य पशून्' द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्, १६ 'हिनस्ति', [1]व्याघ्रादिष्ववगन्तव्यः ।

४ 'तस्मै दक्षिणायाः' त्रिपदा स्वराट् प्राजापत्या पंक्तिः । ५ 'शर्वः', ७ 'पशुपतिः', ९ 'उग्रः', १३ 'महादेव एनम्' त्रिपदा ब्राह्मी गायत्र्यः । ६ 'तस्मै प्रतीच्याः', ८ 'तस्मा उदीच्याः' १२ 'तस्मा ऊर्ध्वायाः' इति त्रिपदाः ककुभः । १४ 'तस्मै सर्वेभ्यः' इति भुरिग्विषमा गायत्री[2] । ११ 'रुद्र एनम्' निचृद्ब्राह्मी गायत्री । १५ 'ईशान एनम्' विराडिति ॥८॥

१५ । प० ६ ।

१ 'स ध्रुवाम्' इति षड्विंशतिः । आद्या, ४ 'स ऊर्ध्वाम्' आसुरीपंक्तिः । ७ 'स उत्तमां', १० 'स बृहतीं', १३ 'स परमां', १६ 'सोनादिष्टाम्', २४ 'स सर्वान्' इत्यासुरीबृहत्यः । २२ 'स दिशः' परोष्णिक् । २ 'तं भूमिः', १७ 'तमृतवः' इत्यार्चीपंक्ती । १९ 'सोनावृत्ताम्' आर्च्युष्णिक् । ५ 'तमृतं च', ११ 'तमितिहासः' साम्नी त्रिष्टुभौ । १७ 'तमृतवश्च' साम्नीपंक्तिः । १४ 'तमाहवनीयः', २३ 'विराजश्च' आर्चीत्रिष्टुभौ । २० 'तं दितिः' साम्न्यनुष्टुप् । २५'तं प्रजापतिः' आर्च्यनुष्टुप् । ३'भूमेश्च वै' आर्षी पंक्तिः । ६ 'ऋतस्य च', १२ 'इतिहासस्य च' निचृद्-

---

१. इसका छन्द नहीं दिया, केवल इतना ही कहा है कि व्याघ्रादियों में जानना ।

२. मूल पुस्तकों में गायत्र्यः है ।

बृहत्यौ । ६ 'ऋचां च' प्राजापत्या त्रिष्टुप् । १५ 'आहवनीयस्य च', १८ 'ऋतूनां च' विराड्जगत्यौ । २१ 'दितेश्च वै' आर्ची बृहती । २६ 'प्रजापतेश्च' विराड्बृहतीति ॥६॥

१५ । प० ७ ।

१ 'स महिमा' इति पञ्चकः[1] । आद्या त्रिपदा निचृद्गायत्री । २ 'तं प्रजापतिः' इत्येकपदा विराड्बृहती । ३ 'ऐनमापः' इति विराडुष्णिक् । ४ 'तं श्रद्धा च' एकपदा गायत्री । ५ 'ऐनं श्रद्धा गच्छति' पंक्तिः ॥

१५ । प० ८ ।

१ 'सोरज्यत' ॥

१५ । प० ६ ।

१ 'स विशः' इति द्वौ त्रिकौ ॥

१५ । प० ८ ।

तत्राद्यस्याद्या साम्न्युष्णिक् । २ 'स विशः सबन्धूनन्नम्' प्राजापत्यानुष्टुप् । ३ 'विशां च वै स' आर्चीपंक्तिः ॥

१५ । प० ६ ।

१ 'स विशः' आसुरी जगती । २ 'तं सभा च' आर्चीगायत्री । ३ 'सभायाश्च' आर्चीपंक्तिरिति ॥१०॥

१५ । प० १० ।

१ 'तद्यस्य' इति त्रयः पर्याया एकादशकाः । आद्यस्याद्या द्विपदा साम्नी बृहती । २ 'श्रेयांसमेनम्' इति त्रिपदार्चीपंक्तिः । ३ 'अतो वै ब्रह्म' प्राजापत्या द्विपदा पंक्तिः । ४ 'बृहस्पतिमेव'

१. सब मूल लेखों में पाठ पञ्चका है शं० पा० ने सायणाथर्व भाष्य भूमिका में पञ्चकः दिया है। हमने भी उसी का अनुकरण किया है।

त्रिपदा वर्धमाना गायत्री । ५ 'अतो वै बृहस्पतिं' त्रिपात्साम्नी-बृहती । ६ 'इयं वा उ', ८ 'ऐनं ब्रह्म', १० 'ऐनमिन्द्रियम्' इति द्विपदा आसुरीगायत्र्यः । ७ 'अयं वा उ', ९ 'यः पृथिवीं' साम्न्युष्णिहौ । ११ 'य आदित्यम्' आसुरी बृहतीति ॥११॥

१५ । प० ११ ।

१ 'व्रात्योऽतिथिः' दैवीपंक्तिः । २ 'स्वयमेनम्' द्विपदा पूर्वा त्रिष्टुबति शक्वरी । ३ 'यदेनमाह व्रात्य क्वावात्सीः' ४ 'व्रात्योदकम्', ५ 'व्रात्य तर्पयन्तु' द्वे, ८ 'ते वशः', १० 'यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामः' इति निचृदार्चीबृहत्योऽन्त्या भुरिक् । ७ ऐनं प्रियम्' ९ 'ऐनं वशः' इति[1] द्विपदे प्राजापत्याबृहत्यौ । ११ 'ऐनं निकामः' इति द्विपदार्च्यनुष्टुप् ॥

१५ । प० १२ ।

१ 'व्रात्य उद्धृतेषु' त्रिपदागायत्री । २ 'स्वयमेनम्' प्राजापत्या बृहती । ३ 'स चातिसृजेत्' इति द्वे प्राजापत्यानुष्टुभौ । द्वितीया साम्नी तथोभे भुरिजौ । ५ 'प्र पितृयाणम्' इति द्वे, ९ 'न पितृयाणम्' इति द्वे आसुरीगायत्र्यः । ८ 'अथ य एवम्' इति विराड्गायत्री । ११ 'नास्यास्मिन्' ७ 'पर्यस्यास्मिन्' इति त्रिपादौ प्राजापत्या त्रिष्टुभाविति ॥१२॥

१५ । प० १३ ।

१ 'व्रात्य एकाम्' इति चतुर्दश आद्या साम्न्युष्णिक् । २ 'ये पृथिव्याम्' ६ 'ये दिवि' प्राजापत्यानुष्टुभौ । ३ 'व्रात्यो द्वितीयां' ५ 'तृतीयां', ७ 'चतुर्थीं' आसुरीगायत्र्यः । ४ 'येऽन्तरिक्षे', ८ 'ये पुण्यानां' साम्नी बृहत्यौ । ७ 'तद् यस्यैवं विद्वान्', ९ 'व्रात्यो

१. मूल पुस्तकों में द्विपदा प्राजापत्या बृहती है ।

परिमिता' इति[1] द्विपदे निचृद्गायत्र्यौ। १० 'एवापरिमिताः' इति द्विपदा विराड्गायत्री। ११ 'अथ यस्याव्रात्यः' प्राजापत्या-पंक्तिः। १२ 'कर्षेदेनम्' आसुरी जगती। १३ 'अस्यै देवताया उदकम्' सतः पंक्तिः। १४ 'तस्यामेव' अक्षरपंक्तिरिति ॥१३॥

१५। प० १४।

१ 'स यत् प्राचीम्' इति चत्वारिंशतिश्चैव सप्तमः। प्रथमा त्रिपदानुष्टुप्। २ 'मनसान्नादेन' प्रभृति सर्वा उत्तरा द्विपदा आसुरीगायत्र्योऽष्टौशेषाश्चतस्रः। १२ 'ओषधीभिः' इत्याद्याः १८ 'वषट्कारेणान्नादेनः' प्राजापत्यानुष्टुभो भुरिजः। ३ 'स यद्दक्षिणां', ६ 'ध्रुवां' पुर उष्णिहौ। ५ 'प्रतीचीं' अनुष्टुप्। ७ 'उदीचीं' प्रस्तारपंक्तिः ११ 'स यत् पशून्' स्वराड्गायत्री। १३ 'यतिपतृन्' १५ 'यन्मनुष्यान्' आर्चीपंक्ती। १९ 'यद् देवान्' भुरिङ्नागीगायत्री। २१ 'यत् प्रजाः' प्राजापत्या त्रिष्टुबिति।१४॥

१५। प० १५।

१ 'तस्य व्रात्यस्य' इत्यष्टमं नवकं विद्यात्। आद्या दैवी-पंक्तिः। २ 'सप्त प्राणाः' आसुरीबृहती। ३ 'योस्य प्रथमः', ४ 'द्वितीयः' ७ 'पञ्चमः' ८ 'षष्ठः प्राणः' प्राजापत्यानुष्टुभस्ति-स्रोभुरिजः। ५ 'योस्य तृतीयः' ६ 'चतुर्थः प्राणः' द्विपादौ साम्न्यौ बृहत्यौ। ९ 'योस्य सप्तमः प्राणः' विराड्गायत्री ॥

१५। प० १६।

१ 'प्रथमोपानः' इति नवमस्तु सप्तकः[2]। आद्या ३'तृतीयो-पानः' इति साम्न्युष्णिहौ। २ 'द्वितीयोपानः', ४ 'चतुर्थोपानः',

१. सब मूल पुस्तकों में द्विपदा निचृद्गायत्री हैं।

२. क. बी. सप्तकस्य।

५ 'पञ्चमः' प्राजापत्योष्णिहः । ६ 'षष्ठः' याजुषी त्रिष्टुप् ७ 'सप्तमः' आसुरी गायत्री ॥१५॥

१५ । प० १७ ।

१ 'अस्य प्रथमो व्यानः' इति दश दशममाद्या । ५ 'अस्य पञ्चमो व्यानः' इति प्राजापत्योष्णिहौ । २ 'अस्य द्वितीयः', ७ 'अस्य सप्तमः' इत्यासुर्यनुष्टुभौ । ३ 'अस्य तृतीयः' याजुषी-पंक्तिः । ४ 'अस्य चतुर्थः' साम्न्युष्णिक् । ६ 'अस्य षष्ठः' याजुषी त्रिष्टुप् । ८ 'समानमर्थम्' त्रिपदा प्रतिष्ठार्चीपंक्तिः । ९ 'यदादित्यम्' । द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप् । १० 'एकं तदेषाम्' साम्न्यनुष्टुप् ॥

१५ । प० १८ ।

१ 'तस्य व्रात्यस्य' इति पञ्चको दशमात्परः । आद्या दैवी-पंक्तिः । २'यदस्य दक्षिणम्' ३ 'योस्य दक्षिणः' इत्यार्चीबृहत्यौ । ४ 'अहोरात्रे नासिके' आर्च्यनुष्टुप् । ५ 'अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यः' साम्न्युष्णिगिति ॥१६॥



अथ षोडशं काण्डम्

१६। प० १।

१ 'अतिसृष्टो अपाम्' इति प्राजापत्यस्य नव पर्यायास्तत्र त्रयोदशाद्यं विजानीयात्। आद्या, ३ 'ओको मनोहा' द्विपदा साम्नीबृहत्यौ। २ 'रुजन् परि' याजुषीत्रिष्टुप्। ४ 'इदं तमति-सृजामि' आसुरीगायत्री। ५ 'तेन तम्' इति द्विपदा साम्नी-पंक्तिः। ६ 'अपामग्रमसि' साम्न्यनुष्टुप्। ७ 'यो३ऽप्स्वग्निः' निचृ-द्विराड्गायत्री। ८ 'यो व आपोऽग्निः' साम्नीपंक्तिः। ९ 'इन्द्रस्य वः' आसुरीपंक्तिः। १० 'अरिप्रा आपः' याजुषी त्रिष्टुप्। ११ 'प्रास्मदेनः' साम्न्युष्णिक्। १२ 'शिवेन मा', १३ 'शिवा-नग्नीन्' आर्च्यनुष्टुभाविति ॥१७॥

१६। प० २।

१ 'निर्दुरर्मण्य' इति द्वौ षट्कौ, सप्तकः परः। पूर्वो वाग्दे-वत्य उत्तरौ ब्रह्मादित्यदैवत्यौ। १ 'निर्दुरर्मण्य' आसुर्यनुष्टुप्। २ 'मधुमती स्थ' आसुर्युष्णिक्। ३ 'उपहूतो मे' साम्न्युष्णिक्। ४ 'सुश्रुतौ कर्णौ' त्रिपदा साम्नीबृहती। ५ 'सुश्रुतिश्च' आर्च्य-नुष्टुप्। ६ 'ऋषीणां प्रस्तरोसि' निचृद्विराड्गायत्रीति ॥१८॥

१६। प० ३।

१ 'मूर्धाहम्' आसुरीगायत्री। २ 'रुजश्च मा', ३ 'उर्वश्च' आर्च्यनुष्टुभौ। ४ 'विमोकश्च' प्राजापत्या त्रिष्टुप्। ५ 'बृहस्प-तिर्मे' साम्न्युष्णिक्। ६ 'असंतापं मे' द्विपदा साम्नीत्रिष्टुप्॥

१६। प० ४।

१ 'नाभिरहम्', ३ 'मा मां प्राणः' साम्न्यनुष्टुभौ। २ 'स्वा-सदसि' साम्न्युष्णिक्। ४ 'सूर्यो माह्नः' त्रिपदानुष्टुप्। ५ 'प्राणा-

पानौ मा मा' आसुरी गायत्री। ६ 'स्वस्त्यद्योषसः' आर्च्युष्णिक्। ७ 'शक्वरी स्थ' त्रिपदाविराड्गर्भानुष्टुबिति ॥१९॥

१६। प० ५।

१ 'विद्म ते' इति त्रयोदुःस्वप्ननाशनदेवत्यास्तान् यमः। आद्यं दशकं तस्याद्यादितः आद्याः षड्विराड्गायत्र्यः। पञ्चमी-भुरिक्। षष्ठी स्वराट्। ९ 'अन्तकोसि' प्राजापत्यागायत्री। १० 'तं त्वा स्वप्न' द्विपदा साम्नीबृहती ॥

१६। प० ६।

[1]१ 'अजैष्माद्या' इत्येकादशोषोदेवत्याः। प्रथमाश्चत्वारः प्राजापत्यानुष्टुभः। ५ 'उषा देवो' साम्नीपंक्तिः। ६ 'उषस्पतिः' निचृदार्षीबृहती। ७ 'ते३मुष्मै' द्विपदा साम्नीबृहती। ८ 'कुम्भी-का' आसुरी जगती। ९ 'जाग्रद्दुःष्वप्न्यम्' आसुरीबृहती। १० 'अनागमिष्यतो वरान्' आर्च्युष्णिक्। ११ 'तदमुष्मा अग्ने' त्रिपदा यवमध्यागायत्री वार्च्यनुष्टुबिति ॥२०॥

१६। प० ७।

१ 'तेनैनम्' इति द्व्यधिकं[2] विहितम्। आद्यापंक्तिः। २ 'देवानामेनम्' साम्न्यनुष्टुप्। ३ 'वैश्वानरस्यैनम्' आसुर्यु-ष्णिक्। ४ 'एवानेवाव' प्राजापत्यागायत्री। ५ 'यो३स्मान् द्वेष्टि तमात्मा' आर्च्युष्णिक्। ६ 'निर्द्विषिन्तं दिवः', ९ 'यददः', ११ 'यदहरहः' साम्नीबृहत्यः। ७ 'सुयामम्' याजुषी गायत्री। ८ 'इदमहमामुष्यायणे' प्राजापत्या बृहती। १० 'यज्जाग्रद् यत्

---

१. १६। प० ६। १ ऋ० ८।४७।१८ के मन्त्र में आता है, ऋषित्रितआप्त्य है।

२. यहां द्व्यधिक पर्य्याय ६ से जानना, पर्य्याय की ऋचाएं ११ हैं और दो अधिक करने से इस ७ पर्य्याय की १३ ऋचाएं बनती हैं।

सुप्तः' साम्नीगायत्री । १२ 'तं जहि तेन' भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप् । १३ 'स मा जीवीत् तम्' आसुरी त्रिष्टुबिति ॥२१॥

१६। प० ८ ।

१ 'जितमस्माकम्' इत्येकादश वै त्रिगुणान्याद्यैकपदा यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप् । २ 'तस्मादमुं निर्भजामोमुम्' त्रिपदा निचृद्-गायत्री । ३ 'स ग्राह्याः पाशात्' प्राजापत्या गायत्री । ४ तस्येदं वर्चस्तेजः' त्रिपदा प्राजापत्या त्रिष्टुप् । ५ 'स निर्ऋत्याः' इति तिस्रः, १२ 'स ऋषीणाम्', २० 'स ऋतूनाम्', २२ 'स मासानाम्' २७ 'स इन्द्राग्न्योः' आसुरी जगत्यः । ८ 'स पराभूत्याः' १० 'स बृहस्पतेः', ११ 'स प्रजापतेः' १४ 'सो अङ्गिरसाम्', १६ 'सोऽथर्वणां', २१ 'स आर्तवानां', १३ 'स आर्षेयाणाम्' आसुरीत्रिष्टुभः। ९ 'स देवजामीनाम्', १५ 'स आङ्गिरसानाम्', १७ 'स आथर्वणानाम्', १८ 'स वनस्पतीनाम्', १९ 'स वानस्पत्यानाम्', २३ 'सोऽर्धमासानाम्' चत्वारः, ३२ 'स मृत्योः' आसुरीपंक्तयः । २८ 'स मित्रावरुणयोः' द्वे आसुरीबृहत्याविति ॥२२॥

१६। प० ९ ।

[1]२ 'जितमस्माकम्' इति परश्चत्वारि वै वचनानि । प्रथमा प्राजापत्यार्च्यनुष्टुप्, २ 'तदग्निः' मन्त्रोक्तबहुदेवत्यमार्च्युष्णिक् ३ 'अगन्म' द्वौ सौर्य्यौ पूर्वः साम्नीपंक्तिः, उत्तरः परोष्णिगिति ॥२३॥

इति श्री ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां नवमः पटलः समाप्तः ॥



१. १६ । प० ९।१ अथर्व १०।५।३६ में आ चुका है ।

अथ सप्तदशं काण्डम्

१७ । १ ।

ओं १ 'विषासहिम्' ऋचस्त्रिंशद्ब्रह्मादित्यदेवत्या जगती । प्रथमा १ 'विषासहिं सहमानम्' इत्यष्टौ त्र्यवसानाः, आद्याश्चतस्रो[1]ऽतिजगत्यः । ६ 'उदिहि' इति द्वे । १९ 'असति सत्' [2]इत्यष्टयः । ८ 'मा त्वा दभन्', ११ 'त्वमिन्द्रासि विश्वजित्' १६ 'त्वं रक्षसे' इत्यतिधृतयः । ९ 'त्वं न इन्द्र महते' इति पञ्चपदा शक्वरी । १०'त्वं न इन्द्रोतिभिः, इति चतस्रः, १६'त्वं रक्षसे' १८ 'त्वमिन्द्रास्त्वं महेन्द्रः' इति द्वे ; २४ 'उदगादयमादित्यः' [3]त्र्यवसाना आद्याष्टपदा धृतिः । १२ 'अदब्धो दिवि' इति कृतिः । १३ 'या त इन्द्र' प्रकृतिः । १४ 'त्वामिन्द्र' इति द्वे पञ्चपदे शक्वर्यौ । १७ 'पञ्चभिः पराङ्' इति पञ्चपदा विराडति शक्वरी । १८ 'त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः' इति भुरिगष्टिः । २४ 'उदगादयमादित्यः' इति विराडत्यष्टिः । १ 'विषासहिम्' इत्यष्टौ[4] षट्पदाः शेषाः सप्तपदाः । २० 'शुक्रोसि' इति ककुप् ।

---

१. बी 'अति' नहीं ।

२. ह्विटने को यहां पाठ में संशय था उसने 'अष्टयः' तथा 'अत्यष्टयः' दोनों पाठ दिये हैं परन्तु हमारे मूल ग्रन्थों में ङ का पाठ 'अत्यष्टयः' है और शेष क. घ. बी. का पाठ 'अष्टयः' है । ऊपर पाठ क. घ. बी. का दिया है ।

३. ह्वि. ने अपने भाष्य में नोट दिया है कि ६-८, १०-१३, १६, १८-१९ तथा २४ हस्तलेख तथा बम्बई संस्करण में तो त्र्यवसानाः है परंच बर्लिन संस्करण में चतुरवसानाः है, हमारे चारों मूल ग्रन्थों में यह त्र्यवसानाः है और यही ठीक है । १७।१।२४ स्वल्प भेद से ऋ० १।५०।१३ में आता है । ऋषि प्रस्कण्वः काण्व है ।

४. मूल में आदि के आठ मन्त्र षट्पद लिखे हैं परञ्च पाठ में आदि के पांच मन्त्र तो षट्पद सिद्ध होते हैं शेष ३ सप्तपद । ह्विटने ने तो यहां यह भी लिखा है कि मूल का पाठ इत्यष्टौ के स्थान पर इति पञ्च चाहिये था ।

२१ 'रुचिरसि' इति चतुष्पादुपरिष्टाद्बृहती । २२ 'उद्यते' इति याजुषी, द्वे द्विपदे, पूर्वानुष्टुबुत्तरा निचृद्बृहती । २५ 'आदित्य नावम्' इति द्वे अनुष्टुभौ । २७ 'प्रजापतेरावृतः', ३० 'अग्निर्मा गोप्ता' इति जगत्यौ । २८ 'परिवृतो ब्रह्मणा' इति द्वे त्रिष्टुभा-विति ॥१॥



अथ अष्टादशं काण्डम्

१८।१।

[1]१ 'ओ चित् सखायम्' इति चतुरनुवाकमष्टाविंशतिसूक्तकं नवर्चं यमदेवत्यं त्रैष्टुभं काण्डमथर्वा मन्त्रोक्तबहुदेवत्यं च।

---

१. हमारी क. घ, ङ. वी. पुस्तकों में पाठ छूटा हुआ है जो कि 'सूक्तकम्' के आगे ह्वि० ने अपने मूल लेखाधार से निज English भाष्य में काण्डारम्भ में दिया है। उसका पाठ यह है 'ओचित् सखायम्' इति चतुरनुवाकमष्टाविंशति सूक्तकं **त्र्यशीति द्विशतं नवत्यर्चम्** (पढ़ो द्विशतर्चम्)। ह्वि० ने बन्धनी में पाठ अपनी ओर से दिया है। 'नवत्यर्चम्' पाठ का कुछ भी पता नहीं लगता। हमारे मूल लेखों में पाठ 'नवर्चम्' है। परञ्च यह तो हमें मानना पढ़ता है कि अवश्य मन्त्र इस काण्ड के २८३ ही हैं न्यूनाधिक नहीं। एक तो ह्वि० वाली अनुक्रमणिका का मूल लेख प्रमाण है तथा दूसरा प्रमाण पञ्चपटलिका से भी यही मिलता है।

एकषष्टिश्च षष्टिश्च सप्ततिस्त्र्यधिकात् परः।
एकोननवतिश्चैव यमेषु विहिता ऋचः। ७।१७

अनु० में भी प्रत्येक अनुवाक में गणना की है. और परिणाम पटलिकावत् है। इसमे तो सिद्ध ही है. कि यहां ऋचाएं २८३ ही चाहियें और प्रकाशित अथर्व संहिताओं के भी चारों अनुवाकों की ऋचायें जोड़ने से परिणाम २८३ ही निकलता है। अब 'नवत्यर्चम् ता नवर्चम्' का पता करना बहुत कठिन है। सम्भव है कि अनुक्रमणिकायों में कुछ अन्य पाठ भी छूटा हो जिस में सब अनुवाकों की ऋक् संख्या बताई हो। यदि ऐसा हो तो कुछ पाठ हम सब इस प्रकार कल्पित कर सकते हैं (प्रथममनुवाकमेकषष्ठचर्चम्' द्वितीयं षष्ठचर्चम्, तृतीयं त्रिसप्तत्यर्चञ्चतुर्थमेकोननवत्यर्चम्'। यदि इस प्रकार कल्पना करें तो 'नवत्यर्चम्' का कुछ अर्थ हो सकता है परन्तु, हम यहां निश्चय से कुछ नहीं बता सकते। आशा है अन्य अनेक मूल ग्रन्थों के मिलने से शुद्ध पाठ का ठीक निर्णय हो सकेगा।

इस प्रथम सूक्त के ६१ मन्त्रों में से केवल पांच मन्त्र (१७, २७, २८, ५७, ६१) हैं जो ऋग्वेद में नहीं आते शेष ५६ मन्त्र ऋग्वेद में हैं। हम क्रमशः उन मन्त्रों का ऋग्वेद में स्थान तथा ऋषि देते हैं। ऋषि प्रत्येक मन्त्र के नीचे इसलिये नहीं दिये कि जिससे अधिक मन्त्रों के ऋषि आदि बार-बार न लिखने पड़ें। इन मन्त्रों को ऋग्वेद से मिलावें—

८ 'यमस्य मा यम्यम्' आर्षीपंक्तिः । १४ 'न वा उ ते' भुरिक् । १५ 'बतो बतासि यम' आर्षीपंक्तिः । १८ 'वृषा वृष्णे दुदुहे' इति तिस्रः, २१'अध त्यं द्रप्सम्' इति तिस्रो जगत्यः । ३७'सखायः' इति द्वे परोष्णिहौ । ४१ 'सरस्वन्तीं देवयन्तः' इति तिस्रः सरस्वतीदेवत्याः । ४० 'स्तुहि श्रुतम्' इति रौद्री पूर्वसूक्तानि । ४४ 'उदीरतामवर' इति तिस्रो मन्त्रोक्तपितृदेवत्याः । ४६ 'परे-

---

मं० मं०

(१) १ से १६ पर्यन्त—ऋ० वे० १०।१० सूक्त में आते हैं ऋषि यमी वैवस्वती है। शेष ६, तथा १३ मन्त्र सूक्त १० में नहीं वे क्रम से ऋ० वे० १।८४।१६ तथा १०।१०।१२ में कुछ भेद से हैं। मं० ६ का ऋ० वे० में ऋषि राहूगण गोतम है और मं० १३ का यमी वैवस्वती।

(२) १८—२६ ,, ऋ० वे० १०।११ सूक्त में हैं ऋषि हविर्धान अङ्गिरा है।

(३) २६—३६ ,, ऋ० १०।१२ में हैं ऋषि सूक्त ११ का ही है। शेष २५, २८ मन्त्र अथर्ववेद ७।८२।४,५ में आ चुके हैं।

(४) ३७—३८ ,, ऋ० ८।२४।१,२ में हैं ऋषि विश्वमना वैयश्व है।

(५) ३६ ऋ० १०।३१।६ में है ऋषि कवष एलूष है।

(६) ४० ऋ० २।३३।११ में हैं ऋषि गृत्समद है।

(७) ४१—४३ ऋ० १०।१७।७-६ में हैं ऋषि देवश्रवा यामायन है।

(८) ४४—४६ ऋ० १०।१५।१, ३, २ में हैं ऋषि शंखो यामायन है।

(६) ४७ ऋ० १०।१४।३ में है ऋषि यम है।

(१०) ४८ ऋ० ६।४७।१ में है ऋषि गर्ग है।

(११) ४६, ५० ऋ० १०।१०।१, २ में हैं ऋषि यम है।

(१२) ५१, ५२ ऋ० १०।१५।४, ६ में हैं ऋषि शंखो यामायन है।

(१३) ५३ ऋ० १०।१७।१ ऋषि देवश्रवा यामायनः।

(१४) ५४ ऋ० १०।१४।७ ऋषि यम।

(१५) ५६, ५७ ऋ० १०।१४।६ ,, ,,

(१६) ५८-६० ऋ० १०।१४।६, ५,४ ,, ,,

(१७) ६१ साम्रवेद १।१।२।५।२ में है।

यिवांसम्' इति द्वे भुरिजौ । ५१ 'बर्हिषदः पितरः' इति द्वे पित्र्ये । ५६ 'उशन्तस्त्वेधीमहि' इति द्वे अनुष्टुभौ । ५९ 'अंगिरोभिर्यज्ञियैः' पुरोबृहती । ६१ 'इत एत उदारुहन्' इत्यनुष्टुबेकषष्टिरिति ॥२॥

१८। २ ।

[1] १ 'यमाय सोमः' इति तिस्रोऽनुष्टुभः । [2] ४ 'मैनमग्ने' इत्याग्नेयी । ७ 'सूर्यं चक्षुषा', ९ 'यास्ते शोचयः' जगत्यौ । ५ 'यदा शृतम्' इति जातवेदसो भुरिक् । ६ 'त्रिकद्रुकेभिः पवते' अनुष्टुप् । १३ 'उरूणसौ' जगती । १४ 'सोम एकेभ्यः' इति पचानुष्टुभः । १९ 'स्योनास्मै भव पृथिवि' इति त्रिपदार्षीगायत्री । २० 'असंबाधे' अनुष्टुप् । २२ 'उत् त्वा वहन्तु' इति द्वे, २५ 'मा

१. १८।२ सूक्त के मन्त्रों का वर्णन जो वैसे तथा स्वल्प भेद से ऋग्वेद में आते हैं ।

अथर्व १—३	ऋ० १०।१४।१३-१५	ऋषि 'यमः' ।
,, ४—५	,, १०।१६।१—२	,, दमनो यामायनः
,, ६	,, १०।१४।१६	
,, ७—८, १०	,, १०।१६।३—५	
,, ११—१३	,, १०।१४।१०—१२	
,, १४—१८	,, १०।१५४,१, ४, २, ३, ५	ऋषि यमी
,, १९	,, १।२२।१५	मेधातिथि काण्व ऋषि
,, ३३	,, १०।१७।२	ऋषि देवश्रवा यामायन ।
,, ३५ पूर्वार्ध	१०।१५।१४	,, शंखो ,,
,, ५० उत्तरार्ध ,,	१०।१८।११ में	,, संकुसुको ,,
,, ५४	१०।१७।३	,, देवश्रवा ,,
,, ५५	१०।१७।४	
,, ५८	१०।१६।७	,, दमनो ,,
,, ६०	१०।१८।९	ऋषि (५०) का

२. बी 'मैनम्' (अग्ने नहीं है) ।

त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट' अनुष्टुभः। २४ 'मा ते मनः' इति त्रिपदा समविषमार्षी गायत्रीति ॥३॥

२६ 'यत् ते अङ्गम्' इति भुरिक्। २६ 'सं विशन्तु' इति पित्र्या। ३० 'यां ते धेनुम्', ३४ 'ये निखाताः' आग्नेयी। ३६ 'शं तप' इत्यनुष्टुभः। ३७ 'ददाम्यस्मै' इति विराड्जगती। ३८ 'इमां मात्राम्' इति सप्तार्षीगायत्र्यः। ४० 'अपेमाम्', ४२ 'निरिमां', इति तिस्रोभुरिजः। ४५ 'अमासि मात्राम्' ककुम्मत्यनुष्टुप्। ४६ 'प्राणो अपानः', ४८ 'उदन्वतो द्यौः', ५० 'इदमिद्वा' इति तिस्रोऽनुष्टुभः। ४९ 'ये नः पितुः' भुरिक्। ५६ 'इमौ युनज्मि ते' अनुष्टुप्। ५७ 'एतत् त्वा' भुरिक् षष्टिरिति ॥४॥

१८। ३।

[2]४ 'प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकम्', ८ 'उत्तिष्ठ प्रेहि' ११ 'वर्च-

---

१. क. घ, द्व पाठ अधिक है।

२. इस १८।३ सूक्त के उन मन्त्रों का वर्णन जो ऋग्वेद में वैसे वा कुछ भेद से आये हैं—

अथर्व २	ऋ० १०।१८।८	
,, ६—७	,, १०।५६।१	ऋषि, बृहदुक्थो वामदेव्यः।
अथर्व १३	ऋ० १०।१६।१३	
,, १८	,, ६।८६।४३	ऋषि आकृष्टामाषाः।
,, २१—२४	,, ४।२।१६-१९	ऋषि वामदेवः।
,, ३८—४१	,, १०।१३।१—४	ऋषि विवस्वानादित्य है।
,, ४२—४८	,, १०।१५।१२, ७, ११, ५, ८, ६, १०	में हैं ऋषि शंखो यामायन है।
,, ४९—५२	,, १०।१८।१०—१३	ऋषि पूर्व दे दिये हैं।
,, ५३, ५५	,, १०।१६।८, ६	,, ,,
,, ५६	,, १०।१७।१४	,, ,,
,, ५७	,, १०।१८।७	,, ,,
,, ५८	,, १०।१४।८	,, ,,

सा मां समनक्तु' २३ 'आ यूथेव क्षुमति' सतः पंक्तयः । ५ 'उपह्यामुप वेतसम्' इति त्रिपदा निचृद्गायत्री । ६ 'यं त्वमग्ने समदहः' अनुष्टुप् । उभे आग्नेय्यौ । १८ 'अञ्जते व्यञ्जते', २५ 'इन्द्रो मा मरुत्वान्' इति पञ्च जगत्यः । तत्रैकाधिकाभुरिगंत्याविराट् । ३० 'प्राच्यां त्वा' पञ्चपदाति जगती । ३१'दक्षिणायां त्वा' विराट् शक्वरी । ३२ 'प्रतीच्यां त्वा' इति चतस्रो भुरिजः । ३६ 'धर्तासि' इत्येकावसानासुर्यनुष्टुप् । ३७'उदपूरसि' तथासुरीगायत्रीति ॥५॥

३९'स्वासस्थे भवतम्' इति परात्रिष्टुप्पंक्तिः । ४४'अग्निष्वात्ताः पितरः', ४६ 'ये नः पितुः पितरः' इति मन्त्रोक्तदेवत्ये जगत्यौ । ४७ 'ये तातृपुः', ४९ 'उप सर्प', ५२ 'उत्ते स्तभ्नामि' इति भुरिजः । ५० 'उच्छ्वञ्चस्व' इति भौमाप्रस्तारपंक्तिः । ५४ 'अथर्वा पूर्णम्' पुरोऽनुष्टुबैन्दवी । ५६ 'पयस्वतीरोषधयः' इत्यार्ष्यनुष्टुप् । ५८ 'सं गच्छस्व' इति विराट् । ६० 'शं ते नीहारः' इति त्र्यवसाना षट्पदाजगती । ६४ 'आ रोहत दिवमुत्तमाम्' इति भुरिक्पथ्यापंक्तिः । ६७ 'इन्द्र क्रतुं न' इति पथ्याबृहती । ६८ 'अपूपापिहितान्', ७० 'पुनर्देहि' इत्यनुष्टुभौ । ६९ 'यास्ते धानाः', ७१ 'आरभस्व जातवेदः' इत्युपरिष्टाद्बृहत्यौ । ७२ 'ये ते पूर्वे' अनुष्टुप् । सप्ततिस्त्र्यधिका पर इति ॥६॥

१८। ४।

,, ५९ ,, १०।१५।१४ ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य ।

,, ६० उत्तरार्ध १०।१६।१४ से अधिक ।

,, ६५ ऋ० १०।८।१ त्रिशिरास्त्वाष्ट्र ऋषि ।

,, ६६ ,, १०।१२३।६ वेन ऋषिः ।

,, ६७ ,, ७।३२।२६ वसिष्ठ वा शक्तिः ।

१ 'आ रोहत'[1] ४ 'त्रयः सुपर्णा', ७ 'तीर्थैस्तरन्ति' इति भुरिजः। २ 'देवा यज्ञमृतवः', ५ 'जुहूर्दाधार' इति जगत्यौ। ३ 'ऋतस्य पन्थामनु' इति पञ्चपदा भुरिगति जगती। ६ 'ध्रुव आरोह' इति पञ्चपदा शक्वरी। ८ 'अङ्गिरसामयनम्' पञ्चपदातिशक्वरी। ९ 'पूर्वो अग्निः' इति पञ्चपदा भुरिक्शक्वरी। ११ 'शमग्ने' जगती। १२ 'शमग्नयः' महाबृहती। १३ 'यज्ञ एति विततः' इति त्र्यवसाना पंचपदाशक्वरी। १४ 'ईजानश्चितम्' भुरिक्। १६ 'अपूपवान् क्षीरवान्' इति नव त्रिपदो भुरिजो महाबृहत्य इति ॥७॥

२६ 'यास्ते धानाः' इत्युपरिष्टाद्बृहती। २७ 'अक्षितिम्' याजुषी गायत्री। २९ 'शतधारं वायुम्' इति जगती। ३१ 'एतत् ते देवः' द्वे, अनुष्टुभौ। ३३ 'एतास्ते असौ धेनवः' इत्युपरिष्टाद्बृहती। ३६ 'सहस्रधारम्' इति भुरिक्। ३८ 'इहैवैधि' इत्यनुष्टुप्। ३९ 'पुत्रं पौत्रम्' इति पुरोविराडास्तारपंक्तिः। ४१ 'सन्धिन्धते अमर्त्यम्' इति द्वे अनुष्टुभौ। ४९ 'आ प्र च्यवेथामप' इत्यनुष्टुब्गर्भात्रिष्टुप्। ५० 'एयमगन्' इति ५१ 'इदं पितृभ्यः' इति पुरोविराट्सतः पंक्तिरिति ॥८॥

---

१. १८।४ के उन मन्त्रों का निर्देश जो वैसे वा स्वल्प भेद से ऋग्वेद में आये हैं

अथर्व २८ ऋ० १०।१७।११ ऋषि देवश्रवा यामायन।

,, २९ ,, १०।१०७।४ ,, दिव्यो, दक्षिणा वा प्राजापत्या।

,, ४३ अथर्व १८।३।६९ में आ चुका है।

,, ५८ ऋ० १०।८६।९

,, ५९ ,, ६।२।६ ,, भरद्वाज बार्हस्पत्य

,, ६० ,, ६।८६।१६

अथर्व ६१ ऋ० १।८२।२ ,, गोतमो राहूगण

,, ६९ ,, १।२४।१५ ,, शुनःशेप

,, ८८ ,, ५।६।४ ,, वसुश्रुत आत्रेय

,, ८९ ,, १।१०५।१ ,, आप्त्यस्त्रित आङ्गिरसः कुत्सो वा।

१८। ४ ।

५५ 'यथा यमाय' इति तिस्रोऽनुष्टुभः । तत्र ५६ 'इदं हिरण्यम्' इति ककुम्मती । ५८ 'वृषा मतीनां' जगती । ५९ 'त्वेषस्ते', ६१ 'अक्षन्नमीमदन्त' इत्यनुष्टुभौ । ६० 'प्र वा एतीन्दुः' इति भुरिक् । ६२ 'आ यात पितरः' इति द्वे आस्तारपंक्ती । पूर्वा भुरिगुत्तरा स्वराट् । ६६ 'असौ हा इह' इति त्रिपदा स्वराड्गायत्री । ६७ 'शुम्भन्तां लोकाः' इति द्वे एकावसाने पूर्वा द्विपदार्च्यनुष्टुबिति ॥९॥

७१ 'अग्नये कव्यवाहनाय' इति प्रभृति ८६ 'येत्र पितरः' इत्यन्तः[1] एकावसानाः । ७१ 'अग्नये' आसुर्यनुष्टुप् । ७२ 'सोमाय पितृमते' इति तिस्र आसुरीपंक्तयः । ७५ 'एतत् ते प्रततामह' आसुरीगायत्री, परासुर्युष्णिक्, उत्तरा दैवी जगती । ८१ 'नमो वः पितरः' इति पितृदेवत्यमाद्या प्राजापत्यानुष्टुप् । ८२ 'पितरो भामाय' साम्नीबृहती । ८३ 'पितरो यद् घोरम्', ८४ 'यच्छिवम्' साम्नीत्रिष्टुभौ । ८५ 'नमो वः पितरः स्वधा' आसुरीबृहती । ८६ 'येत्र पितरः' इति द्वे चतुष्पदे[2] उष्णिहौ । पूर्वा ककुम्मती । ८७ 'य इह' शंकुमती । ८८ 'आ त्वाग्न इधीमहि' इति त्र्यवसाना पथ्यापंक्तिराग्नेयी । ८९ 'चन्द्रमा अप्स्वन्तः' इति चान्द्रमसीयं पंचपदा पथ्यापंक्तिः । [3]'एकोननवतिश्चैव यमेषु विहिता ऋचः' इति ॥१०॥



---

१. सब हस्तलेखों में पाठ 'इत्यात' है। ऐसा पाठ कौशिक सूत्र ८१।४४, ८५।२६ ८६।१७ तथा ८७।३० में आया है, वहां पर भी इसका अर्थ कुछ पता नहीं लगता । ह्वि० ने यहां अनुक्रमणिका का पाठ 'आतः' दिया है। कौ० सू० ८१।४४ के पाठ भेद में ब्लूमफील्ड ने E हस्तलेख का पाठ 'इत्यत्र' दिया है। मेरी सम्मति में यदि यहां 'इत्यन्तः' हो तो अर्थ बहुत अच्छा लग सकता है।

२. क. घ, चतुष्पदावुष्णिहौ ।

३. यह प्रतीक पंचपटलिका ४।१७ से उद्धृत की गई है।

अथैकोनविंशं काण्डम्

१९।१।

१ 'सं सं स्रवन्तु नद्यः' इति तृचं बहवृचं ब्रह्मकाण्डं ब्रह्मा चान्द्रमसमानुष्टुभमपश्यदाद्यंयाज्ञिकम् । तस्याद्ये द्वे पथ्याबृहत्यौ । ३ 'रूपंरूपं वयोवयः' इति पंक्तिः ।

१९।२।

१ 'शं त आपः' इति पञ्चर्चं सिन्धुद्वीप आप्यम् ।

१९।३ ।

१ 'दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्' इति द्वे चतुर्ऋचे अथर्वाङ्गिरा आग्नेये त्रैष्टुभे । २ 'यस्ते अप्सु महिमा' इति भुरिक् ।

१९ । ४ ।

१ 'यामाहुतिम्' इति पञ्चपदा विराडतिजगती । २ 'आकूतिं देवीम्' इति जगती मन्त्रोक्तदेवत्या ।

१९ । ५ ।

१ [1]'इन्द्रो राजा' इत्येकर्चमैन्द्रं त्रैष्टुभमिति ॥११॥

१९।६ ।

[2]१ 'सहस्रबाहुः' इति षोडशर्चं नारायणः पुरुषदेवत्या अनुष्टुभः ।

१९।७।१ 'चित्राणि साकम्' इति पञ्च ।

१९ । ८ ।

१ 'यानि नक्षत्राणि' सप्तोभे मन्त्रोक्तनक्षत्रदेवत्ये गार्ग्यस्त्रै-

---

१. १९।५।१ ऋ० ७।२७।३ में है, ऋषि वसिष्ठ है।

२. १९।६ यह समग्रसूक्त ही स्वल्प भेद से ऋ० १०।९ सूक्त में आता है ऋषि नारायण है।

ष्टुभे । ७।४ 'अन्नं पूर्वा' इति भुरिक् । ८।१ 'यानि नक्षत्राणि' विराड्जगती ।

१९।९।१ 'शान्ता द्यौः' इति चतुर्दश ।

[1]१९।१०।१ 'शं न इन्द्राग्नी' दश ।

१९।११।१ 'शं नः सत्यस्य' षट् ।

[2]१९।१२ ।

१ 'उषा अप स्वसुः' इत्येकर्चं वासिष्ठं वैश्वदेवं शंतातीयं त्रैष्टुभमाद्यं मन्त्रोक्तबहुदेवत्यमिति ।।१२।।

१९।९ ।

१ 'शान्ता द्यौः' विराडुरोबृहती । ५ 'इमानि यानि पञ्च' इति पञ्चपदा पथ्यापंक्तिः ९ 'नक्षत्रमुल्काभिहतम्' इति पंचपदा ककुम्मती १२ 'ब्रह्म प्रजापतिः' इति त्र्यवसाना सप्तपदाष्टिः । १४ 'पृथिवी शान्तिः' इति चतुष्पदा संकृतिः, शेषाः काण्डप्रतीकत्वेनानुष्टुभः ।

१९। [3]१३ ।

१ 'इन्द्रस्य बाहू' एकादशाप्रतिरथ एन्द्रचस्त्रिष्टुभः । ३ 'सक्रन्दनेन' इति चतस्रः, ११ 'अस्माकमिन्द्रः' इति भुरिजः ।

१९।१४ ।

---

१. १९।१० तथा ११ ये दो सूक्त ऋ० ७।३५ में आते हैं ११ । वें का अन्तिम छटा मन्त्र ऋ० ५।४७।७ में है । ७।३५ का ऋ० वे० में ऋषि वसिष्ठ है और ५।४७ सू० का ऋषि ऋ० वे० में प्रतिरथ आत्रेय है ।

२. १९।१२ का पूर्वार्ध ऋ० १०।१७२ का चतुर्थ मन्त्र है ऋषि संवर्तः हैं और इस मन्त्र का उत्तरार्ध ऋ० ६।१७।१५ का मन्त्र है । वहां ऋषि 'भरद्वाजो बार्हस्पत्य' है ।

३. १९।१३ सूक्त के समग्र मन्त्र प्रथम के विना ऋ० १०।१०३ सूक्त में आ जाते हैं वहां ऋषि अप्रतिरथ एन्द्र है ।

१ 'इदमुच्छ्रेयः' इत्येकर्चमथर्वा द्यावापृथिवीयं त्रैष्टुभमिति ॥१३॥

१६। [1]१५।

१ 'यत इन्द्र भयामहे' इति षड्चम्।

१६।१६।

१ 'असपत्नं पुरस्तात्' इति [2]तृचम्। आद्यस्य चतस्र ऐन्द्र्यः, प्रथमा [3]अन्त्ये द्वे, द्वितीयस्य तिस्रोऽपि मन्त्रोक्तबहुदेवत्याः। १६।१५।१ 'यत इन्द्र' इति पथ्याबृहती। २ इन्द्रं वयं', ५ 'अभयं नः करत्यन्तरिक्षम्' इति [4]चतुष्पदे जगत्यौ। ३ 'इन्द्रस्त्रातोत' इति विराट्पथ्यापंक्तिः। ४ 'उरूं नो लोकम्,' ६ 'अभयं मित्रात्' इति त्रिष्टुभौ।

१६।१६।

१ 'असपत्नं पुरस्तात्' इत्यनुष्टुप्। २ 'दिवो मादित्याः' इति त्र्यवसाना सप्तपदा बृहतीगर्भातिशक्वरीति ॥१४॥

१६।१७।

'अग्निर्मा पातु', १८।१ 'अग्नि ते वसुवन्तम्' इत्युभे दशके प्रत्यृचं मन्त्रोक्तदेवत्ये। पूर्वं जागतमुत्तरं द्वैपदम्। ५ 'सूर्यो मा

---

१. १६।१५।१, ४ मन्त्र क्रम से ऋ० ८।६१।१३ तथा ६।४७।८ में है क्रम से ऋषि भर्ग प्रागाथ और गर्ग हैं।

२. क. ङ. ह्वि (लण्डन) लेखों में 'तृचम्' है और घ० वी० ह्वि० (बर्लिन) लेखों में पाठ 'द्व्यृचम्' है। संहिता में यह सूक्त द्व्यृच ही है। सायण ने 'तिरश्चीनघ्न्या' को भिन्न तृतीया लिखकर भाष्य किया है। हमारी सम्मति में 'तृचम्' पाठ ही बृ० सर्वा० लेखक को अभिप्रेत है, क्योंकि आगे चलकर जो 'द्वितीयस्य तिस्रोऽपि' पाठ दिया है उससे तो तीन ऋचायें ही सिद्ध होती हैं दो नहीं।

३. घ० गु० अन्त्ये का (अ०) नहीं।

४. बी. 'द्वे' पाठ अधिक है।

द्यावापृथिवीभ्याम्', ७ 'विश्वकर्म्मा' १० 'बृहस्पतिर्मा' अतिजगत्यः । ६ 'आपो मा' इति भुरिक् । ९ 'प्रजापतिर्मा' अतिशक्वर्य्यः पंचपदाः ।

१९।१८ ।

१ 'अग्निं ते वसुवन्तम्' साम्नीत्रिष्टुप् । २ 'वायुं ते' इति तिस्रः । ६ 'अपस्त ओषधीमतीः' आर्च्यनुष्टुभः । ८ 'इन्द्रं ते' साम्नीत्रिष्टुप् । ५ 'सूर्यं ते' सम्राडार्च्यनुष्टुप् । ७ 'विश्वकर्म्माणं ते', ९ 'प्रजापतिं ते', १० 'बृहस्पतिं ते' इति प्राजापत्यात्रिष्टुभ इति ॥१५॥

१९। १९ ।

१ 'मित्रः पृथिव्योदक्रामत्' इति चैकादशकं चान्द्रमसं पांक्तमुत मन्त्रोक्तदेवत्यम् । १ 'मित्रः', ३ 'सूर्यः', ९ 'इन्द्रः' भुरिग्बृहत्यः । १० 'देवा अमृतेन' स्वराट्, शेषाः सर्वा अनुष्टुब्गर्भाः ।

१९। २० ।

१ 'अप न्यधुः पौरुषेयं वधम्' बहुदेवत्यं त्रैष्टुभम् । २ 'यानि चकार' इति जगती । ३ 'यत् ते तनूषु' इति पुरस्ताद्बृहती । ४ 'वर्म मे' अनुष्टुब्गर्भा ।

१९। २१ ।

१ 'गायत्र्युष्णिक्' इत्येकावसाना द्विपदा साम्नीबृहती । इदमेकर्चं ब्रह्मा छान्दसं छन्दोऽनुक्रान्तिविज्ञानायापश्यदिति ।१६।

१९। २२ ।

१ 'आङ्गिरसानामाद्यैः' इत्येकविंशतिस्तत्र सर्वा एकावसाना बिहायान्त्याम् । अङ्गिरा मन्त्रोक्तदेवत्यम् । आद्या साम्न्युष्णिक् । ३ 'सप्तमाष्टमाभ्याम्,' १९ 'पृथक्सहस्राभ्याम्' प्राजापत्या गायत्र्यौ । ११ 'उपोत्तमेभ्यः', ४ 'नील नखेभ्यः', ७ 'पर्या-

यिकेभ्यः', १७ 'महागणेभ्यः' दैवी जगत्यः । ५ 'हरितेभ्यः', १२ 'उत्तमेभ्यः', १३ उत्तरेभ्यः', दैवी त्रिष्टुभः । २ 'षष्ठाय', ६ 'क्षुद्रेभ्यः', १४ 'ऋषिभ्यः' इति तिस्रः, २० 'ब्रह्मणे' दैवी पंक्तयः । ८ 'प्रथमेभ्यः शंखेभ्यः' इति तिस्र आसुरीजगत्यः । १८ 'सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः' आसुर्यनुष्टुप् । २१ 'ब्रह्मज्येष्ठा' इति चतुष्पदा त्रिष्टुबिति ॥१७॥

१९। २३ ।

१ 'आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः' इति त्रिंशदथर्वा मन्त्रोक्तदेवत्या उत चान्द्रमसमंत्यां वर्जयित्वा सर्वा एकावसानाः । प्रथमासुरो गायत्री । द्वितोयादयः षड्दैवीत्रिष्टुभः । ८ 'एकादशर्चेभ्यः', १० 'त्रयोदशर्चेभ्यः' इति तिस्रः, १४ 'सप्तदशर्चेभ्यः' इति तिस्रः प्राजापत्यागायत्र्यः । १७ विंशतिः', १९ 'तृचेभ्यः', २१ 'क्षुद्रेभ्यः', २४ 'सूर्याभ्याम्', २५ 'व्रात्याभ्याम्', २९ 'ब्रह्मणे' दैवो पंक्तयः । १८ 'महत्काण्डाय', २६ 'प्राजापत्याभ्याम्', ९ 'द्वादशर्चेभ्यः', २८ 'मङ्गलिकेभ्यः' इति दैवीजगत्यः । २० 'एकर्चेभ्यः', २३ 'रोहितेभ्यः', २७ 'विषासह्यै' दैवीत्रिष्टुभ इति ॥१८॥

१९। २४ ।

१ 'येन देवं सवितारम्' इत्यष्टौ मन्त्रोक्तबहुदेवत्या उत ब्राह्मणस्पत्यमानुष्टुभम् । ४ 'परि धत्त' इति तिस्रः, ८ 'हिरण्यवर्णो अजरः' इति त्रिष्टुभः । ७ 'योगेयोगे' इति त्रिपदार्षीगायत्री ।

१९। २५ ।

१ 'अश्रान्तस्य त्वा' इत्येकर्चमानुष्टुभम्, वाजिदेवत्यं गोपथः ।

१९। २६ ।

१ 'अग्नेः प्रजातं परि' इति चतुर्ऋचमाग्नेयं हैरण्यं त्रैष्टुभमथर्वा। ३ 'आयुषे त्वा वर्चसे त्वा' इत्यनुष्टुप्। ४ 'यद् वेद राजा वरुणः' इति पथ्यापंक्ति, अनेन हिरण्यमस्तौदिति ॥१९॥

१९। २७।

१ 'गोभिष्ट्वा पातु' इति पंचदशकं भृग्वंगिरास्त्रिवृद्देवत्यमुत चान्द्रमसमानुष्टुभम्। ३ 'तिस्रो[1] दिवः', ९ 'देवानां निहितं निधिम्' इति त्रिष्टुभौ। [2]१० 'आपो हिरण्यं जुगुपुः' जगती। १३ 'ये देवाः' इति तिस्र एकावसानाः। प्रथमाचर्युष्णिग्द्वितीयाचर्यनुष्टुप्, तृतीया साम्नीत्रिष्टुप्।

१९। २८।

'इमं बध्नामि ते मणिम्' इति त्रीणि। पूर्वं दशकमुत्तरं नवकं तृतीयं पञ्चकम्। ब्रह्मा सपत्नक्षयकामो मन्त्रोक्तदर्भमणिदेवत्यमानुष्टुभमेतत्त्रयमिति ॥२०॥

१९। ३१।

१ 'औदुम्बरेण मणिना' इति चतुर्दश पुष्टिकामोमन्त्रोक्तौदुम्बरमणिदेवत्यमानुष्टुभम्। वेधसः पुष्टचै सविता ददर्श। ५ 'पुष्टिं पशूनाम्', १२ 'ग्रामणीरसि' इति त्रिष्टुभौ। ६ 'अहं पशूनां' विराट्प्रस्तारपंक्तिः। ११ 'त्वं मणीनाम्', १३ 'पुष्टिरसि' इति पञ्चपदे शक्वर्यौ। १४ 'अयमौदुम्बरः' विराडास्तारपंक्तिः ॥

१९। ३२।

---

१. क. घ. 'दिवः' नहीं।

२. संहिता में यह पाठ १९।२७।९ का उत्तरार्ध है। यह छन्द जगती छन्द के अनुकूल नहीं अतः यह पाठ चिन्तनीय है।

१ 'शतकाण्डो दुश्च्यवनः' इति द्वे पूर्वं दशकमुत्तरं पञ्चकम् एते मन्त्रोक्तदेवत्ये आनुष्टुभे, भृगुः सर्वकाम आयुषे। ८ 'प्रियं मा दर्भ' इति पुरस्ताद्बृहती। ६ 'यो जायमानः', ३३।२ 'घृतादुल्लुप्तः', ३३।५ 'दर्भेण त्वम्' इति त्रिष्टुभः। ३२।१० 'सपत्नहा शतकाण्डः', ३३।१ 'सहस्रार्घः शतकाण्डः' इति जगत्यौ। ३३।३ 'त्वं भूमिम्' इत्यार्षीपंक्तिः। ३३।४ 'तीक्ष्णो राजा विषासहिः' आस्तारपंक्तिः ॥२१॥

१६। ३४।

१ 'जङ्गिडोसि जङ्गिडः' इति द्वे प्रथमं दशकम्, द्वितीयं पञ्चकमंगिरा उभे मन्त्रोक्तदेवत्ये उत वानस्पत्ये आनुष्टुभे।

१६। ३५।

३ 'दुर्हार्दः संघोरम्' इति पथ्यापंक्तिः। ४ 'परि मा दिवः'[1] शक्वरी निचृत्त्रिष्टुप् ॥

१६। ३६।

१ 'शतवारो अनीनशत्' इति [2]षड्चं ब्रह्मा शतवारदैवतमानुष्टुभम् ॥

१६।३७।

१ 'इदं वर्चः' इति चतुर्ऋचमथर्वाग्नेयं त्रैष्टुभम्। २ 'वर्च आ धेहि' आस्तारपंक्तिः ३ 'ऊर्जे त्वा बलाय[3] त्वा' इति त्रिपदा महाबृहती। ४ 'ऋतुभिष्ट्वार्तवैः' पर उष्णिगिति ॥२२॥

१६। ३८।

१ 'न तं यक्ष्मा' इति तृचं मन्त्रोक्तगुल्गुलुदेवताकमानुष्टु-

१. ड. बी. में इसका छन्द जगती दिया है।

२. ड. बी. षडर्चम्। ३. ड. 'त्वा' नहीं।

भम् । २ 'विष्वञ्चस्तस्मात्' इति चतुष्पादुष्णिक् । ३ 'उभयोरग्रभम्' इत्येकावसाना प्राजापत्यानुष्टुप् ॥

१९।३९।१ 'एतु देवः' इति दशकं भृग्वंगिरा मन्त्रोक्तकुष्ठदेवत्यमानुष्टुभम् । २ 'त्रीणि ते', ३ 'जीवला नाम ते' इति द्वे त्र्यवसाने [1]पञ्चपदे बृहत्यौ । तृतीया षट्पदा जगती । ५ 'त्रिः शाम्बुभ्यः' इति चतस्रश्चतुरवसानाः । प्रथमा सप्तपदा शक्वरी । ६ 'अश्वत्थो देवसदनः' इति तिस्रोऽष्टयः ॥

१९। ४० ।

१ 'यन्मे छिद्रं मनसः' इति चतुर्ऋचं ब्रह्मा बार्हस्पत्यमुत वैश्वदेवमानुष्टुभम् । प्रथमानुष्टुप्त्रिष्टुप् । २ 'मा न आपः' इति पुरः ककुम्मत्युपरिष्टाद्बृहती । ३ 'मा नो मेधाम्' इति बृहतीगर्भा । ४ 'मा नः पीपरदश्विना' इति त्रिपदार्षी गायत्रीति ।२३॥

१९। ४१ ।

१ 'भद्रमिच्छन्तः' इत्येकर्चं मन्त्रोक्ततपोदेवत्यं त्रैष्टुभम् ॥

१९। ४२ ।

१ 'ब्रह्म होता' इति चतस्रो मन्त्रोक्तब्रह्मादेवत्या आद्या अनुष्टुप् । २'ब्रह्म स्रुचः' इति ककुम्मती पथ्यापंक्तिस्त्र्यवसाना । ३'अंहोमुचे प्र भरे' इति त्रिष्टुप् । ४'अंहोमुचं वृषभम्' जगती ।

१९।४३।१ 'यत्र ब्रह्मविदः' इत्यष्टौ बहुदेवत्यास्त्र्यवसानाः शंकुमत्यः पथ्यापंक्तय इति ॥२४॥

१९। ४४ ।

१ 'आयुषोसि' दशकं मन्त्रोक्ताञ्जनदेवत्यमानुष्टुभं भृगुः । ८ 'बह्वीदम्' इति द्वे वारुणे । प्रथमा शन्तातिमप्रार्थयदेवं ततो

१. गु. घ. पञ्चपदे नहीं ।

मन्त्रोक्तांश्च देवानिति । ४ 'प्राण प्राणम्' इति चतुष्पदा शंकुमत्युष्णिक् । ५ 'सिन्धोर्गर्भोसि' इति त्रिपदा निचृद्विषमा गायत्री ॥

१९।४५।१ 'ऋणादृणमिव' दशतत्र्यं चाञ्जनदेवत्याः पराः पञ्च मन्त्रोक्तदेवत्याः । आद्ये द्वे आनुष्टुभौ । ३ 'अपामूर्ज' इति तिस्रः त्रिष्टुभः । ६ 'अग्निर्माग्निनावतु' इति पंचैकावसाना महाबृहत्यः । तत्राद्या विराट् चतस्रो निचृत इति ॥२५॥

१९। ४६ ।

१ 'प्रजापतिष्ट्वा बध्नात्' इति सप्तकं प्रजापतिरस्तृतमणिदैवतं त्रैष्टुभमाद्या पंचपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् । २ 'ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्' इति षट्पदा भुरिक्शक्वरी । ३ 'शतं च न', ७ 'यथात्वमुत्तरः' इति पंचपदा पथ्यापंक्तिः । ४ 'इन्द्रस्य त्वा' चतुष्पदा । ५ 'अस्मिन् मणौ' इति पञ्चपदाति जगती । ६ 'घृतादुल्लुप्तः' इति पंचपदोष्णिग्गर्भा विराड्जगती पंक्तिरिति ॥२६॥

१९।४७।१ 'आ रात्रि पार्थिवम्' इति चत्वारि सूक्तानि । पूर्वं नवकमुत्तरं षट्कं मध्यमं दशकमन्त्यं सप्तकमेवं द्वात्रिंशन्मन्त्रोक्तरात्रिदेवत्या अनुष्टुभो गोपथ ऋच आद्यस्याद्या पथ्याबृहती । २ 'न यत्याः' पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा परातिजगती । ६ 'रक्षा माकिर्नः' इति पुरस्ताद्बृहती । ७ 'माश्वानाम्' इति त्र्यवसाना षट्पदा जगती ॥२७॥

१९।४८। १ 'अथो यानि च' त्रिपदार्षी गायत्री । २ 'रात्रिमातः' त्रिपदाविराडनुष्टुप् । ३ 'यत् किं चेदम्' बृहतीगर्भा । ५ 'ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति' पथ्यापंक्तिरिति ।

१९।४९।१ 'इषिरा योषा' इति पञ्च, ८ 'भद्रासि रात्रि' त्रिष्टुभः । ६ 'स्तोमस्य नः' आस्तारपंक्तिः ७ 'शम्या ह' पथ्या-

पंक्तिः। १० 'प्र पादौ नः' इति त्र्यवसाना षट्पदा जगती भरद्वाजश्चेति ॥२८॥

१६।५१।

१ 'अयुतोहम्' इति द्वे एकावसाने ब्रह्मा। पूर्वात्मदेवत्या ह्येकपदा ब्राह्म्यनुष्टुप् उत्तरा सावित्री त्रिपाद्यवमध्योष्णिक् ॥

१६।५२। १ 'कामस्तद्' इति पञ्चकं मन्त्रोक्तकामदैवतं त्रैष्टुभम्। ३ 'दूराच्चकमानाय' चतुष्पादुष्णिक्। ५ 'यत्काम कामयमानः' उपरिष्टाद्बृहती ॥

१६।५३।१ 'कालो अश्वः' इति द्वे पूर्वं दशकमुत्तरं पंचकमेव पंचदश भृगुर्मन्त्रोक्तसर्वात्मककालदेवत्या अनुष्टभ इति ॥२६॥

पूर्वस्याद्याश्चतस्रस्त्रिष्टुभः। ५ 'कालोऽमूम्' इति निचृत्-पुरस्ताद्बृहती ॥

१६।५४।२ 'कालेन वातः' इति त्रिपदार्षी गायत्री। ५ 'काले-यमङ्गिरा' इति त्र्यवसाना षट्पदाविराडष्टिरिति ॥

१६।५५।१ 'रात्रिं रात्रिमप्रयातम्' इति षड्चमाग्नेयं त्रैष्टु-भम्। २ 'या ते वसोः' इत्यास्तार पंक्तिः। ५ 'अपश्चा दग्धान्नस्य' इति त्र्यवसाना पंचपदा पुरस्ताज्ज्योतिष्मतीति ॥३०॥

१६।५६।१ 'यमस्य लोकात्' इति द्वे पूर्वं षट्कमुत्तरम् पंच-कमेवमेवमेकादश यमो दौष्वप्न्यस्त्रिष्टुभः ॥

१६। ५७।

[2]१ 'यथा कलाम्' इत्यनुष्टुप्। ३ 'देवानां पत्नीनाम्' इति त्र्यवसाना चतुष्पदा त्रिष्टुप्। ४ 'तं त्वा स्वप्न' इति षट्पदोष्णि-

---

१. घ. 'अमूं दिवम्' इति।

२. १६।५७।१ ऋ० ८।४७।१७ में है ऋषि त्रित आप्त्य है।

ग्बृहतीगर्भा विराट् शक्वरी। ५ 'अनास्माकस्तद्देव' इति त्र्यवसाना पंचपदा पर शाक्वरातिजगतीति ॥३१॥

१६।५८।१ 'घृतस्य जूतिः' इति षडृचं ब्रह्मा मन्त्रोक्तबहुदेवत्यमुत याज्ञिकं त्रैष्टुभम्। २ 'उपास्मान् प्राणः' इति पुरोऽनुष्टुप्। ३ 'वर्चसो द्यावापृथिवी' इति चतुष्पदातिशक्वरी। [1]५ 'यज्ञस्य चक्षुः' इति भुरिक्। ६ 'ये देवानामृत्विजः' इति त्रिष्टुप्।

१६।५६।

[2]१ 'त्वमग्ने' इति तृचमाग्नेयं त्रैष्टुभम्। प्रथमा गायत्री।

१६।६०।१ 'वाङ्म आस्यन्नसोः' इति द्व्यृचं मन्त्रोक्तवागादिदैवतम्। आद्या पथ्याबृहती। २ 'ऊर्वोः' इति ककुम्मती पुर उष्णिगिति ।३२॥

१६।६१।१ 'तनूस्तन्वा' इति त्रीण्येकर्चानि ब्राह्मणस्पत्यानि। प्रथमाविराट् पथ्याबृहती।

१६।६२।१ 'प्रियं मा' अनुष्टुप्।

१६।६३।१ 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इति विराडुपरिष्टाद्बृहती।

१६।६४।१ 'अग्ने समिधम्' इत्याग्नेयं चतुर्ऋचमानुष्टुभम्।

१६।६५।१ 'हरिः सुपर्णः' इत्येकर्चं जातवेदसं सौर्यं जागतम्।

१६।६६।१ 'अयोजालाः' इत्येकर्चं जातवेदसं सौर्यं वज्रदेवत्यमतिजागतम्।

१६।६७।१ 'पश्येम' इत्यष्टौ सौर्याः प्राजापत्यागायत्र्य इति ॥३३॥

---

१. १६।५८।४ ऋ० १०।१०१।८ में आता है ऋषि बुधः सौम्यः है।

२. १६।५६।१ ऋ० ८।११।१ में है ऋषि वत्सः काण्वः है। तथा १६।५६।२ ऋ० १०।२।४ में है ऋषि त्रित हैं।

१६।६८।१ 'अव्यसश्च' इत्येकर्चं मन्त्रोक्तकर्म्ममात्रदेवत्यमानुष्टुभम् ।

१६।६६।१ 'जीवा स्थ' इति चतस्र एकावसाना मन्त्रोक्ताब्देवत्याः । प्रथमासुर्यनुष्टुप् । २ 'उप जोवा' इति साम्न्यनुष्टुप् । ३ 'संजीवा' इत्यासुरी गायत्री । ४'जीवला' इति साम्न्युष्णिक् ।

१६।७०।१ 'इन्द्र जीव' इत्येका सौर्य्या त्रिपदा गायत्री ।

१६।७१। 'स्तुता मया' इति त्र्यवसाना पञ्चपदातिजगती गायत्री दैवतमेकर्चम् ।

१६।७२।१ 'यस्मात् कोशात्' इत्येकर्चं परमात्मदैवतं त्रैष्टुभमनेन सर्वान् देवान् स्वरक्षणकामः प्रार्थयदिति भृग्वंगिरा ब्रह्मेति भृग्वंगिरा ब्रह्मेति ॥३४॥

इति श्री ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां दशमः पटलः समाप्तः एकोनविंशतिकाण्डं समाप्तम्[1] ।



---

१. घ में यह सम्पूर्ण पाठ भी है और यह पाठ आगे अधिक है—

"स्वस्ति" करकृतमपराधं क्षंतु मर्हति संतः।

संवत् १७६७ वर्षे वैशाषबदि १ रवि बायद्रा ज्ञातीय जग जीवनेन लषीतमिदं इदं पुस्तक लेखकः पाठकयोः चिरंजियात् ॥

शुभमस्तु—यावल्लवण समुद्रो यावन्नक्षत्र मंडितोमेरुः ।

यावत् चन्द्रादीत्यौ तावत् इदं पुस्तकं जयतु ।

भग्न पृष्टि कटीग्रीवाबद्ध मुष्टीरधोमुखं ।

कष्टेन लेक्षितं शास्त्रं यत्नेन परिपालयेत् ।

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लखितं मया ।

यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ।

कल्याणमस्तु

इन श्लोकों में अशुद्ध पाठों को अशुद्ध ही दिया है।

अथ विंशति काण्डम्

[1]ओं सूक्तसंख्याऋषिदैवतछन्दांस्यनुवर्तन्ते अपरस्याः संख्या ऋषिदैवतछन्दोभ्योबृहती सतोबृहत्यौ । बार्हतः प्रगाथः प्रगाथोक्तौ तं ब्रूयात् ॥ परिभाषा ॥ [2]ॐ अथाथर्वणे विंशतितमकाण्डस्य सूक्तसंख्या सम्प्रदायादृषिदैवतछन्दांस्याश्वलायनानुक्रमानुसारेणानुक्रमिष्यामः खिलान् वर्जयित्वा ॥

२०।१। [3]१ 'इन्द्र त्वा' तृचं विश्वामित्र गोतम विरुपाः प्रत्यृचमिन्द्रमरुदग्नयोऽपि गायत्रम् ॥

---

१. इसके आरम्भ में गु. में 'श्री गणेशायनमः' अधिक है। घ. और ग में यह पाठ अधिक है—(ॐ नमः यह ग में नहीं)। श्री ब्रह्मवेदाय नमः ॥ ॐ अथेन्द्रत्वादीन्यनाय्यं तदित्यंतान् बहूनैद्राग्नान् गायत्रान्याज्ञिय शसनमन्त्रानथर्वागिरा अपश्यत् तत्राद्यस्य सूक्तस्य द्वितीया मारुती, पराग्नेयी, मरुतः पोत्रादिति चतस्रो मन्त्रोक्तदेवत्या एकावसाना आद्ये द्वे विराड्गायत्र्याविंद्रो ब्रह्माच्युष्णिग्देवोद्रविणोदाः साम्नीत्रिष्टुब्यथोदप्रुतो न वयो रक्षमाण इति बार्हस्पत्यमेवं यत्र मन्त्रान्तर्देवता या दृश्यते स मन्त्रस्तद्देवताको भवतीति सर्वत्र परिभाष्यते विहिसोतोरसृक्षतेति त्रयोविंशति मन्त्रानैन्द्रान् वृषाकपिरिदंजना उपश्रुतेत्यादि यदस्याहमित्यन्तान्खिलमन्त्रान् सर्वानैतशो मुनिरपश्यदैतशोमुनिरपश्यदिति।

अथर्वान्तर्गत खिल मन्त्रों के छन्द और ऋषि केवल घ. में ही हमें मिले हैं। ङ और बी. में तो यह पाठ है ही नहीं और क. का हस्तलेख ही यहां तक नहीं मिलता।

२. इस लेख से प्रतीत होता हैं, कि अथर्ववेद के बीसवें काण्ड के छन्द ऋषि आदि बृहत्सर्वानुक्रमणिका लेखकों के नहीं प्रत्युत उन्होंने इस काण्ड के ऋषि दैवत छन्द आदि आश्वलायनानुक्रमणी के आधार से दिये हैं।

३. २०।१ सूक्त के तीनों मन्त्र ऋ० वे० में क्रमशः ३।४०।१, १।८६।१, ८।४३।११ में आते हैं। वहां भी ऋषि देवता, छन्द, यही हैं।

२०।२।[1] १ 'मरुतः पोत्रात्' इति चतुष्कमेकावसाना आद्ये द्वे विराड्गायत्र्यौ। ३ 'इन्द्रो ब्रह्मा' आर्च्युष्णिक्। ४ 'देवो द्रविणोदाः' साम्नीत्रिष्टुप्॥

२०।३।[2] १ 'आयाहि' तृचमिरिम्बिठिरैन्द्रं गायत्रम्॥

२०।४।[3] १ 'आ नो याहि॥

२०।५।[4] १ 'अयमु त्वा' अष्टावंत्या विश्वामित्रस्य॥

---

१. २०।२ सूक्त ऋ० ४।२।१६ में है। वहां भी ऋषि, देवता, छन्द यही हैं।

२. २०।३ सूक्त ऋ० ८।१७।१-३ में है, ऋषि 'इरम्बिठिः काण्व' है।

३. २०।४ सू० ऋ० ८।१७।४-६ में है।

४. २०।५ सू० ऋ० ८।१७।७-१३ में है।

प्रकाशित अथर्वसंहिताओं में यह २०।५ सूक्त सप्तर्च है और अगला २०।६ सू० नवर्च है, परन्तु बृ० सर्वा० में इन दोनों को अष्टर्च ही माना है। वृ० सर्वा० में २०।६ सूत्र का आदि का 'इन्द्रत्वा वृषभम्' २०।५ का अन्तिम मन्त्र स्वीकार करके छठे सूक्त को 'इन्द्र ऋतुविदं' छठे के द्वितीय मन्त्र से आरम्भ करके उसे भी अष्टर्च सिद्ध किया है। सायण ने अपने भाष्य में पांचवें सूक्त को सप्तर्च और छठे को नवर्च लिखा है। २०।६ मन्त्र के नीचे शंकर पाण्डुरङ्ग ने बृ० सर्वानुक्रमणी के विषय में यह टिप्पणि दी है—

The Sarvanukramni begins the hymn with 'इन्द्र ऋतुविदं' instead of with 'इन्द्रत्वा वृषभं वयम्', and makes and the preceding hymn consist of eight mantras each, being supported in this by P. P. J. CP.

हमारी सम्मति में यहां पञ्चम सूक्त सप्तर्च ही चाहिये अष्टर्च नहीं, क्योंकि अथर्ववेद के बीसवें काण्ड के तीसरे, चौथे और पञ्चम सूक्तों के जो १३ मन्त्र हैं, वें क्रम से ही १३ मन्त्र ऋ० ८।१७ सूक्त में आए हैं और छठे सूक्त के ९ मन्त्र ही ऋ० वे० ३।४० सूक्त में क्रम से आते हैं। अतः बृ० सर्वा० कार का ६ सूक्त का आदि मन्त्र पञ्चम सूक्त में मिलाकर अष्टर्च लिखना ठीक नहीं प्रतीत होता। इसी ऋ० के एक सूक्त के आधार से ही प्रतीत होता है कि अथर्ववेद में तीन सूक्तों की कल्पना की गयी है। न जाने बृ० सर्वा० लेखक ने इन दोनों सूक्तों को अष्टर्च किस विचार और आधार से लिखा है।

२०१६।[1] १ 'इन्द्र क्रतुविदम्' इत्यष्टर्चस्य सूक्तस्य विश्वामित्रः ॥

२०१७।[2] १ 'उद् घदभि' चतुर्ऋचं सूक्तं सुकक्षोऽन्त्या विश्वामित्रस्य ॥

२०१८।[3] १ 'एवा पाहि' तृचं सूक्तं भरद्वाजः कुत्सविश्वामित्राः प्रत्यृचं त्रैष्टुभम् ॥

२०१९।[4] १ 'तं वो दस्म' इति चतुर्ऋचं सूक्तं नोधा आद्ययोर्मेध्यातिथिरन्त्ययोराद्ये [5]द्वे त्रैष्टुभौ प्रगाथ उत्तरे ॥

२०११०।[6] १ 'उदु त्ये' इति द्वयृचं सूक्तं मेध्यातिथिः प्रगाथः ॥

२०१११।[7] १ 'इन्द्रः पूर्भिं' एकादशर्चं सूक्तं विश्वामित्रस्त्रैष्टुभम् ॥

२०११२।[8] १ 'उदु ब्रह्माणि' इति सप्तर्चं सूक्तं वसिष्ठोऽन्त्यात्रिम् ॥

---

१. २०१६ सूक्त ऋ० ३।४० में है, ऋषि विश्वामित्र है।

२. २०१७ सूक्त ऋ० ८।९३।१-३ में आते हैं ऋषि सुकक्ष है। इस सूक्त का चतुर्थ मन्त्र २०१६ सूक्त में ही आ चुका है। घ० में आदि का उद्धरण केवल 'उद्धेति' से ही है।

३. २०१८ सूक्त के तीन मन्त्र ऋ० वे० में क्रमशः ६।१७।३, १।१०४।९, ३।३२।१५ में आते हैं ऋषि क्रम से भरद्वाज बार्हस्पत्य, कुत्स आङ्गिरस तथा विश्वामित्र हैं।

४. २०१८ सूक्त के तीन मन्त्र ऋ० वे० में क्रम से ८।८८।१,२ तथा ८।३।९,१० में आते हैं। ऋषि क्रम से नोधा और मेध्यातिथि काण्व है। घ० में 'तं वो' है दस्म नहीं दिया। ५. घ. में द्वे नहीं।

६. २०११० ऋ० ८।३।१५,१६ में है, ऋषि मेध्यातिथि काण्व है।

७. २०१११ ऋ० ३।३४ में है, ऋषि विश्वामित्र है।

८. २०११२ प्रथम १-६ मन्त्र ऋ० ७।२३ में हैं और सातवां ५।४०।८ में है। ऋषि क्रमशः वसिष्ठ और अत्रि हैं।

२०।१३।[1] १ 'इन्द्रश्च' इति चतुर्ऋचं सूक्तं वामदेवगोतमकुत्सविश्वामित्राः प्रत्यृचमिन्द्रा बृहती मरुत आग्नेय्यौ जागतमंत्यात्रिष्टुप् ॥१॥

२०।१४[2] १ 'वयमु [3]त्वाम्' इति चतुर्ऋचं सूक्तं सौभरिरैन्द्रं प्रगाथः।

२०।१५।१'प्र मंहिष्ठाय' इति [4]षडृचं सूक्तं गोतमस्त्रैष्टुभम्।

२०।१६[5] १ 'उद प्रुतो न' इति द्वादशर्चं सूक्तं अयास्यो बार्हस्पत्यम्।

२०।१७।[6] १ 'अच्छा मे' इति द्वादशर्चं सूक्तं कृष्णो जागतमन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥२॥

२०।१८[7] १ 'वयमु त्वा' इति षण्मेध्यातिथिप्रियमेधौ तिसृणां शिष्टा वसिष्ठो गायत्रम्।

२०।१९।[8]१ 'वार्त्रहत्याय' इति सप्तर्चं सूक्तं विश्वामित्रः।

---

१. २०।१३ का प्रथम मन्त्र ऋ० ४।५०।१० में, दूसरा मन्त्र ऋ० १।८५।६ में, तीसरा ऋ० १।९४।१ में और चतुर्थ ऋ० ३।६।९ में है। ऋषि क्रम से वामदेव गोतम, कुत्स तथा विश्वामित्र हैं।

२. २०।१४ ऋ० ८।२१।१, २, ९, १० में हैं। मूल लेखों में 'वायमुत्वा' पाठ है यह ऊपर का पाठ संहितानुकूल जान हमने दिया है।

३. २०।१५ सू० ऋ० १।५७ में आता है, वहां ऋषि सव्य आङ्गिरस है। ऋषि सौभरिः काण्व है।

४. मूल लेखों में 'षडर्चं' है।

५. २०।१६ ऋ० १०।६८ में है। ऋषि अयास्य है।

६. २०।१७।१-११ ऋ० १०।४३ में और १२ ऋ० ७।९७।१० में है। ऋषि क्रम से कृष्ण और वसिष्ठ हैं।

७. २०।१८।१-३ ऋ० ८।२।१६-१८ में तथा ४—६ ऋ० ७।३१।४-६ में है। ऋषि क्रम से मेधातिथि काण्व तथा प्रियमेधाङ्गिरस, वसिष्ठ हैं।

८. २०।१९ ऋ० ३।३७।१-७ में है ऋषि विश्वामित्र है।

२०।२०।१ 'शुष्मिन्तमं नः' अन्त्या गृत्समदा ।

२०।२१।१ 'न्यू षु' एकादशं सव्यो जागतमन्त्ये त्रिष्टुभौ ॥३॥

२०।२२।१ 'अभि त्वा' †षड्त्रिंशदेकस्तिसृणामन्त्यानां प्रियमेधो गायत्रम् ।

२०।२३।१ 'आ तू नः' नवं विश्वामित्रः ।

२०।२४।१ 'उप नः',

२०।२५।१ 'अश्वावति' सप्तगोतमोऽन्त्यामष्टको जागतमन्त्या त्रिष्टुप् ॥४॥

२०।२६।१ 'योगेयोगे' इति षट् शुनःशेपस्तिसृणां शिष्टा मधुच्छन्दा गायत्रम् ।

२०।२७।१ 'यदिन्द्र' षट् गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ।

२०।२८।१ 'व्यन्तरिक्षम्' चतुष्कमन्त्ये त्रिष्टुभौ ।

२०।२०।१-४ ऋ० ३।३७।८-११ में और ५-७ ऋ० २।४१।१०-१२ में है। ऋषि क्रम से विश्वामित्र और गृत्समद हैं।

२०।२१ ऋ० १।५३ में है. ऋषि सव्य आङ्गिरस है। अनुक्रमणी में इस सूक्त का ऋषि नहीं दिया।

२०।२२।१-३ ऋ० ८।४५।२२-२४ में हैं तथा ४-६ ऋ० ८।६९।४-६ में है ऋषि क्रम से 'त्रिशोक: काण्व:' और मेध्य काण्व है।

†. इस सूक्त की ऋचायें छह हैं यहां षड्त्रिंशद् न जानें किस विचार से लिखा है।

२०।२३ ऋ० ३।४१ में है, ऋषि विश्वामित्र है।

२०।२४ ऋ० ३।४२ में है, ऋषि विश्वामित्र है।

२०।२५।१-६ ऋ० १।८३ में, मन्त्र ७ ऋ० १०।१०४।३ में है ऋषि क्रम से गोतम राहूगण और अष्टको वैश्वामित्र हैं।

२०।२६।१-३ ऋ० १।३०।७-९ में हैं और ४-६ ऋ० १।६।१-३ में ऋषि क्रमशः शुनःशेप आजीगर्त और मधुच्छन्दा हैं।

२०।२७ ऋ० ८।१४।१-६ में है। ऋषि गोषूक्तयश्वसूक्तिनी काण्वायनी हैं।

२०।२८ ऋ० ८।१४।७-१० में है। ऋषि पूर्ववत्।

२०।३३[1]।१ 'अप्सु धूतस्य' तृचमष्टकस्त्रैष्टुभम् ॥५॥

२०।३४।१ 'यो जातः' [2]पञ्चदश गृत्समद ऐन्द्रं त्रैष्टुभम् ।

२०।३५।१ 'अस्मा इदु' षोडश नोधा ।

२०।३६।१ 'यं एकः' एकादश भरद्वाजः ।

२०।३७।१ 'यस्तिग्म शृङ्गः' एकादश वसिष्ठः ।

२०।३८।१ 'आ याहि सुषुमा' उक्तमिन्द्रं तृचं मधुच्छन्दा गायत्रम् ।

२०।३९।१ 'इन्द्रं वः' पञ्च, व्यन्तरिक्षं चतसृणामुक्तम् ।

२०।४०।१ 'इन्द्रेण' तृचम् ३ 'आदह' मारुती ।

२०।४१।१ 'इन्द्रो दधीचः । गोतमः ॥

२०।४२।१ 'वाचम्' कुरुस्तुतिः ।

२०।४३।१ 'भिन्धि' त्रिशोक्यः ।

२०।४४।१ 'प्र सम्राजम्' इरिम्बिठिः ।

---

१. बीच के २९-३२ सूक्तों के छन्द ऋषि हस्तलेखों में नहीं हैं। २०।३०, ३१, ३२, ऋ० १०।९६।२०-३३, ऋ० १०।१०४।२-४।

२०।३४ ऋ० २।१२ में है, ऋषि गृत्समद है।

२. इस २०।३४ सूक्त के मन्त्र, संहिता में १८ हैं और अनुक्रमणी के ङ. बी. दोनों मूल लेखों में यहां पञ्चदश लिखा है।

२०।३५ ऋ० १।६१ में है। ऋषि नोधा गौतम है।

२०।३६ ऋ० ६।२२ में है। ऋषि भरद्वाज बार्हस्पत्य।

२०।३७ ऋ० ७।१९ में है। ऋषि वसिष्ठ है।

२०।३८ ऋ० ८।१७।१-३ और ऋ० १।७।१-३ में है ऋ० इरिम्बिठिः काण्वऋषि।

२०।३९ ऋ० १।७-१० तथा ८।१४।७-१०।

२०।४० ऋ० १।६।७, ८, ४ में है। ऋषि, मधुच्छन्दा है।

२०।४१ ऋ० १।८४।१३-१५ में है। ऋषि गोतमो राहूगण है।

२०।४२ ऋ० ८।६५।१२, ११, १० में है। ऋषि-प्रगाथः काण्व है।

२०।४३ ऋ० ८।४५।४०-४२ में है। ऋषि-त्रिशोकः काण्व है।

२०।४४ ऋ० ८।१६।१-३ में है ऋषि-इरिम्बिठि काण्व है।

२०।४५।१ 'अयमु ते' शुनः शेपो देवतापरनामा ।

२०।४६।१ 'प्रणेतारम्' इरिम्बिठिः ।

२०।४७।१ 'तमिन्द्रम्' [1]द्वाविंशतिः सुकक्षस्तिसृणामिन्द्रादय उक्ता एकोनविंशतिः ।

२०।४८।१ 'अभि त्वा' द्वाभ्यां सूक्ताभ्यां खिलौ ।

२०।५०।१ 'कन्नव्यः' द्वयृचं मेध्यातिथिः प्रगाथम् ।

२०।५१।१ 'अभि प्र वः' प्रस्कण्वः प्रगाथः । ३ 'प्र सु' पुष्टिगु प्रगाथम् ।

२०।५२।१ 'वयं घ त्वा' तृचं मेध्यातिथिर्बार्हतम् ।

२०।५३।१ 'क ईं वेद',

२०।५४।१ 'विश्वाः पृतनाः' रेभोऽतिजगत्युपरिष्टाद्-बृहत्यौ द्वे ।

२०।५५।१ 'तमिन्द्रम्' रेभो बृहती ।

२०।४५ ऋ० १।३०।४-६ में है। ऋषि-शुनःशेप आजीगर्तिः ।

२०।४६ ऋ० ८।१६।१०-१२ में है।

२०।४७।१-३ ऋ० ८।९३।७-९ में, ४-६ ऋ० १।७।१-३ में, ७-९ ऋ० ८।१७।१-३ में, १०-१२ ऋ० १।६।१-३ में, १३-२१ ऋ० १।५०।१-९ में हैं इनके ऋषि क्रमशः सुकक्ष, मधुच्छन्दा, इरम्बिठिः, मधुच्छन्दा और प्रस्कण्व हैं।

१. २०।४७ सूक्त २१ ऋचाओं का है परञ्च अनुक्रमणी में इसे 'द्वाविंशतिः' लिखा है सो ठीक प्रतीत नहीं होता।

२०।४८।४-६ ऋ० १०।१८९ में है और अथर्व० ६।३१ में भी हैं। ऋग्वेद में ऋषि सार्पराज्ञी और देवता भी सार्पराज्ञी और देवता भी सार्पराज्ञी और सूर्य है।

२०।५० ऋ० ८।३।१३, १४ में है। ऋषि मेध्यातिथि काण्व है।

२०।५१ ऋ० ८।४९।१, २ तथा ८।५०।१, २ में है। ऋषि प्रस्कण्व है।

२०।५२ ऋ० ८।३३।१,२ में हैं। ऋषि मेधातिथिः—

२०।५३ ऋ० ८।३३।७-९ में है। ऋषि मेधातिथिः—

२०।५४ ऋ० ८।९७।१०-१२ में है। ऋषि रेभः कश्यप है।

२०।५५ ऋ० ८।८६।१३, १, २ में है।

२०।५६।१ 'इन्द्रो मदाय' षड् गोतमस्त्रैष्टुभम् ।

२०।५७।१ 'सुरूपकृत्नुम्' दश मधुच्छन्दास्तिसृणां गायत्री । ४ 'शुष्मिन्तमं न' इत्याद्युक्ताः । ११ 'क ईं वेद' इत्युक्तः ॥६॥

२०।५८।१ 'श्रायन्त इव' षण्मृधो द्वयोः । ३ 'बण्महान्' द्वयोर्भरद्वाज श्राद्ययो[1]रैन्द्रस्तृतीया चतुर्थ्यः सूर्यः प्रगाथः ।

२०।५९।१ 'उदुत्ये' उक्तः । '३ 'उदित्' द्वयृचं वसिष्ठ ऐन्द्रं प्रगाथः ।

२०।६०।१ 'एवा हि' षट् तिसृणां सुतकक्षः सुकक्षो वोत्तरासां मधुच्छन्दा गायत्रम् ।

२०।६१।१'तं ते' दश षण्णां गोषूक्तचश्वसूक्तिनावौष्णिहम् ।

२०।६२।१ 'वयमु त्वा' इत्युक्ता षण्नृमेध उष्णिहं ‡तम्वभ्युक्ता ।

२०।६३ [2]१ 'इमा नु कं भुवना' साधनो वासार्धं चतुर्थ्या

२०।५६ ऋ० १।८१।१-३, ७-९ में है ।

२०।५७ ऋ० १।४।१-३ तथा ३।३७।८-११ तथा २।४१।१०-१२ तथा ८।३३।७-९, ५-३ में है ।

२०।५८ ऋ० ८।९९।३, ४ तथा ८।१०१।११, १२ में है ।

२०।५९ ऋ० ८।३।१५, १६ तथा ७।३२।१२, १३ में है ।

१. सर्वानुक्रमणी में 'उदित्' मन्त्र से नया सूक्त द्वयृच माना है परन्तु संहिताओं में यह चतुर्ऋच है ।

२०।६० ऋ० ८।८१।२८-३० तथा १।८।८-१० में है ऋषि कुसीदी काण्व और मधुच्छन्दा है ।

२०।६१ ऋ० ८।१५।४-६, १-३ में है । ऋषि गोषूक्तचश्वसूक्तिभौ हैं ।

२०।६२।५-७ ऋ० ८।९८।१-३ में है और मन्त्र ८-१० ऋ० ८।१५।१-३ में है और मन्त्र १-४ अथर्व २०।१४ में आ चुका है । ‡ यह पाठ पढ़ा नहीं गया ।

२०।६३।१-३ ऋ० १०।१५७ तथा ६।१७।१५ में है, मन्त्र ४-६ ऋ० १।८४।७-९ में और मन्त्र ७-९ ऋ० ८।१२।१-३ में हैं ।

२. यहां का सारा ही पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है पढ़ना बहुत कठिन है ।

अयावाज भारद्वाजो, ४ 'य एक इद्' इन्द्र नृपोऽर्चं गोतमः । ७ 'य इन्द्र' त्रिष्टुभः शिष्टा उष्णिहम् ।

२०।६४।१ 'एन्द्र नः' षण्नृमेधास्तिसृणां चतुर्थ्याद्यास्तिस्रो गोषूक्तयश्वसूक्तिनावौष्णिहम् । ४ 'एदु' तृचं विश्वमना उष्णिहम् ।

२०।६५।१ 'एतो नु' ।

२०।६६।१ 'स्तुहि' ।।७।।

२०।६७।१ 'वनोति हि' दशाद्याः परुच्छेपस्तिसृणाम् । ४ 'यज्ञैः' चतसृणां गृत्समद आद्यैन्द्री, द्वितीया मारुती, तृतीयाग्नेयी । चतस्रः कृतयस्तिस्रोऽत्यष्टयश्चतस्रो जगत्यः ।

२०।६८।१ 'सुरूपकृत्नुम्' इति तिस्र उक्ताः । ४ 'परेहि' नव मधुच्छन्दा ऐन्द्रं गायत्रम् ।

२०।६९।१ 'स घा नः' द्वादश । ९ 'युञ्जन्ति' तिस्रः, १२ 'आदह' इत्येका चोक्ताः ।

२०।७०।१ 'वीलु चित्' विंशतिः आद्ये द्वे ऐन्द्रमारुत्यौ तिस्रो मारुतः शिष्टा एन्द्रमारुतः ।

२०।७१।१ 'महां इन्द्रः' षोडशैन्द्रम् ।।८।।

२०।६४ ऋ० ८।९८।४ ६ तथा ८।२४।१६-१८ ।

२०।६५ ऋ० ८।२४।१९-२१ ।

२०।६६ ऋ० ८।२४।२२-२४ ।

२०।६७।१ ऋ० १।१३३।७ में, मन्त्र २ ऋ० १।१३९।८ में है, मन्त्र ३ ऋ० १।१२७।१ में है, मन्त्र ४-६ ऋ० २।३६।२,४,५, में हैं, मन्त्र ७ ऋ० २।३७।२ में है ।

२०।६८ ऋ० १।४।४-१० तथा १।५।१-२ में है ।

२०।६९ ऋ० १।५।३-१० तथा १।६।१-४ ।

२०।७० ऋ० १।६।५-१० तथा १।७।१-१० तथा १।८।१-४ ।

२०।७१ ऋ० १।८।४-१० और मन्त्र ७-१६ ऋ० १।९ में है ।

२०।७२।१ 'विश्वेषु' तृचं परुच्छेप अत्यष्टम् ।

२०।७३।१ 'तुभ्येदिमा' षड्वसिष्ठस्तिसृणाम् । ४ 'यदा वज्रम्' विदो वसुक्र ऐन्द्रमाद्यास्तिस्रो विराजः । ४ 'यदा वज्रम्' द्वे जगत्यौ । ६ 'यो वाचा' अभिसारिणी ।

२०।७४।१ 'यच्चित्' अष्टौ शुनःशेपः पांक्तम् ।

२०।७५।१ 'वि त्वा' उक्ताः । २ 'विदुष्टे' तृचं परुच्छेप अत्यष्टम् ।

२०।७६।१ 'वने न' अष्टौ वसुक्र ऐन्द्रं त्रैष्टुभम् ।

२०।७७।१ 'आ सत्यः' अष्टौ वामदेव ऐन्द्रं त्रैष्टुभम् ।

२०।७८।१ 'तद वः' तृचं शंयुः गायत्रम् ।

२०।७६। ‡१'इन्द्र क्रतुम्' द्वयृचं सौदासोरग्नौ प्रक्षिप्यमाणं शक्तिरत्र्यं प्रगाथमपत्रक्षोऽर्धर्चा उक्ते दह्येत् तं पुत्रोक्तं वसिष्ठः समापयातितिशाद्याय नवकं वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकमितः प्रगाथमागायत्रम् ।

२०।८०।१ 'इन्द्र ज्येष्ठम्' द्वयृचं शंयुः ।

२०।८१।१ 'यद् द्यावः' पुरुहन्मा ।

२०।७२ ऋ० १।१३१।२, ३, ६ में है।

२०।७३ ऋ० ८।२२।७, ८ तथा ८।३१।१० तथा १०।२३।३-५ में है।

२०।७५ ऋ० १।१३१।३-५।

२०।७६ ऋ० १०।२६।

२०।७७ ऋ० ४।१६।१-८।

२०।७८ ऋ० ६।४५।२२-२४।

‡ २०।७६ ऋ० ७।३२।२६, २७। मूल लेख का पाठ जैसा था वैसा दे दिया है परंच इससे कुछ अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ।

२०।८० ऋ० ६।४६।५, ६।

२०।८१ ऋ० ८।७०।५, ६।

२०।८२।१ 'यदिन्द्र' वसिष्ठः ।

२०।८३।१ 'इन्द्र त्रिधातु' शंयुः ।

२०।८४।१ 'इन्द्रा याहि' तृचं मधुच्छन्दा गायत्रम् ।

२०।८५।१ 'माचित्' चतुष्कमाद्ययोर्द्वयृचः प्रगाथार्ष उत्तरयोर्मेध्यातिथिः द्वौ प्रगाथौ ।

२०।८६।१ 'ब्रह्मणा ते' एकर्चं विश्वामित्रस्त्रैष्टुभम् ।

२०।८७।१ 'अध्वर्यवः' सप्त वसिष्ठ ऐन्द्रमन्त्यैन्द्रबार्हस्पत्या त्रैष्टुभम् ।

२०।८८।१ 'यस्तस्तम्भ' षड् वामदेवो बार्हस्पत्यम् ।

२०।८९।१ 'अस्तेव' चैकादश कृष्ण ऐन्द्रम् ।

२०।९०।१ 'यो अद्रिभित्' तृचं बार्हस्पत्यं भरद्वाजौ ॥९॥

२०।९१।१ 'इमां धियम्' [1]पंचदशायास्यो बार्हस्पत्यं त्रैष्टुभमन्त्यास्तिस्र उक्ताः ।

२०।९२।४ 'उद्यद्' अष्टादश प्रियमेध ऐन्द्रम् । ८ 'अपा-

२०।८२ ऋ० ७।३२।१८,१९।

२०।८३ ऋ० ६।४६।९, १०।

२०।८४ ऋ० १।३।४, ६।

२०।८५ ऋ० ८।१।१-४।

२०।८६ ऋ० ३।३५।४।

२०।८७ ऋ० ७।९८। सूक्त।

२०।८८ ऋ० ४।५०।१-६।

२०।८९ ऋ० १०।४२।

२०।९० ऋ० ६।७३।

२०।९१ ऋ० १०।६७।

२०।९२ ऋ० ८।६९।४-१८।

१. २०।९१ को यहां पञ्चदश लिखा है, संहिता में इस सूक्त के १२ मन्त्र हैं, और २०।९२ को अनुक्रमणी में १८ मन्त्रों का लिखा है, परञ्च संहिता में वह सूक्त २१ मन्त्रों का है। अनुक्रमणी लेखक ने ९२ सूक्त के आदि के तीन मन्त्र ९१ सूक्त में मिलाये हैं।

दिन्द्रः' अर्धर्चा विश्वेदेवो वरुण इत्यर्धर्चा वारुणो। १६ 'यो राजा' इत्याद्यानां पुरुहन्मैन्द्रं प्रगाथौ। २० 'यद् द्याव:' द्वे उक्ते।

२०।९३।१ 'उत् त्वा' अष्टौ प्रगाथः। ४ 'ईङ्खयन्तीः' पञ्च-देव जामय ऐन्दं मातर ऐन्द्रं गायत्रम्।

२०।९४।१ 'आ यातु' एकादश कृष्ण ऐन्द्र जागतम्। त्रिष्टु-बादि द्वि त्रिष्टुबन्तम्।

२०।९५।१ 'त्रिकद्रुकेषु' षट् तिसृणां गृत्समदोऽन्त्यानां तिसृणांसुशब्दा प्राद्याष्टि द्वयोरतिशक्वरी चतुर्थ्याद्यायाः शक्वर्यः।

२०।९६। [2] १ 'तीव्रस्य' त्रयोविंशतिः दश पूरणस्त्रैष्टुभम-न्त्याः पञ्चोक्ता ब्रह्मणा षण्णां रक्षोहा गर्भसंस्तावे प्रायश्चित्त-भित आनुष्टुभम्। १७'अक्षीभ्यां ते' इति षडुक्ताः। २४ 'अपेहि' प्रचेता दुःस्वप्नघ्नी ॥१०॥

---

१. २०।९५ सूक्त संहिता में चार ऋचाओं का है सर्वानुक्रमणी में जो इसे 'षट्' लिख कर षड्च माना है यह ठीक नहीं।

२ २०।९६ सूक्त यहां २३ ऋचाओं का लिखा है और संहिता में इसकी ऋचायें २४ हैं, इस सूक्त के विषय में दोनों मत हैं। बृहत्सर्वानुक्रमणी में इसे त्रयो-विंशति २३ ऋचा वाला लिखा है और वैतान सूत्र में इसे चौबीस ऋचा वाला माना है।

"तीव्रस्याभिवयसोऽस्य पाहीति चतुर्विंशतिमावपते"

वैतान सूत्र ३४।२० (गार्वेद्वारा सम्पादित पृ० ५०) इस प्रमाण से दोनों मत सिद्ध होते हैं। अब विचारणीय यह है कि दोनों का आधार क्या है? परञ्च इस पक्ष निर्णय से पूर्व हम इस एक बात को स्फुट करना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं, वह यह है कि इस समय प्रामाणिक अथर्वसंहिता दो ही छपी हुई मिलती हैं। एक ह्विटने और रॉथ की जो उन्होंने बर्लिन (जर्मनी) में १८५६ में छपवाई थी और दूसरी सायण भाष्य सहित अथर्वसंहिता जो शंकर पाण्डुरंग पण्डित ने निर्णय सागर प्रेस बम्बई में बम्बई गवर्णमेंट के लिये १८९५ में छपवाई थी।

इसके साथ सेवकलाल बम्बई वाले ने भी अथर्वसंहिता को छापा था परन्तु वह सर्वथा बर्लिन वाले वेद की नकल ही थी।

अजमेर वैदिक यन्त्रालय में जो अथर्वसंहिता छपी है वह पाण्डुरग के आधार से छापी गई है। अब एक आपत्ति नई आती है, वह यह कि बर्लिन में जो अथर्व-संहिता छपी है, उसमें इस २०।९६ सूक्त के मन्त्र तेईस ही आते हैं। पर आश्चर्य इस बात का है कि बर्लिन संस्करण मे तेईस ऋचायें जो आती हैं उनका पाण्डुरग वाली संहिता से बहुत भेद है। पहले तो दो मन्त्र उस में नहीं हैं,जो कि पाण्डुरंग की अथर्वसंहिता में हैं। एक–'हृदयात् ते परिक्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम्। यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीहो स्यक्नस्ते वि वृहामसि'। और दूसरा "अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः। यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो विवृहामि ते" इन दो मन्त्रों के अभाव से पाण्डुरंग सम्पादित संहिता की अपेक्षा इस राँथ सम्पादित संहिता में बाईस मन्त्र होने चाहिये थे, परञ्च इस बर्लिन संस्करण में 'मेहनाद्वनं करणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः। यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते' एक ऋचा अधिक है जो कि पाण्डुरंग वाली संहिता में नहीं। इस एक ऋचा के योजन से बर्लिन संस्करण में इस सूक्त की तेईस ऋचा होती हैं।

अब इस विषय पर विचार उत्पन्न होता है कि दोनों संहिताओं में जो यह गड़बड़ी आ गयी है इसका निर्णय क्या है ? इस बात के मानने में हमें जरा भी झिजक नहीं कि अभी तक जितनी भी संहितायें छपी हैं, उनमें कहीं न कहीं पाठ भेद तथा अशुद्धियां अवश्य रह गई हैं, परन्तु यह दोष तभी दूर हो सकेंगे जब कि कुछ अन्य हस्तलिखित संहितायें वा अथर्ववेदीय प्राचीन ग्रन्थ मिलेंगे तो। इस सूक्त में दोनों प्रकार की संहिताओं में बहुत ही पाठ भेद हैं। इसका कारण जहां तक मुझे प्रतीत हुआ है, वह यह है कि सर्वानुक्रमणी और राँथ ने २०।९६ सूक्त की १-१६ सोलह ऋचा तो आरम्भ की ली हैं। ६ ऋचा ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १६३ की ली हैं और एक ऋचा ऋग्वेद १०।१६४ सूक्त के आरम्भ की ली है। सर्वानुक्रमणी का ऐसा करना ठीक भी प्रतीत होता है। क्योंकि इस बीसवें काण्ड के आरम्भ में ही यह लिखा है कि इस के ऋषि देवता छन्द आदि आश्वलायन के क्रम से कहे जायेंगे। आश्वलायन ऋग्वेदीय था, अतः यहां पर अनुक्रमणी का ऋग्वेद के आधार पर लिखना ठीक है। राँथ ने जो २०।९६ सूक्त की २३ ऋचायें दी हैं, वह भी ऋग्वेद और सर्वानुक्रमणी के आधार से ही दी हैं। पाण्डुरंग सम्पादित संहिता में जो २४ ऋचायें दी हैं उसका आधार यह प्रतीत होता है कि १६ ऋचायें २०।९६ सूक्त के आरम्भ की और सात ऋचायें 'अक्षीभ्यांते' उस अथर्व २ काण्ड ३३ सूक्त की और एक 'अपेहि' वाली इस प्रकार २४ ऋचायें वहां बनाई गई हैं। दोनों ने अपने-अपने आधार से लिखा है। परञ्च दोनों में ठीक पक्ष क्या है यह तो सर्व अथर्ववेदीय साहित्य के प्राप्त होने पर कहा जा सकेगा।

२०।९७।१ 'वयम्' तृचं कलिरैन्द्रं प्रगाथो बृहती ।

२०।९८।१ 'त्वामिद्धि' द्व्यृचं शंयुरैन्द्रं प्रगाथः ।

२०।९९।१ 'अभि त्वा' मेध्यातिथिः प्रगाथः ।

२०।१००।१ 'अधा हि' तृचं नृमेध उष्णिहम् ।

२०।१०१।१ 'अग्नि दूतम्' मेध्यातिथिराग्नेयं गायत्रम् ।

२०।१०२।१ 'ईलेन्यो' विश्वामित्रः ।

२०।१०३।१ 'अग्निमीलिष्वावसे' दिति पुरुहन्मीह्वावन्यतरो वाद्ययोर्द्वयोर्भग आद्ये बृहत्यौ । तृतीया सतोबृहती ।

२०।१०४।१ 'इमा उ त्वा' चतुष्कं द्वयोर्मेध्यातिथिरैन्द्रं प्रगाथोऽन्त्ययोर्नृमेधौ प्रगाथः ।

२०।१०५।१ 'त्वमिन्द्र' पञ्च नृमेधः प्रगाथावन्त्योक्ते ।

२०।१०६।१ 'तव त्यत्' तृचं गोषूक्तयश्वसूक्तिनावौष्णिहम् ।

२०।१०७।१ 'समस्य' पञ्चदश वत्सस्तिसृणां सूर्यो देवी कुत्स ऐन्द्रमन्त्या सौरी जगती । ४ 'तदिदास' नव, १३ 'चित्रम्' देवानां देवोक्ताः ।

२०।१०८।१ 'त्वं न इन्द्रा' तृचां नृमेध ऐन्द्रमन्त्या पुरउष्णिगाद्या गायत्री द्वितीया ककुप् ।

२०।९७ ऋ० ८।६६।७-९ में है ।   २०।९८ ऋ० ६।४६।१, २ में है ।

२०।९९ ऋ० ८।३।७-८ में है ।   २०।१०० ऋ० ८।९८।७-९ में है ।

२०।१०१ ऋ० १।१२।१-३ में है ।

२०।१०२ ऋ० ३।२७।१३-१५ में है ।

२०।१०३ ऋ० ८।७१।१४, ४९, १, २ में है ।

२०।१०४ ऋ० ८।३।३३, ४ तथा ९०।१, २ में है ।

२०।१०५।१-३ ऋ० ८।८८।५-७ और ४, ५ ऋ० ८।५९। १, २ में हैं ।

२०।१०६ ऋ० ८।१५।७-९ में है ।

२०।१०७।१-३ ऋ० ८।६।४-६ तथा मन्त्र ४-१२ ऋ० १०।१२० में है मन्त्र १३ अथर्व १३।२।३४ में है मन्त्र १४, १५ ऋ० १।११५।१, २ में हैं ।

२०।१०८ ऋ० ८।९८।१०-१२ में है ।

२०।१०६।१ 'स्वादोरित्था' गोतम ऐन्द्रम् ।

२०।११०।१ 'इन्द्राय' श्रुतकक्षः सुकक्षो वा गायत्रम् ।

२०।१११।१ 'यत् सोमम्' पार्वत उष्णिहम् ।

२०।११२।१ 'यदद्य' सुकक्षः ।

२०।११३।१ 'उभयं शृणवत्' द्वयृचां भर्ग आग्नेयं प्रगाथः ।

२०।११४।१ 'अभ्रातृव्यः' सौभरीरैन्द्रं गायत्रम् ।

२०।११५।१ 'अहमित्' तृचां वत्सः ।

२०।११६।१ 'मा भूम' द्वयृचं मेध्यातिथिरैन्द्रं बार्हतम् ।

२०।११७।१ 'पिबा सोमम्' तृचं वसिष्ठो विराजः ।

२०।११८।१ 'शग्ध्यूषु' चतुष्कं †भर्गंत्तियर्योर्मेध्यातिथिः प्रगाथः ।

२०।११९।१ 'अस्तावि' द्वयृचमाद्याया आयुर्द्वितीयायाः श्रुष्टिगुस्त्रैष्टुभम् ।

२०।१२०।१ 'यदिन्द्र' देवातिथिः प्रगाथः ।

२०।१२१।१ 'अभि त्वा' प्रगाथः ।

२०।१०६ ऋ० ११८४।१०-१२ में है ।

२०।११० ऋ० ८।९२।१९-२१ में है ।

२०।१११ ऋ० ८।१२।१६-१८ में है ।

२०।११२ ऋ० ८।९३।४-६ में है ।

२०।११३ ऋ० ८।६१।१, २ में है ।

२०।११४ ऋ० ८।२१।१३, १४ में है ।

२०।११५ ऋ० ८।६।१०-१२ में है ।

२०।११६ ऋ० ८।१।१३, १४ में है ।

२०।११७ ऋ० ७।२२।१-३ में है ।

२०।११८ ऋ० ८।६१।५, ६, ३, ५, ६ में है ।

२०।११९ ऋ० ८।५२।९ तथा ८।५१।१० में है ।

† पाठ पढ़ा नहीं जाता ।

२०।१२० ऋ० ८।४।१, २ में है ।

२०।१२१ ऋ० ८।३२।२२, २३ में है ।

२०।१२२।१ 'रेवतीः' तृचं शुनःशेपो गायत्रम् ।

२०।१२३।१ 'तत् सूर्य्यस्य' द्व्यृचं कुत्सः सौर्य्यं त्रैष्टुभम् ।

२०।१२४।१ 'कया नः' †षट् वामदेव इन्द्रो गायत्रम्, 'अभीषु' पादनिचृत् ।

२०।१२५।१ 'अपेन्द्र' सप्त सुकीर्त्तिश्चतुर्थीपञ्चम्यावाश्विन्यौ त्रैष्टुभम् । चतुर्थ्यनुष्टुप् ।

२०।१२६।१ 'वि हि' त्रयोविंशतिर्वृषाकपिरिन्द्राणीन्द्रस्य समूदिरे पांक्तम् ।

२०।१२७। [1] १ 'इदं जनाः' खिलः ।

२०।१३७।१ 'यद्ध प्राचीः' चतुर्दशाद्यायाः शिरिम्बिठो लक्ष्मीनाशन्यनुष्टुप् २ 'कपृन्नरः' बुधो वैश्वदेव्यर्त्विक् स्तुतिर्वा-जगती । ३ 'दधिक्रा' अनुष्टुप् ४ 'सुतासः' तिसृणां ययातिः सोमः

२०।१२२ ऋ० १।३०।१३-१५ में है ।

२०।१२३ ऋ० १।११५।४, ५ में है ।

२०।१२४ ऋ० ४।३१।१-३ तथा १०।१५७ और ६।१७।१५ में है । मन्त्र ४-६ अथर्व० २०।६३ में भी आ चुके हैं ।

† मूल में 'तृचं' पाठ अशुद्ध लिखा था । षट् पाठ हमारा है ।

२०।१२५ ऋ० १०।१३१ में है ।

२०।१२६ ऋ० १०।८६ में है ।

१. २०।१२७ से १३६ सूक्त पर्य्यन्त कुन्ताप सूक्त हैं । इनका पदपाठ नहीं मिलता और न ही पैप्पलाद शाखा में ये आते हैं । वैतानसूत्र ६।२ में इसके विषय में लिखा है कि "इदं जना उपश्रुतेति कुन्तापम् अर्धर्चशः । चतुर्दश पदावग्राहम्" इस कुन्ताप सूक्त का वर्णन विशेषरूप से ऐतरेय ब्राह्मण की षष्ठपंचिका के ३२वें खण्ड में किया गया है । अनुक्रमणी में इसे खिल जानकर इसके छन्द आदि नहीं दिये, किन्तु केवल खिल कह कर ही समाप्त कर दिया है । संहिता तथा वैतान सूत्र में पाठ 'जनाः' है परन्तु सर्वानुक्रमणी में 'जनासः' पाठ दिया है ।

२०।१३७ ऋ० १०।१५५।४ तथा १०।१।१२ में तथा ४।३९।६ तथा ६।१०।१४-६ तथा ८।८५।१३-१७ तथा ८।८२।७-६ में है ।

पवमानोऽनुष्टुप् । ७ 'अव द्रप्सः' पञ्चानां तिरश्चो [1]द्युतीनाविष्यामिवः पादो मरुतः । परैन्द्रा बार्हस्पत्या शिष्टा ऐन्द्रयस्त्रिष्टुभः १२ 'तमिन्द्रम्' तिस्र उक्ताः ।

२०।१३८।१ 'महाँ इन्द्रः' तिस्र उक्ता महा इन्द्रं तृचं वत्स ऐन्द्रं गायत्रम् ।

२०।१३९।१ 'आ नूनम्' पञ्च शशिकर्ण आश्विनमाद्या चतुर्थी बृहत्यौ । द्वितीया तृतीये गायत्र्यौ । पञ्चमी ककुप् । शिष्टा अनुष्टुभः ।

२०।१४१। ‡१'यातम्' यामाद्या विराट् द्वितीया जगती बृहत्यौ तृतीयानुष्टुप् ।

२०।१४२।१'अभुत्स्यु' षडाद्याश्चतस्रोऽनुष्टुभोऽन्त्ये गायत्र्यौ ।

२०।१४३।१ 'तं वाम्' नव पुरुमोल्हाजमील्हावाश्विनं त्रैष्टुभम् । ८ (क) 'मधुमतीः' वामदेवः । ८ (ख) 'क्षेत्रस्यपतिः', ९ 'पनाय्यम्' मेध्यातिथिर्मेध्यातिथिरिति ॥१२॥

इति श्री ब्रह्मवेदोक्तमन्त्राणां बृहत्सर्वानुक्रमणिकायां एकादशमः पटलः समाप्तः । विंशतितमं काण्डं समाप्तं संवत् १८११ वर्षे मार्गशीर्ष शुदि १९ मन्दवासरेण लिषितं सुषेश्वरेण ॥

॥ शुभं भवतु ॥



---

१. यह पाठ ठीक पढ़ा नहीं गया । जो कुछ समझा है वह दे दिया है ।

२०।१३८ ऋ० ८।६।१-३ में है ।

२०।१३९ ऋ० ८।९।१-५ में है ।

२०।१४० ऋ० ८।९।६-१० ।

२०।१४१ ऋ० ८।९।११-१५ । ‡ पाठ नहीं पढ़ा जाता ।

२०।१४२ ऋ० ८।९।१६-२१ ।

२०।१४३ ऋ० ४।४४।१-७ तथा ४।५७।३ तथा ऋ० ८।५७।३ ।

बृहत्सर्वानुक्रमणिका-विशेषपदसूची

इति



बृहत्सर्वानुक्रमणिकान्तर्गत-ऋषिनामानि

पृष्ठ । पंक्ति

इति पदसूची समाप्ता



वैदिक छन्द परिचय

छन्दः	गायत्री ३ पाद	उष्णिक् ३ पा०	अनुष्टुप् ४ पा०	बृहती ४ पा०	पंक्तिः ४ पा०	त्रिष्टुप् ५ पा०	जगती ५ पा०
१ आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२ दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३ आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
४ प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५ याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६ साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७ आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८ ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

(गायत्री भेद) ७ अक्षरों के तीन पाद की पादनिचृत। प्रथमपाद ६, द्वितीय ८, तृतीय ७ अ० का अतिपादनिचृत्। प्र० तथा द्वि० पाद ९ के तृ० ६ का वह नागी। प्र० ६ का द्वि० तृ० ९ के वह वाराही। प्र० ६ द्वि० ७ तृ० ८ वह वर्धमाना। प्र० ८ द्वि०७ तृ०६ वह प्रतिष्ठा। प्र० १२ द्वि० ८ वह द्विपात् विराट् गायत्री। ११ अक्षरों के तीन पादों की त्रिपात् विराट् गायत्री। (उष्णिक् भेद) दो पाद ८ के एक १२ का ऐसे २८ का उष्णिक्। प्र० ८ द्वि० १२ तृ० ८ ककुप्। प्र० १२ द्वि० तृ० ८ का पुरउष्णिक्। प्र० द्वि० ८ तृ० १२ का परोष्णिक्। प्र० द्वि० तृ० च० ७ का भी उष्णिक् होता है। (अनुष्टुप्भेद) ८ अ० के चार पाद ऐसे ३२ का अनुष्टुप्। कहीं एक पाद ८ का और दो १२ के वह त्रिपात् अनुष्टुप्। (बृहती) जब एक पाद १२ का शेष तीन ८ के तब ३६ का बृहती। प्र० द्वि० ८ तृ० १२ च० ८ वह पथ्या बृहती। प्र० ८ द्वि० १२ तृ० च० ८ वह न्यंकुसारिणी (स्कंधोग्रीवी, उरोबृहती) है। प्र० द्वि० तृ० ८ च० १२ का वह उपरिष्टाद्बृहती। प्र० १२ द्वि० तृ० च० ८ का वह पुरस्ताद्बृहती। तीन पाद १२ अ० की महाबृहती, (सतोबृहती)। (पंक्तिः भेद) जब दो पाद १२ के दो ८के वह ४० अ० की पंक्तिः। प्र० १२ द्वि० ८ तृ० १२ च० ८ अ० की सतः पंक्ति। प्र० तृ० ८ द्वि० च० १२ की भी सतःपंक्ति है। प्र० द्वि० ८ तृ० च० १२ की आस्तार पंक्तिः। प्र० द्वि० १२ तृ० च० ८ की प्रस्तार पंक्ति।

प्र० ८ द्वि० तृ० १२ च० ८ की विस्तार पंक्ति। प्र० १२ द्वि० तृ० ८ च० १२ की संस्तारपंक्तिः। प्र० द्वि० तृ० च० ५ अ० की अक्षर पंक्तिः। ५ अक्षरों के पांच पाद की पदपंक्तिः। पांच पाद ८ अ० की पथ्यापंक्तिः।

(त्रिष्टुप् तथा जगती भेद) एक पाद ११ का शेष चार ८ के वह ५ पाद की ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्। एक पाद १२ का शेष चार ८ के वह ज्योतिष्मती जगती। प्र० ११ का शेष चार ८ के वह पुरस्ताज्ज्योतिः त्रिष्टुप्। प्र० १२ का शेष चार ८ के वह पुरस्ताज्ज्योतिर्जगती। प्र० द्वि० ८ तृ० ११ च० पं० ८ की वह मध्ये ज्योतिः त्रिष्टुप्। प्र० द्वि० ८ तृ० १२ च० पं० ८ की मध्येज्योतिर्जगती। प्र० द्वि० तृ० च० ८ पं० ११ की उपरिष्टाज्ज्योतिः त्रिष्टुप्। प्र० द्वि० तृ० च० ८ पं० १२ की उपरिष्टाज्ज्योतिर्जगती।

जब एक पाद ५ अक्षरों का हो और शेष पाद निज नियम के हों तो छन्द शंकुमती होते हैं। जब एक पाद ६ अक्षरों का हो और शेष पाद निजनियमों के हों तो छन्द ककुम्मती होते हैं।

आदि अन्त के पाद वहुत अक्षरों के हों, मध्य के थोड़े हों तो छन्द पिपीलिकमध्या होते हैं। आदि अन्त के पाद थोड़े अक्षरों के, मध्य के बहुत अक्षरों के हों तो यवमध्या छन्द होते हैं। अक्षर १०४ का उत्कृतिः, १०० का अभिकृतिः, ९६ का संकृतिः, ९२ का विकृतिः, ८८ का आकृतिः, ८४ का प्रकृतिः, ८० का कृतिः, ७६ का अतिधृतिः, ७२ का धृतिः, ६८ का अत्यष्टि, ६४ का अष्टिः, ६० का अतिशक्वरी, ५६ का शक्वरी, ५२ का अतिजगती, ८४ का जगती।

(१) गायत्र्यादि छन्दों का एक अक्षर न्यून हो तो उन्हें निचृत् गायत्र्यादि छन्द जानों (जैसे २३ अक्षर की गायत्री निचृद् गायत्री और २७ अक्षरों का उष्णिक् निचृदुष्णिक् ऐसे सब ही छन्द जानों)।

(२) गायत्र्यादियों में २ अक्षर न्यून हों तो विराड् गायत्र्यादि जानों जैसे २२ अक्षरों का विराड् गायत्री तथा २६ अक्षरों का विराडुष्णिक्।

(३) एक अक्षर अधिक हो तो भुरिक् गायत्र्यादि, जैसे २५ अ० का भुरिक् गायत्री २९ अक्षरों का भुरिगुष्णिक्।

(४) दो अक्षर अधिक हों तो स्वराड् गायत्र्यादि जानों। जैसे २६ अ० का स्वराड् गायत्री और ३० अक्षरों का स्वराडुष्णिक्। इसी प्रकार अन्य छन्द भी जान लो।

इति।



रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित वा प्रसारित प्रामाणिक ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य**—(संस्कृत-हिन्दी; ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित)—प्रति भाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ प्रकार के परिशिष्ट व सूचियां हैं। प्रथम भाग अप्राप्य, द्वितीय भाग ४०.००, तृतीय भाग ५०.००

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण। प्रथम भाग २००.००, द्वितीय भाग १००.००

३. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्रसूची सहित। १००.००

४. **तैत्तिरीयसंहिता-पदपाठ**—दाक्षिणात्यपाठानुसारी। बृहद् आकार में। पृष्ठ संख्या ६७०। १५०.००

५. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय कृत। १-३ काण्ड ५०.००, ४-५ काण्ड ५०.००, ६ काण्ड ५०.००, ७-८ काण्ड ५०.००, ९-१० काण्ड ५०.००, ११-१३ काण्ड ५०.००, १४-१७ काण्ड ५०.००, १८-१९ काण्ड ५०.००, बीसवां काण्ड ५०.००।

६. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं शतशः टिप्पणियों से युक्त। मूल्य ५०.००

७. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका-परिशिष्ट**—भूमिका पर किये गये आक्षेपों के ग्रन्थकार द्वारा दिये गये उत्तर। ५.००

८. **भूमिका-भास्कर**—स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, दो भागों में पूर्ण, प्रथम भाग २००.००, दूसरा भाग १५०.००।

९. **माध्यन्दिन (यजुर्वेद) पदपाठ**— १००.००

१०. **गोपथ-ब्राह्मण (मूल)**—सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि। अब तक प्रकाशित सभी संस्करणों में अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण। ८०.००

११. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**—(**प्रथम भाग**) पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखित वेद विषयक १९ विशिष्ट निबन्धों का अपूर्व संग्रह। ७५.००

१२. **वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा**–(**द्वितीय भाग**) पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा लिखित वेदाङ्गादि विषयक निबन्धों का अपूर्व संग्रह। १००.००

१३. **कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी**—(ऋग्वेदीया)—षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृत टीका सहित। १५०.००

१४. ऋग्वेदानुक्रमणी—वेङ्कट माधवकृत। इस ग्रन्थ में स्वर छन्द आदि आठ वैदिक विषयों पर गम्भीर विचार किया है। ५०.००

१५. वैदिक-साहित्य-सौदामिनी—स्व० श्री पं० वागीश्वर वेदालङ्कार कृत काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि के समान वैदिक साहित्य पर शास्त्रीय विवेचनात्मक ग्रन्थ। ७०.००

१६. ऋग्वेद की ऋक्संख्या—लेखक–पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५.००

१७. वेद-श्रुति-आम्नाय-संज्ञा-मीमांसा—(संस्कृत-हिन्दी) इसमें सप्रमाण दर्शाया गया है कि मन्त्रों की ही वेदसंज्ञा है। युधिष्ठिर मीमांसक। ३.००

१८. वैदिक-छन्दोमीमांसा—वैदिक छन्दःशास्त्र सम्बन्धी पांच प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर प्रत्येक छन्द के भेद-प्रभेद और उदाहरण दिये हैं। लेखक–पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५०.००

१९. वैदिक-स्वर-मीमांसा—वेद में प्रयुक्त उदात्तादि स्वरों का विस्तृत विवेचन किया गया है। स्वर-शास्त्र के अज्ञान के कारण होनेवाली भूलों का निदर्शन एवं स्वरभेद से होनेवाले अर्थभेद को दर्शाया है। लेखक—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। ५०.००

२०. वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन प्रकार—लेखक—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। १०.००

२१. वेदों का महत्त्व तथा उनके प्रचार के उपाय, वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं की ऐतिहासिक मीमांसा—(संस्कृत-हिन्दी) लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। २५.००

२२. देवापि और शन्तनु के आख्यान का वास्तविक स्वरूप—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। ८.००

२३. वेद और निरुक्त—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। ३.००

२४. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। ३.००

२५. त्वाष्ट्री सरण्यू की वैदिक कथा का वास्तविक स्वरूप—लेखक—पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य। ३.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, (सोनीपत-हरियाणा)

रामलाल कपूर एण्ड सन्स, २५९६, नई सड़क दिल्ली

